संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० २७

समन्तभद्र भारती

(आचार्य समन्तभद्र स्वामी विरचित बृहत् स्वयम्भूस्तोत्र, स्तुतिविद्या-जिनशतक, देवागमस्तोत्र-आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्डकश्रावकाचार का अन्वयार्थ सहित संकलन)

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

समन्तभद्र भारती

कृतिकार : आचार्य समन्तभद्र स्वामी

संस्करण : २८ जून, २०१७ (आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ११००

वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर एफ, इन्डस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा, भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जो अनेक भाषाओं में अनुदित हुआ साथ ही अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी॰ लिट्॰, पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम

लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

जैन श्रमणों की महती प्रभावक परम्परा में दिगम्बर जैनाचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी का नाम दार्शनिक आचार्यों में सर्वप्रथम स्मरण किया जाता है। उनके द्वारा रचित स्तुतिपरक न्यायशैली में परमत-खण्डन एवं जिनमत-मण्डन करते हुए जो स्तोत्र रचे गये हैं। उन पर बड़े-बड़े दिग्गज दार्शनिक आचार्यों ने बृहत् काय टीकाएँ व्याख्याएँ लिखी हैं। आचार्य समन्तभद्र स्वामी के मूल ग्रन्थों का संक्षेप में अन्वयार्थ के साथ स्तुतिवाचन करने का भाव अनेक पाठकों के मन में रहता है। इसलिए उनके उपलब्ध ग्रन्थों को समायोजित करके समन्तभद्र भारती पाठकों के करकमलों में प्रस्तुत है।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

आचार्य समन्तभद्र एवं उनका अवदान

सारस्वताचार्यों में सबसे प्रमुख और आद्य आचार्य समन्तभद्र हैं। जिस प्रकार गृद्धपिच्छाचार्य संस्कृत के प्रथम सूत्रकार हैं, उसी प्रकार जैन वाङ्मय में स्वामी समन्तभद्र प्रथम संस्कृत-कवि और प्रथम स्तुतिकार हैं। ये कवि होने के साथ प्रकाण्ड दार्शनिक और गम्भीर चिन्तक भी हैं। इन्हें हम श्रुतधर आचार्य परम्परा और सारस्वत आचार्य परम्परा को जोड़ने वाली अटूट शृंखला कह सकते हैं। इनका व्यक्तित्व श्रुतधर आचार्यों से कम नहीं है।

स्तोत्र-काव्य का सूत्रपात आचार्य समन्तभद्र से ही होता है। ये स्तोत्र-कवि होने के साथ ऐसे तर्क कुशल मनीषी हैं, जिनकी दार्शनिक रचनाओं पर अकलंक और विद्यानन्दि जैसे उद्भट आचार्यों ने टीका और विवृत्तियाँ लिखकर मौलिक ग्रन्थ रचयिता का यश प्राप्त किया है। वीतरागी तीर्थंकर की स्तुतियों में दार्शनिक मान्यताओं का समावेश करना असाधारण प्रतिभा का ही फल है।

आदिपुराण में आचार्य जिनसेन ने इन्हें वादित्व, वाग्मित्व, कवित्व और गमकत्व इन चार विशेषणों से युक्त बताया है। इतना ही नहीं, जिनसेन ने इनको कवि-वेधा कहकर कवियों को उत्पन्न करने वाला विधाता भी लिखा है।

मैं कवि समन्तभद्र को नमस्कार करता हूँ, जो कवियों के ब्रह्मा हैं और जिन के वचनरूप वज्रपात से मिथ्यामतरूपी पर्वत चूर-चूर हो जाते हैं।

स्वतन्त्र कविता करने वाले कवि, शिष्यों को मर्म तक पहुँचाने वाले गमक, शास्त्रार्थ करने वाले वादी और मनोहर व्याख्यान देने वाले वाग्मियों के मस्तक पर समन्तभद्रस्वामी का यश चूड़ामणि के समान आचरण करने वाला है। वादीभसिंह ने अपने 'गद्यचिन्तामणि' ग्रन्थ में समन्तभद्रस्वामी की तार्किक प्रतिभा एवं शास्त्रार्थ करने की क्षमता की सुन्दर व्यंजना की है। समन्तभद्र के समक्ष बड़े-बड़े प्रतिपक्षी सिद्धान्तों का महत्त्व समाप्त हो जाता था और प्रतिवादी मौन होकर उनके समक्ष स्तब्ध रह जाते थे।

श्रीसमन्तभद्र मुनीश्वर सरस्वती की स्वच्छन्द विहार भूमि थे। उनके वचनरूपी वज्र के निपात से प्रतिपक्षी सिद्धान्तरूपी पर्वतों की चोटियाँ चूर-चूर हो गयी थीं। उन्होंने जिनशासन की गौरवमयी पताका को नीले आकाश में फहराने का कार्य किया था। परवादी-पंचानन वर्धमानसूरि ने समन्तभद्र को महाकवीश्वर और सुतर्कशास्त्रामृतसागर कहकर उनसे कवित्वशक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना की है।

श्रवणबेलगोला के शिलालेख नं० १०५ में समन्तभद्र की सुन्दर उक्तियों को वादीरूपी हस्तियों को वश करने के लिए वज्राकुंश कहा गया है तथा बतलाया है कि समन्तभद्र के प्रभाव से यह सम्पूर्ण पृथ्वी दुर्वादों की वार्ता से भी रहित हो गयी थी।

इस प्रकार जैन वाङ्मय में समन्तभद्र पूर्ण तेजस्वी विद्वान्, प्रभावशाली दार्शनिक, महावादिविजेता और कवि-वेधा के रूप में स्मरण किये गये हैं। जैनधर्म और जैनसिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान् होने के साथ तर्क, व्याकरण, छन्द, अलंकार एवं काव्य-कोशादि विषयों में पूर्णतया निष्णात थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा इन्होंने तात्कालिक ज्ञान और विज्ञान के प्रायः समस्त विषयों को आत्मसात् कर लिया था। संस्कृत, प्राकृत आदि विभिन्न भाषाओं के पारंगत विद्वान् थे। स्तुतिविद्या ग्रन्थ से इनके शब्दाधिपत्य पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

दक्षिण भारत में उच्च कोटि के संस्कृत-ज्ञान को प्रोत्तेजन, प्रोत्साहन और प्रसारण देने वालों में समन्तभद्र का नाम उल्लेखनीय है। आप ऐसे युग संस्थापक हैं, जिन्होंने जैनविद्या के क्षेत्र में एक नया आलोक विकीर्ण किया है। अपने समय के प्रचलित नैरात्म्यवाद, शून्यवाद, क्षणिकवाद, ब्रह्माद्वैतवाद, पुरुष एवं प्रकृतिवाद आदि की समीक्षा कर स्याद्वाद-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है। 'अलंकारचिन्तामणि' में 'कविकुञ्जर', 'मुनिवंद्य' और 'जनानन्द' आदि विशेषणों द्वारा अभिहित किया गया है। श्रवणवेलगोला के अभिलेखों में तो इन्हें जिनशासन के प्रणेता और भद्रमूर्ति कहा गया है। इस प्रकार वाङ्मय से समन्तभद्र के शास्त्रीय ज्ञान और प्रभाव का परिचय प्राप्त होता है।

जीवन-परिचय

समन्तभद्र का जन्म दक्षिणभारत में हुआ था। इन्हें चोल राजवंश का राजकुमार अनुमित किया जाता है। इनके पिता उरगपुर (उरैपुर) के क्षत्रिय राजा थे। यह स्थान कावेरी नदी के तट पर फणिमण्डल के अंतर्गत अत्यंत समृद्धिशाली माना गया है। श्रवणवेलगोला के दौरर्वलि जिनदास शास्त्री के भण्डार में पायी जाने वाली आप्तमीमांसा की प्रति के अंत में लिखा हैं-''इति फणिमंडलालंकारस्योरगपुराधिपसूनोः श्रीस्वामीसमन्तभद्रमुनेः कृतौ आप्तमीमांसायाम्''-इस प्रशस्तिवाक्य से स्पष्ट है कि समन्तभद्र स्वामी का जन्म क्षत्रियवंश में हुआ था और उनका जन्मस्थान उरगपुर है। 'राजावलिकथे' में आपका जन्म उत्कलिका ग्राम में होना लिखा है, जो प्रायः उरगपुर के अंतर्गत ही रहा होगा। आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार का अनुमान है कि यह उरगपुर उरैपुर का ही संस्कृत अथवा श्रुतमधुर नाम है, चोल राजाओं की सबसे प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी थी। त्रिचिनापोली का ही प्राचीन नाम उरयूर था। यह नगर कावेरी के तट पर बसा हुआ था, बन्दरगाह था और किसी समय बड़ा ही समृद्धशाली जनपद था।

इनका जन्म नाम शांतिवर्मा बताया जाता है। 'स्तुतिविद्या' अथवा 'जिनस्तुतिशतम्' में, जिसका अपर नाम 'जिनशतक' अथवा 'जिनशतकालंकार' है, 'गत्वैकस्तुतमेव' आदि पद्य आया है। इस पद्य में कवि और काव्य का नाम चित्रबद्धरूप में अंकित है। इस काव्य के छह आरे और नव वलय वाली चित्र रचना पर से 'शांतिवर्मकृतम्' और 'जिनस्तुतिशतम्' ये दो पद निकलते हैं। लिखा है-''षडरं नववलयं चक्रमालिख्य सप्तमवलये शांतिवर्मकृतं इति भवति।'' ''चतुर्थवलये जिनस्तुतिशतं इति च

भवति अतः कवि–काव्यनामगर्भ चक्रवृत्तं भवति''। इससे स्पष्ट है कि आचार्य समन्तभद्र ने 'जिनस्तुतिशतम्' का रचयिता शांतिवर्मा को कहा है, जो उनका स्वयं नामांतर संभव है। यह सत्य है कि यह नाम मुनि अवस्था का नहीं हो सकता, क्योंकि वर्मान्त नाम मुनियों के नहीं होते! संभव है कि माता–पिता के द्वारा रखा गया यह समन्तभद्र का जन्म नाम हो। 'स्तुतिविद्या' किसी अन्य विद्वान् द्वारा रचित न होकर समन्तभद्र की ही कृति मानी जाती है। टीकाकार महाकवि नरसिंह ने–''तार्किकचूड़ामणि श्रीमत् समन्तभद्राचार्य विरचित'' सूचित किया है और अन्य आचार्य और विद्वानों ने भी इसे समत्तभद्र की कृति कहा है। अतएव समन्तभद्र का जन्मनाम शांतिवर्मा रहा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

मुनिपद और भस्मक व्याधि

मुनि–दीक्षा–ग्रहण करने के पश्चात् जब ये मणुवकहल्ली स्थान में विचरण कर रहे थे कि उन्हें भस्मक व्याधि नामक भयानक रोग हो गया, जिससे दिगम्बर मुनिपद का निर्वाह उन्हें अशक्य प्रतीत हुआ। अतएव उन्होंने गुरु से समाधिमरण धारण करने की अनुमति माँगी। गुरु ने भविष्णु शिष्य को आदेश देते हुए कहा–''आपसे धर्म और साहित्य को बड़ी–बड़ी आशाएँ हैं, अतः आप दीक्षा छोड़कर रोग–शमन का उपाय करें। रोग दूर होने पर पुनः दीक्षा ग्रहण कर लें''। गुरु के इस आदेशानुसार समन्तभद्र रोगोपचार के हेतु नाग्न्यपद को छोड़कर संन्यासी बन गये और इधर–उधर विचरण करने लगे। पश्चात् वाराणसी में शिवकोटि राजा के भीमलिंग नामक शिवालय में जाकर राजा को आशीर्वाद दिया और शिवजी को अर्पण किये जाने वाले नैवेद्य को शिवजी को ही खिला देने की घोषणा की। राजा इससे प्रसन्न हुआ और उन्हें शिवजी को नैवेद्य भक्षण कराने की अनुमति दे दी। समन्तभद्र अनुमति प्राप्त कर शिवालय के किवाड़ बन्द कर उस नैवेद्य को स्वयं ही भक्षण कर रोग को शांत करने लगे। शनैः शनैः उनकी व्याधि का उपशम होने लगा और भोग की सामग्री बचने लगी। राजा को इस पर सन्देह हुआ। अतः गुप्तरूप से उसने शिवालय के भीतर कुछ व्यक्तियों को छिपा दिया। समन्तभद्र को नैवेद्य का भक्षण करते हुए छिपे व्यक्तियों ने देख लिया। समन्तभद्र ने इसे उपसर्ग समझ कर चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति आरंभ की। राजा शिवकोटि के डराने पर भी समन्तभद्र एकाग्रचित्त से स्तवन करते रहे, जब ये चन्द्रप्रभ स्वामी की स्तुति कर रहे थे कि भीमलिंग शिव की पिण्डी विदीर्ण हो गयी और मध्य से चन्द्रप्रभ स्वामी का मनोज्ञ स्वर्णबिम्ब प्रकट हो गया। समन्तभद्र के इस महात्म्य को देखकर शिवकोटि राजा अपने भाई शिवायन सहित आश्चर्यचकित हुआ। समन्तभद्र ने वर्धमान पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति पूर्ण हो जाने पर राजा को आशीर्वाद दिया।

यह कथानक 'राजावलिकथे' में उपलब्ध है। सेनगण की पट्टावलि से भी इस विषय का समर्थन होता है। पट्टावली में भीमलिंग शिवालय में शिवकोटि राजा के समन्तभद्र द्वारा चमत्कृत और दीक्षित होने का उल्लेख मिलता है। साथ ही उसे नवतिलिंग देश का राजा सूचित किया है, जिसकी राजधानी

सम्भवतः काञ्ची रही होगी। यहाँ यह अनुमान लगाना भी अनुचित नहीं है कि सम्भवतः यह घटना काशी की न होकर काञ्ची की है। काञ्ची को दक्षिण काशी भी कहा जाता रहा है–''नवतिलिंगदेशाभिरामद्राक्षा-भिरामभीमलिंगस्वयन्वादिस्तोटकोत्कीरण? रुद्रसान्द्रचद्रिका-विशदयशः श्रीचन्द्रजिनेन्द्रसद्दर्शन-समुत्पन्न-कौतूहलकलितशिवकोटिमहाराजतपोराज्य-स्थापकाचार्यश्रीमत्समन्तभद्रस्वामिनाम्'' इस तथ्य का समर्थन श्रवणबेलगोला के एक अभिलेख से भी होता है। अभिलेख में समन्तभद्र स्वामी के भस्मक रोग का निर्देश आया है। आपत्काल समाप्त होने पर उन्होंने पुनः मुनि-दीक्षा ग्रहण की। बताया है–

''वन्द्यो भस्मक-भस्म-सात्कृति-पटुः पद्मावतीदेवता-
दत्तोदात्त-पदस्व-मन्त्र-वचन-व्याहूत-चन्द्रप्रभः।
आचार्यस्य समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ,
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्र समन्तान्मुहुः॥''[1]

अर्थात् जो अपने भस्मक रोग को भस्मसात् करने में चतुर हैं, पद्मावती नामक देवी की दिव्यशक्ति के द्वारा जिन्हें उदात्त पद की प्राप्ति हुई, जिन्होंने अपने मन्त्रवचनों से चन्द्रप्रभ को प्रकट किया और जिनके द्वारा यह कल्णाणकारी जैन मार्ग इस कलिकाल में सब ओर से भद्ररूप हुआ, वे गणनायक आचार्य समन्तभद्र बार-बार वन्दना किये जाने योग्य हैं।

यह अभिलेख शक संवत् १०२२ का है। अतः समन्तभद्र की भस्मक व्याधि की कथा ई० सन् के १०वीं, ११वीं शताब्दी में प्रचलित रही है।

गुरु-शिष्य परम्परा

समन्तभद्र की गुरु-शिष्य परम्परा के सम्बन्ध में अभी तक निर्णीत रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। समस्त जैन वाङ्मय में समन्तभद्र के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक उक्तियाँ मिलती हैं। समन्तभद्र वर्धमान स्वामी के तीर्थ को सहस्त्रगुनी वृद्धि करने वाले हुए और इन्हें श्रुतकेवलिऋद्धि प्राप्त थी। चन्नरायपट्टण ताल्लुके के अभिलेख नं॰ १४९ में श्रुतकेवली-संतान को उन्नत करने वाले समन्तभद्र बताये गये हैं–

''श्रुतकेवलिगलु पलवरूम्
अतीतर् आद् इम्बलिक्के तत्सन्तानो–।
न्नतियं समन्तभद्र-
वृत्तिपर् त्रलेन्दरू समस्तविद्यानिधिगल्॥[2]

यह अभिलेख शक संवत् १०४७ का है। इसमें समन्तभद्र को श्रुतकेवलियों के समान कहा गया

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या ५४, पृ॰ १०२

२. एफिग्राफिया कर्णाटिका, पंचम जिल्द, अभिलेखन नं॰ १४९

है। एक अभिलेख में बताया है कि श्रुतकेवलियों और अन्य आचार्यों के पश्चात् समन्तभद्रस्वामी श्रीवर्धमानस्वामी के तीर्थ की सहस्रगुणी वृद्धि करते हुए अभ्युदय को प्राप्त हुए।

इन अभिलेखों से इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि समन्तभद्र श्रुतधरों की परम्परा के आचार्य थे। इन्हें जो श्रुत परम्परा प्राप्त हुई थी, उस श्रुत परम्परा को इन्होंने बहुत ही वृद्धिंगत किया।

विक्रम की १४ वीं शताब्दी के विद्वान् कवि हस्तिमल्ल और अय्यप्पार्यने ''श्रीमूलसंघव्योमनेन्दु विशेषण द्वारा इनको मूलसंघरूपी आकाश का चन्द्रमा बताया है। इससे स्पष्ट है कि समन्तभद्र मूलसंघ के आचार्य थे।

श्रवणबेलगोल के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि भद्रबाहु श्रुतकेवली के शिष्य चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त मुनि के वंशज पद्मनन्दि अपर नाम कुन्दकुन्द मुनिराज, उनके वंशज गृद्धपिच्छाचार्य और गृद्धपिच्छ के शिष्य बलाक पिच्छाचार्य और उनके वंशज समन्तभद्र हुए।

तिरूमकूडलू नरसिपुर ताल्लुके के शिलालेख नं० १०५ में समन्तभद्र को द्रमिल संघ के अन्तर्गत नन्दिसंघ की अरूगल शाखा का विद्वान् सूचित किया है।

अत: यह निश्चयपूर्वक कह सकना कठिन है कि समन्तभद्र अमुक गण या संघ के थे। इतना तथ्य है कि समन्तभद्र गृद्धपिच्छाचार्य के 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' मंगलस्तोत्र में स्तुत आप्त के मीमांसक होने से वे उनके तथा कुन्दकुन्द के अन्वय में हुए हैं।

समय-निर्धारण

आचार्य समन्तभद्र के समय के सम्बन्ध में विद्वानों ने पर्याप्त ऊहापोह किया है। मि० लेविस राईस का अनुमान है[१] कि समन्तभद्र ई० की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में हुए हैं।

'कर्नाटक कविचरिते' नामक कन्नड़ी ग्रन्थ के रचयिता आर नरसिंहाचार्य ने समन्तभद्र का समय शक संवत् ६० (ई० सन् १३८) के लगभग माना है। उनके प्रमाण भी राईस के समान ही हैं।

श्रीयुत् एम० एस० रामस्वामी आयगर ने अपनी "Studies in South Indian Jainism" नामक पुस्तक में लिखा है–''समन्तभद्र उन प्रख्यात दिगम्बर लेखकों की श्रेणी में सबसे प्रथम थे, जिन्होंने प्राचीन राष्ट्रकूट राजाओं के समय में महान् प्राधान्य प्राप्त किया।''

आचार्य श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार ने[२] समन्तभद्र के साहित्य का गम्भीर आलोडन कर उनका समय विक्रम की द्वितीय शती माना है। इनके इस मत का समर्थन डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन ने अनेक युक्तियों

१. Inscriptions at shravan Belgol नामक पुस्तक की प्रस्तावना।

४. रत्नकरण्डक श्रावकाचार, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, स्वामी समन्तभद्र शीर्षक प्रबन्ध तथा अनेकान्त वर्ष १४, किरण १, पृ० ३-८

से किया है। उन्होंने लिखा है–स्वामी समन्तभद्र का समय १२०-१८५ ई. निर्णीत होता है और यह सिद्ध होता है कि उनका जन्म पूर्वतटवर्ती नागराज्य संघ के अन्तर्गत उरगपुर (वर्तमान त्रिचनापल्ली) के नागवंशी चोल नरेश कीलिकवर्मन् के कनिष्ठ पुत्र एवं उत्तराधिकारी सर्ववर्मन (शेषनाग) के अनुज राजकुमार शान्तिवर्मन के रूप में सम्भवतया ई० सन् १२० के लगभग हुआ था, सन् १३८ ई० (पट्टावलि प्रशस्ति शक सं० ६०) में उन्होंने मुनिदीक्षा ली और १८५ ई० के लगभग वे स्वर्गस्थ हुए प्रतीत होते हैं। अतएव समन्तभद्र का समय अनेक प्रमाणों के आधार पर ईसवी सन् की द्वितीय शती अवगत होती है।[1]

समन्तभद्र की रचनाएँ

संस्कृत-काव्य का प्रारम्भ ही स्तुति-काव्य से हुआ है। जिस प्रकार वैदिक ऋषियों ने स्वानुभूति-जीवन की जीवन्तधारा और सौन्दर्यभावना को स्तुतिकाव्य की पटभूमि पर ही अंकित किया है, उसी प्रकार स्वामी समन्तभद्र ने भी दर्शन, सिद्धान्त एवं न्याय सम्बन्धी मान्यताओं को स्तुति-काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। अतएव स्तुतियों की विभिन्न परम्परा में आद्य जैन स्तुतिकार समन्तभद्र ने बौद्धिक चिन्तन और मानव जीवन की प्रोज्ज्वल कल्पना को स्तुति-काव्य के रूप में ही मूर्तिमत्ता प्रदान की है। इनके द्वारा रचित स्तुतियों में तरल भावनाओं के साथ मस्तिष्क का चिन्तन भी समवेत है। समन्तभद्र द्वारा लिखित निम्नलिखित रचनाएँ मानी जाती हैं–

१. बृहत् स्वयम्भूस्तोत्र, २. स्तुतिविद्या-जिनशतक, ३. देवागमस्तोत्र-आप्तमीमांसा, ४. युक्त्यनुशासन, ५. रत्नकरण्डकश्रावकाचार, ६. जीवसिद्धि, ७. तत्त्वानुशासन, ८. प्राकृतव्याकरण, ९. प्रमाणपदार्थ, १०. कर्मप्राभृतटीका, ११. गन्धहस्तिमहाभाष्य।

१. बृहत् स्वम्भूस्तोत्र–इसका अपर नाम स्वम्भूस्तोत्र अथवा चतुर्विंशति स्तोत्र भी[2] है। इसमें ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों की क्रमशः स्तुतियाँ हैं। इस स्तोत्र के भक्तिरस में गम्भीर अनुभूति एवं तर्कणायुक्त चिन्तन निबद्ध है। अतः इसे सरस्वती की स्वच्छन्द विहारभूमि कहा जा सकता है। इस 'स्तोत्र' के संस्कृत-टीकाकार प्रभाचन्द्र ने इसे 'निःशेषजिनोक्तधर्म' कहा है। इसमें कुल पद्यों की संख्या १४३ है।

२. स्तुतिविद्या—जिनशतक और जिनशतकालंकार भी इसके नाम आये हैं। इसमें चित्रकाव्य और बन्ध रचना का अपूर्व कौशल समाहित है। शतककाव्यों में इसकी गणना की गयी है। सौ पद्यों में किसी एक विषय से सम्बद्ध रचना लिखना असाधारण बात मानी जाती थी। प्रस्तुत जिनशतक में चौबीस तीर्थंकरों की चित्र बन्धों में स्तुति की गयी है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों नैतिक एवं धार्मिक उपदेश के उपस्कारक बनकर आये हैं। समन्तभद्र की काव्यकला इस स्तोत्र में आद्यन्त व्याप्त है। मुरजादि

१. अनेकान्त, वर्ष १४, किरण ११-१२, पृ. ३२४

२. अनुवादक और सम्पादक श्री पंडित जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज दिल्ली।

चक्रबन्ध की रचना के कारण चित्र काव्य का उत्कर्ष इस स्तोत्रकाव्य में पूर्णतया वर्तमान है।

इस स्तोत्र में कुल ११६ पद्य हैं और अन्तिम पद्य में 'कविकाव्यनामगर्भचक्रवृत्तम्' है। जिसके बाहर के षष्ट वलय में 'शान्तिवर्मकृतम्' और चतुर्थवलय में 'जिनस्तुतिशतम्' की उपलब्धि होती है। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का एक साथ प्रयोग काव्यकला की दृष्टि से श्लाघनीय है। यहाँ उदाहरणार्थ काव्यलिंग को प्रस्तुत किया जा रहा है–

सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्च्चनं चापि ते
हस्तावंजलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि संप्रेक्षते।
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरो नतिपरं सेवेद्दशी येन ते
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती तेनैव तेजःपते[1]॥

जिनेन्द्र भगवान् की आराधना करने वाले मनुष्य की आत्मा आत्मीय तेज से जगमगा उठती है। वह सर्वोत्कृष्ट पुरुष गिना जाने लगता है। तथा उसके महान पुण्य का बन्ध होता है। यहाँ स्मरण, पूजन, अञ्जलि–बन्धन, कथा–श्रवण, दर्शन आदि का क्रमशः नियोजन होने से परिसंख्या–अलंकार है। आचार्य ने हेतु–वाक्यों का प्रयोग कर काव्यलिंग की भी योजना की है। इस प्रकार यह स्तुति–विद्या स्तोत्र–काव्य और दर्शनगुणों से युक्त है। और है सविवेक भक्ति–रचना।

३. आप्तमीमांसा या देवागमस्तोत्र–स्तोत्र के रूप में तर्क और आगम परम्परा की कसौटी पर आप्त–सर्वज्ञदेव की मीमांसा की गयी है। समन्तभद्र अन्धश्रद्धालु नहीं हैं, वे श्रद्धा को तर्क की कसौटी पर कसकर युक्ति–आगम द्वारा आप्त की विवेचना करते हैं। आप्त विषयक मूल्यांकन में सर्वज्ञाभाववादी मीमांसक, भावैकान्तवादी सांख्य, एकान्तपर्यायवादी बौद्ध एवं सर्वथा उभयवादी वैशेषिक का तर्क पूर्वक विवेचन करते हुए निराकरण किया गया है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव का सप्तभंगीन्याय द्वारा समर्थन कर वीरशासन की महत्ता प्रतिपादित की है। सर्वथा अद्वैतवाद, द्वैतवाद, कर्मद्वैत, फलद्वैत, लोकद्वैत प्रभृति का निरसन कर अनेकान्तात्मकता सिद्ध की गयी है। इसमें अनेकान्तवाद का स्वस्थ स्वरूप विद्यमान है। उदाहरण के लिए

द्रव्यपर्यायोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः॥
संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा[2]॥

द्रव्य और पर्याय कथंचित् एक हैं, क्योंकि वे भिन्न उपलब्ध नहीं होते तथा वे कथंचित् अनेक

१. स्तुतिविद्या, पद्य ११५
२. देवागम, पद्य ७१, ७२, आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार द्वारा सम्पादित, वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी।

हैं क्योंकि परिणाम, संज्ञा, संख्या आदि का भेद है। दैव-पुरुषार्थ, पुण्य-पाप आदि की सिद्धि अनेकान्त के द्वारा ही होती है। एकान्तवादियों की समस्त समस्याओं का समाधान अनेकान्तवाद के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

इस स्तोत्र में ११५ पद्य हैं। 'देवागम' पद द्वारा स्तोत्र का आरम्भ होने के कारण यह 'देवागम' स्तोत्र भी कहा जाता है। समन्तभद्र की परीक्षाप्रधान दृष्टि इस स्तोत्रकाव्य में समाहित है। कवित्व की दृष्टि से यह काव्य बोझिल है। काव्य रस-दर्शन की चट्टान के भीतर प्रवेश करने पर ही क्वचित् प्राप्त होता है, अप्रस्तुत विधान का भी अभाव है। जीवन और जगत् की विभिन्न समस्याओं का समाधान इस स्तोत्रकाव्य में अवश्य वर्तमान है।

४. युक्त्यनुशासन—वीर के सर्वोदय तीर्थ का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए उनकी स्तुति की गयी है। युक्तिपूर्वक महावीर के शासन का मण्डन और विरुद्धमतों का खण्डन किया गया है। समस्त जिनशासन को केवल ६४ पद्यों में ही समाविष्ट कर दिया है। अर्थगौरव की दृष्टि से यह काव्य उत्तम है, 'गागर में सागर' को भर देने की कहावत चरितार्थ होती है। महावीर के तीर्थ को सर्वोदय तीर्थ कहा है–

सर्वान्तवत्तद् गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव[१]**॥**

इस प्रकार महावीर के तीर्थ को ही समस्त विपत्तियों का अन्त करने वाला सर्वोदय तीर्थ कहा है।

५. रत्नकरण्डक श्रावकाचार—जीवन और आचार की व्याख्या इस ग्रन्थ में की गयी है। १५० पद्यों में विस्तारपूर्वक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का विवेचन करते हुए कुन्दकुन्द के निर्देशानुसार सल्लेखना को श्रावक के व्रतों में स्थान दिया है। अन्त में श्रावक की एकादश प्रतिमाएँ वर्णित हैं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने समीचीन धर्मशास्त्र-रत्नकरण्डक श्रावकाचार की भूमिका में लिखा है–''स्वामी समन्तभद्र ने अपनी विश्वलोकोपकारिणी वाणी से न केवल जैनमार्ग को सब ओर से कल्याणकारी बनाने का प्रयत्न किया है। (जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तात् मुहुः) किन्तु शुद्धमानवी दृष्टि से भी उन्होंने मनुष्य को नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाया। उनके इस दृष्टिकोण में मानव-मात्र की रुचि हो सकती है। समन्तभद्र की दृष्टि में मन की साधना हृदय का परिवर्तन सच्ची साधना है। बाह्य आचार तो आडम्बरों से भरे भी हो सकते हैं। उनकी गर्जना है कि मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है (कारिका-३३)। किसी ने चाहे चाण्डाल योनि में भी शरीर धारण किया हो, किन्तु यदि उसमें सम्यक् दर्शन का उदय हो गया है तो देवता ऐसे व्यक्ति को देव

१. समीचीन धर्मशास्त्र, वीर सेवा मन्दिर दिल्ली, प्राक्कथन, पृ० १६

समान ही मानते हैं। ऐसा व्यक्ति भस्म से ढके हुए किन्तु अन्तर में दहकते हुए अंगारे की तरह होता है।''

इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

१. श्रावक के अष्टमूलगुणों का विवेचन

२. अर्हत्पूजन का वैयावृत्य के अन्तर्गत स्थान

३. व्रतों में प्रसिद्धि पाने वालों के नामोल्लेख

४. मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही श्रावक की श्रेष्ठता

५. सम्यग्दर्शन सम्पन्न मातंग को देवतुल्य कहकर उदार दृष्टिकोण का उपन्यास।

६. कुन्दकुन्द और उमास्वामी की श्रावकधर्म सम्बन्धी मान्यताओं को आत्मसात् कर स्वतन्त्र रूप में श्रावकधर्मसम्बन्धी ग्रन्थ का प्रणयन।

जीवसिद्धि, तत्त्वानुशासन, प्राकृतव्याकरण, प्रमाणपदार्थ, कर्मप्राभृत टीका और गन्धहस्तिमहाभाष्य ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। अत: इनके सम्बन्ध में विवेचन करना सम्भव नहीं। इन रचनाओं के केवल निर्देश ही जहाँ-तहाँ मिलते हैं। अतएव अब हम आचार्य समन्तभद्र की काव्य-प्रतिभा एवं वैदुष्य पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

प्रतिभा एवं वैदुष्य

समन्तभद्र अत्यन्त प्रतिभाशाली और स्वसमय, परसमय के ज्ञाता सारस्वत हैं। इन्होंने एकान्तवादियों का निरसन कर अनेकान्तवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिक शैली में की है। भाव और अभावरूप विरोधी युगलधर्मों को लेकर सप्तभंगात्मक वस्तु को सिद्ध किया है। क्रियाभेद, कारकभेद, पुण्य-पापरूप कर्मद्वैत, सुख-दु:खरूप फलद्वैत, इहलोक-परलोकरूप लोकद्वैत, विद्या-अविद्यारूप ज्ञानद्वैत और बन्ध-मोक्षरूप जीव की शुद्धाशुद्ध अवस्थाओं का चित्रण किया गया है। बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त आदि दर्शनों की मूल मान्यताओं का अध्ययन कर उनकी यथार्थ समीक्षा समन्तभद्र ने की है। हम यहाँ उदाहरण के लिए वैशेषिकों के परमाणुवाद को लेते हैं। वैशेषिकों में कोई परमाणुओं में पाक-अग्नि संयोग होकर द्व्यणुकादि अवयवी में क्रमश: पाक मानते हैं और कोई परमाणुओं में किसी भी प्रकार की विकृति न होने से उनमें पाक-अग्निसंयोग न मान कर केवल द्व्यणुकादि में पाक स्वीकार करते हैं। जो परमाणुओं में पाक नहीं मानते उनका कहना है कि परमाणु नित्य है और इसलिए वे द्व्यणुकादि सभी अवस्थाओं में एकरूप बने रहते हैं। उनमें किसी भी प्रकार की अन्यता नहीं होती, अपितु सर्वदा अनन्यता विद्यमान रहती है। इसी मान्यता को आचार्य समन्तभद्र ने 'अणुओं का अनन्यतैकान्त' कहा है। इस मान्यता में दोषोद्घाटन करते हुए बताया है कि यदि अणु द्व्यणुकादि संघातदशा में भी उसी प्रकार के बने रहते हैं, जिस प्रकार वे विभाग के समय हैं, तो वे असंहत ही रहेंगे और इस अवस्था में अवयवीरूप पृथ्वी

आदि चारों भूत भ्रान्त हो जायेंगे, जिससे अवयवीरूप कार्य भी भ्रान्त सिद्ध होगा। इस प्रकार वैशेषिकों के अनन्यतैकान्त की समीक्षा कर अनेकान्तवाद की प्रतिष्ठा की है।

समन्तभद्र की कारिकाओं के अवलोकन से उनका विभिन्न दर्शनों का पाण्डित्य अभिव्यक्त होता है। प्रमाण, प्रमाणफल, प्रमाण का विषय आदि का विवेचन समन्तभद्र ने बहुत ही सूक्ष्मता से किया है। इन्होंने सद्-असद्वाद की तरह द्वैतअद्वैतवाद, शाश्वत-अशाश्वतवाद, वक्तव्य-अवक्तव्यवाद, अन्यता-अनन्यतावाद, अपेक्षा-अनपेक्षावाद, हेतु-अहेतुवाद, विज्ञान-बहिरर्थवाद, देव-पुरुषार्थवाद, पाप-पुण्यवाद और बन्ध-मोक्षकारणवाद का विवेचन किया है।

काव्य-चमत्कार की दृष्टि से भी समन्तभद्र अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। इन्होंने चित्र और श्लेष काव्य का प्रारम्भ कर भारवि और माघ के लिये काव्य-क्षेत्र का विकास किया है। कवि समन्तभद्र ने अपने स्तोत्र-काव्यों में शब्द और अर्थ इन दोनों की गम्भीरता का अपूर्व समन्वय बनाये रखने की सफल चेष्टा की है। शब्दसंघति, अलंकार-वैचित्र्य, कल्पना सम्पत्ति एवं तार्किक प्रतिभा का समवाय एकत्र प्राप्य है। प्रबन्धकाव्य न लिखने पर भी कतिपय पद्यों में प्रौढ़ प्रबन्धात्मकता पायी जाती है। इतिवृत्तात्मक धार्मिक तथ्यों का समावेश भी काव्यशैली में मनोरमरूप में हुआ है। कविप्रतिभा और दार्शनिकता का मणि-कांचन संयोग श्लाघ्य है।

आचार्य समन्तभद्र के उक्त काव्यतत्त्वों का संस्कृतकाव्य तत्त्वों पर पूर्ण प्रभाव पड़ा है। जब संस्कृतकाव्य का प्रणयन मध्यदेश से स्थानान्तरित हो गुजरात, कश्मीर और दक्षिण भारत में प्रविष्ट हुआ, तो समन्तभद्र के काव्य सिद्धान्त सर्वत्र प्रचलित हो गये। भारवि में एकाएक चित्र और श्लेष का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है, अपितु समन्तभद्र के काव्यसिद्धान्तों का उन पर प्रभाव है। मलाबार निवासी वासुदेव कवि ने यमक और श्लेष सम्बन्धी जिन प्रसिद्ध काव्यों की रचना की है, उनके लिए वे शैली के क्षेत्र में समन्तभद्र के ऋणी हैं। कवि कुञ्जर द्वारा लिखित राघवपाण्डवीय पर भी समन्तभद्र की शैली का प्रभाव है। अतः संक्षेप में दर्शन, आचार, तर्क, न्याय आदि क्षेत्रों में प्रस्तुत किये गये ग्रन्थों की दृष्टि से समन्तभद्र ऐसे सारस्वताचार्य हैं, जिन्होंने कुन्दकुन्दादि आचार्यों के वचनों को ग्रहण कर, सर्वज्ञ की वाणी को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है।

❑ ❑ ❑

समन्तभद्राष्टकम्

(आर्याच्छन्दः)

सन्तः समन्तभद्रास्तर्काऽऽगमनयेभ्यः कुमुच्चन्द्राः।
जिनमतसम्मुखचन्द्राः पथदर्शी मे भवेद् भुवि भद्राः॥ १॥

अन्वयार्थ—(सन्तः) सत् पुरुष **(समन्तभद्राः)** समन्तभद्र आचार्य **(तर्कागमनयेभ्यः)** तर्क, आगम और नयों के लिए **(कुमुच्चन्द्राः)** पृथ्वी पर प्रसन्न चन्द्रमा हैं **(जिनमतसम्मुखचन्द्राः)** जो जिनेन्द्र मत को दिखलाने के लिए चन्द्रमा है **(भद्राः)** ऐसे पुण्य पुरुष **(भुवि)** इस पृथ्वी पर **(मे)** मेरे **(पथदर्शी)** पथ प्रदर्शक **(भवेत्)** हों।

अर्थ—श्रेष्ठ समन्तभद्र आचार्य जो कि तर्क, आगम और नय की छटा बिखराने के लिए पृथ्वी पर प्रसन्न/पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं, जो जिनेन्द्र भगवान् के मत रूपी चन्द्रमा के सम्मुख रहते हैं, ऐसे वे कल्याणकारक आचार्य देव इस पृथ्वी पर मेरे पथदर्शक हों।

प्राणातिपातकृपणाः परमतेभगण्डखण्डैकप्रणाः।
भव्याब्जकाय चण्डा ईडेऽहं तकं मार्तण्डाः ॥२॥

अन्वयार्थ—(प्राणातिपात-कृपणाः) जो प्राणों का घात करने में कृपण हैं **(पर-मतेभ-गण्ड-खण्डैक-प्रणाः)** जो परमत रूपी हाथियों के गण्ड स्थल को खण्डित करने का एक मात्र प्रण लिए थे **(भव्याब्जकाय)** भव्य कमलों के लिए **(चण्डाः मार्तण्डाः)** जो प्रचण्ड सूर्य हैं **(तकं)** उन समन्तभद्र आचार्य की **(अहं)** मैं **(ईडे)** स्तुति करता हूँ।

अर्थ—जो जीवों के प्राणों का घात करने में कृपण हैं अर्थात् जो प्राणि-हिंसा नहीं करते हैं, पर-मत रूपी हाथी के गण्डस्थल को खण्डित करने का जिनका एक मात्र प्रण है तथा जो भव्य जीवरूपी कमलों को खिलाने के लिए प्रचण्ड मार्तण्ड हैं, उन आचार्य देव की मैं स्तुति करता हूँ।

यस्यार्चितपदसेवा कल्पवल्लीव गी वरा प्रमुदे हि।
न्यायाक्षः कविदेवो नन्द्यात् सौख्यं प्रभो! देहि ॥३॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(अर्चितपदसेवा)** पूजित चरणों की सेवा **(कल्पवल्ली इव)** कल्पवल्ली के समान है **(वरा गीः)** जिनकी श्रेष्ठ वाणी **(हि)** निश्चित ही **(प्रमुदे)** आनन्द के लिए है **(न्यायाक्षः)** जिनके पास न्याय रूपी नेत्र हैं **(कविदेवः)** जो कवियों से पूज्य हैं **(नन्द्यात्)** वह समन्तभद्र आचार्य सदा जयवन्त रहें **(प्रभो!)** हे स्वामिन् **(सौख्यं)** मुझे सुख **(देहि)** देओ।

अर्थ—जिनके पूजित पदों की सेवा कल्पवल्ली के समान है, जिनकी श्रेष्ठ वाणी प्रसन्नता के लिए है, जिनके पास न्याय की आँख है और जो कवियों में देव हैं। अर्थात् श्रेष्ठ हैं ऐसे आचार्य देव

वृद्धि को प्राप्त हों। हे स्वामिन्। मुझे उत्तम सुख देओ।

देवागमसद्ग्रन्थाः स्वीकृता दुष्टपथभ्रमद्भिः पथिभिः।
पुष्यंस्त्वं निर्ग्रन्थं मतं ततः सम्मतं कृतिभिः ॥४॥

अन्वयार्थ–(दुष्ट-पथ-भ्रमद्भिः) दुष्ट पथों पर भ्रमण करने वाले **(पथिभिः)** पथिकों से भी **(देवागमसद्ग्रन्थाः)** जिनके 'देवागम' आदि समीचीन शास्त्र **(स्वीकृताः)** स्वीकार किए गए हैं **(त्वं)** आप **(निर्ग्रन्थं मतं)** निर्ग्रन्थ मत को **(पुष्यन्)** पुष्ट करते रहे हैं **(ततः)** इसलिए **(कृतिभिः)** पुण्यशाली जीवों से आप **(सम्मतं)** सम्मान्य हैं।

अर्थ–दुष्ट पथों पर भ्रमण करने वाले राहगीरों के द्वारा भी जिनके रचे गए देवागम सदृश श्रेष्ठ ग्रन्थ स्वीकृत हैं। आपने निर्ग्रन्थ मत को पुष्ट बनाया है इसलिए आप श्रेष्ठजनों के द्वारा माननीय हैं।

नामुञ्चो दृग्द्रविणं विस्फेटयितुं वपुषि जठरव्याधिम्।
मत्वा द्रविणकुलेऽहं जन्माप्यस्ति विषमव्याधिः ॥५॥

अन्वयार्थ–(वपुषि) शरीर में **(जठरव्याधिम्)** जठर व्याधि (भस्मक रोग) को **(विस्फेटयितुं)** नाश करने के लिए **(दृग् द्रविणं)** सम्यग्दर्शन रूपी धन को **(न अमुञ्चः)** आपने नहीं छोड़ा। चूँकि **(अहं)** मैं **(द्रविणकुले)** द्रविण कुल में जन्मा हूँ **(मत्वा)** ऐसा मानकर **(जन्म अपि)** जन्म ही **(विषमव्याधिः)** विषम रोग **(अस्ति)** है, ऐसा आपने माना।

अर्थ–मैं द्रविण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, अतः सबसे विषम व्याधि यह जन्म धारण करना ही है, ऐसा मानकर शरीर में उत्पन्न हुई उदर व्याधि को दूर करने के लिए आपने सम्यग्दर्शन रूपी धन को नहीं छोड़ा था।

चित्रं प्रभावकं वाऽऽस्थया साकमेष यत्प्रवरवृत्तम्।
अभिनौमि कथा किं वा व्रतेन तं तन्महावृत्तम् ॥६॥

अन्वयार्थ–(यत्प्रवर-वृत्तं) जिनका श्रेष्ठ चरित्र **(आस्थया साकं)** आस्था, श्रद्धा के साथ ही **(चित्रं)** विचित्र **(प्रभावकं वा)** अथवा प्रभावक था **(व्रतेन)** व्रतों के साथ **(तन्महावृत्तं)** उस महाचरित्र की **(किं वा कथा)** क्या कथा की जाए **(तं)** उन समन्तभद्र आचार्य को मैं **(एष)** यह साक्षात् **(अभिनौमि)** नमस्कार करता हूँ।

अर्थ–आस्था अर्थात् सम्यग्दर्शन के साथ ही जिनका श्रेष्ठ आचरण विचित्र और प्रभावक था फिर व्रतों के साथ उनके महान् आचरण के प्रभाव की क्या बात करें। उन आचार्य देव को मैं यह साक्षात् नमन करता हूँ।

प्रथमसारस्वतार्यः संस्तुतिकारः प्राज्ञः कविराद्यः।
प्राभूद्यो प्रमुखार्यः श्रुतधरार्यदत्तज्ञानमासाद्य ॥७॥

अन्वयार्थ—(प्रथम सारस्वतार्य:) जो प्रथम सारस्वत आचार्य थे **(संस्तुतिकार:)** जो प्रथम स्तुतिकर्ता थे **(प्राज्ञ:)** जो प्रज्ञावान् थे **(आद्य: कवि:)** जो प्रथम कवि थे **(श्रुतधरार्यदत्त-ज्ञानं)** श्रुतधर आचार्यों के ज्ञान को **(आसाद्य)** प्राप्त करके **(य:)** जो **(प्रमुखार्य:)** प्रथम आचार्य **(प्राभूत्)** हुए थे।

अर्थ—जो प्रथम सारस्वताचार्य हैं, जो प्रथम स्तुतिकार के रूप में आद्य कवि माने गये हैं, जो प्रज्ञावान् हैं तथा जो श्रुतधर आचार्यों के दिए गए ज्ञान को प्राप्त करके श्रेष्ठ आचार्य हुए हैं।

नानुसूयान्मदाद्वा महज्जिनमतं भवान् प्रचारितवान्।
तीर्थकरत्वमुपेत्य च समाप द्युर्दयया सत्वान् ॥८॥

अन्वयार्थ—(भवान्) आपने **(महज्जिनमतं)** उत्कृष्ट जिनमत को **(न अनुसूयात्)** न ही ईर्ष्या से **(वा मदात् न)** अथवा अहंकार से नहीं **(प्रचारितवान्)** प्रचारित किया था **(च)** तथा **(सत्त्वान् प्रति)** जीवों के प्रति **(दयया)** दयाभाव रहने से **(तीर्थकरत्वं)** तीर्थकर्तापन को **(उपेत्य)** प्राप्त करके आप **(द्यु:)** स्वर्ग **(समाप)** चले गए।

अर्थ—आपने महान् जिनमत का प्रचार किया किन्तु ऐसा आपने अन्य मत के प्रति ईर्ष्या होने से अथवा जिनमत का मद होने से नहीं किया। जीवों के प्रति दया भाव जाग्रत होने से आपने न्यायतीर्थ स्थापित करके देवगति को प्राप्त किया।

शैशवे शान्तिवर्माऽऽ, ख्यातं प्रख्यापितं शान्तवर्त्म।
मुनौ हि निरस्तमोहो भूत्वा विजहार वृषमोह: ॥९॥

अन्वयार्थ—(शैशवे) शिशुकाल में **(शान्तिवर्म आख्यातं)** आपको शान्तिवर्मा कहा जाता था। **(शान्तवर्त्म)** आपने शान्ति का मार्ग **(प्रख्यापितं)** बतलाया **(मुनौ हि)** मुनि अवस्था में **(निरस्तमोह:)** निर्मोही **(भूत्वा)** होकर तथा **(वृषमोह:)** धर्म से मोह धारण करके **(विजहार)** आपने विहार किया था।

अर्थ—बचपन में जो शान्तिवर्मा के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपने मुनि बनकर धर्म से मोह रखते हुए तथा विषयों से मोह रहित होकर विहार किया तथा शान्ति-सुख का सच्चा मार्ग बताया।

❑ ❑ ❑

अनुक्रमणिका

बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्

श्री वृषभजिनस्तवनम्

भगवान् के स्वयंभू नाम की सार्थकता बतलाते हैं–

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥

अन्वयार्थ–(स्वयम्भुवा) जो स्वयंभू थे–दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर अनन्तचतुष्टय स्वरूप हुए थे, **(भूतहितेन)** प्राणियों के लिए हितकारक थे, **(समञ्जसज्ञान-विभूति-चक्षुषा)** सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और **(गुणोत्करैः करैः)** स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त वचनों के द्वारा **(तमः)** ज्ञानावरणादि कर्मरूप एवं अज्ञानरूप अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(येन)** जो **(भूतले)** पृथ्वीतल पर **(गुणोत्करैः करैः)** अर्थप्रकाशकत्व आदि गुणों से युक्त किरणों के द्वारा **(तमः)** अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(क्षपाकरेणेव)** चन्द्रमा के समान **(विराजितम्)** सुशोभित होते थे।

गृहस्थ अवस्था में ऐसे होते हुए, भगवान् वैराग्य को प्राप्त हुए, यह कहते हैं–

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥२॥

अन्वयार्थ–(यः प्रजापतिः 'बभूव') जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने **(प्रथमं)** कर्मभूमि के प्रारम्भ में **(प्रबुद्धतत्त्वः)** मति, श्रुत और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर **(जिजीविषूः प्रजाः)** जीवित रहने की इच्छुक जनता को **(कृष्यादिषु कर्मसु)** खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में **(शशास)** शिक्षित किया था और **(पुनः)** फिर **(प्रबुद्धतत्त्वः)** हेय-उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर **(अद्भुतोदयः)** इन्द्र आदि के द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए, जो **(ममत्वतः)** ममता भाव से–परिग्रह विषयक आसक्ति से **(निर्विविदे)** विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो **(विदांवरः)** श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे।

विरक्त होते हुए भगवान् ने क्या किया ? यह कहते हैं–

विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु-कुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(मुमुक्षुः)** मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार-समुद्र से पार उतरने के इच्छुक थे, **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय थे, **(प्रभुः)** सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, **(सहिष्णुः)** परीषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे, **(अच्युतः)** गृहीत व्रत से अविचलित रहने वाले थे, **(इक्ष्वाकु- कुलादिः)** इक्ष्वाकु कुल अथवा समस्त राजवंशों में आदि पुरुष थे और जिन्होंने **(सतीम्)** किसी अन्य राजा के द्वारा अभुक्त होने से पतिव्रता **(इमाम्)** इस **(सागर-वारिवाससम्)** समुद्र के जलरूप वस्त्र को धारण करने वाली–समुद्रान्त, **(वसुधावधूम्)** धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वीरूपी स्त्री को **(सतीं वधूमिव)** पतिव्रता स्त्री के समान **(विहाय)** छोड़कर **(प्रवव्राज)** दीक्षा धारण की थी।

दीक्षा लेकर भगवान् ने क्या किया ? यह कहते हैं–

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥४॥

अन्वयार्थ–(यः) जिन्होंने **(स्वदोषमूलम्)** अपने काम-क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण–चार घातिया कर्मों को **(स्वसमाधितेजसा)** परम शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा **(निर्दयभस्मसात्क्रियां निनाय)** निर्दयतापूर्वक भस्मभाव को प्राप्त कराया है–समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने **(अर्थिने जगते)** तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणिसमूह के लिए **(अञ्जसा)** वास्तविक **(तत्त्वं)** जीवादि तत्त्वों का स्वरूप **(जगाद)** कहा **(च)** और अन्त में जो **(ब्रह्मपदामृतेश्वरः)** मोक्षस्थान के अविनाशी-अनन्तसुख के स्वामी **(बभूव)** हुए।

यहाँ मीमांसक कहता है कि चूँकि भगवान् को अतीन्द्रिय-ज्ञान का अभाव होने से समस्त पदार्थों का ज्ञान संभव नहीं है, अतः तत्त्वों का यथार्थ प्रतिपादन कैसे हो सकता है? यह कहते हैं–

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो जिनो जितक्षुल्लक, वादिशासनः॥५॥

अन्वयार्थ–(विश्वचक्षुः) जिनका केवलज्ञानरूप चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो **(सताम्)** इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा **(अर्चितः)** पूजित हैं, **(समग्र-विद्यात्मवपुः)** जीवाजीवादि समस्त पदार्थों को विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्मा का स्वरूप है, **(निरञ्जनः)** ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल हैं, **(नाभिनन्दनः)** चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं, **(जिनः)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और **(जितक्षुल्लक वादिशासनः)** जिन्होंने क्षुद्रवादियों के शासन को जीत लिया है अथवा **(अजितक्षुल्लक-वादिशासनः)** जिनका शासन क्षुद्रवादियों के द्वारा नहीं जीता जा सका है। **(सः)** वे **(वृषभः)** धर्म से सुशोभित रहने वाले अथवा धर्म को सुशोभित करने वाले वृषभनाथ भगवान् **(मम)** मेरे **(चेतः)** चित्त को **(पुनातु)**

पवित्र करें—रागादि विकारी भावों से रहित कर, निर्मल बनावें।

श्री अजितजिनस्तवनम्

भगवान् के अजित नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धुवर्गश्चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(त्रिदिवच्युतस्य) स्वर्ग से अवतीर्ण हुए **(यस्य)** जिनके **(प्रभावात्)** प्रभाव से उनका **(बन्धुवर्गः)** कुटुम्बि—समूह **(क्रीडास्वपि)** बालक्रीड़ाओं में भी **(क्षीवमुखारविन्दः)** हर्षोन्मत्त मुखकमल से युक्त हो जाता था तथा जिनके प्रभाव से वह बन्धुवर्ग **(भुवि)** पृथ्वी पर **(अजेय-शक्तिः)** अजेय शक्ति का धारक रहता था, इसीलिए उस बन्धुवर्ग ने **(यस्य)** जिनका **(अजितः)** अजित **(इति)** यह **(अवन्ध्यम्)** सार्थक **(नाम)** नाम **(चकार)** रखा था।

इसलिए इष्टसिद्धि के अर्थ भव्यजन अब भी उनके नाम का उच्चारण करते हैं, यह कहते हैं—

अद्यापि यस्याजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके ॥२॥

अन्वयार्थ—(अजितशासनस्य) परवादियों के द्वारा अविजित अनेकान्तमत से युक्त तथा **(सतां प्रणेतुः)** सत्पुरुषों के प्रधान नायक **(यस्य)** जिन अजितनाथ भगवान् का **(परं पवित्रं)** अत्यन्त पवित्र **(नाम)** नाम **(अद्यापि)** आज भी **(लोके)** लोक में **(स्वसिद्धिकामेन)** अपने मनोरथों की सिद्धि के इच्छुक **(जनेन)** जन समूह के द्वारा **(प्रतिमङ्गलार्थम्)** प्रत्येक मङ्गल के लिए **(प्रगृह्यते)** सादर ग्रहण किया जाता है।

जिन भगवान् का नाम लिया जाता है, वे किस प्रकार प्रतिबन्धकों का क्षय करके सर्वज्ञ हुए थे? यह कहते हैं—

यः प्रादुरासीत् प्रभुशक्तिभूम्ना भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै।
महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान् ॥३॥

अन्वयार्थ—(मुक्तघनोपदेहः) ज्ञानावरणादि कर्मरूप सघन आवरण से रहित **(यः)** जो **(महामुनिः)** गणधरादि देवों में प्रधान अथवा प्रत्यक्षज्ञानी अजितनाथ भगवान् **(भव्याशयालीन-कलङ्कशान्त्यै)** भव्यजनों के हृदय में संलग्न अज्ञान अथवा उसके कारणभूत ज्ञानावरणादि कर्मरूप कलङ्क की शान्ति के लिए **(प्रभुशक्तिभूम्ना)** जगत् का उपकार करने में समर्थ वाणी के माहात्म्य विशेष अथवा प्रभुत्वशक्ति की प्रचुरता से **('तथा' प्रादुरासीत्)** उस तरह प्रकट हुए थे **(यथा)** जिस तरह कि **(मुक्तघनोपदेहः)** मेघरूप आच्छादन से मुक्त **(भास्वान्)** सूर्य **(अरविन्दाभ्युदयाय)**

कमलों के विकासरूप अभ्युदय के लिए प्रकट होता है।

उत्पन्न हुए भगवान् ने क्या किया ? यह कहते हैं–

येन प्रणीतं पृथु धर्मतीर्थं ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्गं ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः ॥४॥

अन्वयार्थ–(येन) जिन अजितनाथ भगवान् के द्वारा **(प्रणीतं)** प्रकाशित **(पृथु)** अत्यन्त विस्तृत एवं **(ज्येष्ठं)** श्रेष्ठ **(धर्मतीर्थं)** धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म के प्रतिपादक श्रुत को **(प्राप्य)** पाकर **(जनाः)** भव्यजीव **(दुःखं)** संसार परिभ्रमणरूप क्लेश को उस तरह **(जयन्ति)** जीत लेते हैं, जिस तरह कि **(घर्मतप्ताः)** सूर्य के आताप से पीड़ित **(गजप्रवेकाः)** बड़े-बड़े हाथी **(इव)** की तरह **(चन्दनपङ्कशीतं)** चन्दन के द्रव के समान शीतल **(गाङ्गं ह्रदं)** गङ्गा नदी के द्रह–अगाध जल को पाकर सूर्य के संताप से उत्पन्न दुःख को जीत लेते हैं।

किस फल का लक्ष्य कर भगवान् ने धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति की ? यह कहते हैं–

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रु - र्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥५॥

अन्वयार्थ–(विद्याविनिर्वान्त-कषाय-दोषः) जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें प्रतिपादित मोक्षमार्ग के अनुष्ठानरूप विद्या के द्वारा कषायरूपी दोषों को अथवा द्रव्यक्रोधादिरूप कषाय और भावक्रोधादिरूप दोषों को बिल्कुल नष्ट कर दिया है, जो **(ब्रह्मनिष्ठः)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं, **(सममित्र-शत्रुः)** जिन्हें मित्र और शत्रु समान हैं, **(लब्धात्मलक्ष्मीः)** जो आत्मा की अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं और **(जितात्मा)** जिन्होंने अपने आपको जीत लिया है अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं, **(सः)** वे **(अजितः भगवान्)** अन्तरंग-बहिरंग शत्रुओं के द्वारा अपराजित अजितनाथ भगवान् **(मे)** मेरे लिए **(जिनश्रियम्)** आर्हन्त्यलक्ष्मी–अनन्तज्ञानादि विभूति **(विधत्ताम्)** प्रदान करें।

श्री शम्भवजिनस्तवनम्

भगवान् के शंभव नाम की सार्थकता बतलाते हुए कहते हैं–

त्वं शम्भवः संभवतर्षरोगैः सन्तप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै ॥१॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(त्वं शंभवः)** आपसे भव्य जीवों को सुख प्राप्त होता है, इसलिए आप 'शंभव' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हैं। आप **(इह लोके)** इस संसार में **(संभवतर्षरोगैः)** सांसारिक भोग तृष्णा रूप रोगों से **(संतप्यमानस्य)** अतिशय पीड़ित **(जनस्य)**

जन समूह के लिए **(तथा)** उस तरह **(आकस्मिक एव)** फल की अपेक्षा से रहित **(वैद्यः)** वैद्य **(आसीः)** हुए थे, **(यथा)** जिस तरह कि **(अनाथरुजाम्)** अशरण मनुष्यों के रोगों की **(प्रशान्त्यै)** शान्ति के लिए **(वैद्यः)** धनादि की इच्छा से रहित वैद्य होता है।

जिस संसार के भगवान् आकस्मिक वैद्य हुए, वह कैसा है ? यह बतलाते हैं—

अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः प्रसक्तमिथ्याध्यवसायदोषम्।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्त्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(अनित्यम्)** विनश्वर **(अत्राणम्)** रक्षक रहित, **(अहंक्रियाभिः)** 'मैं' ही सब पदार्थों का कर्त्ता-धर्त्ता हूँ, इस प्रकार अहंकार-ममकार की क्रियाओं से **(प्रसक्त-मिथ्याध्यवसायदोषम्)** संलग्न मिथ्या-अभिनिवेशरूप दोष से दूषित तथा **(जन्मजरान्तकार्त्तं)** जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित **(इदं जगत्)** इस जगत् को **(त्वम्)** आपने **(निरञ्जनां)** कर्मकलङ्क से रहित मुक्तिरूप **(शान्तिं)** शान्ति को **(अजीगमः)** प्राप्त कराया है।

इसके सिवाय आपने क्या किया ? यह कहते हैं—

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥३॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से **(सौख्यं)** इन्द्रियजन्य सुख **(शत-ह्रदोन्मेषचलं)** बिजली की कौंध के समान चञ्चल है तथा **(तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः)** तृष्णारूपी रोग की पुष्टि मात्र का कारण है **(च)** और **(तृष्णाभिवृद्धिः)** तृष्णा की चौमुखी वृद्धि **(अजस्रं)** निरन्तर **(तपति)** ताप उत्पन्न करती है एवं वह **(तापः)** ताप **(तत्)** जगत् को **(आयासयति)** क्लेशों की परम्परा द्वारा दुखी करता है, **(इति अवादीः)** ऐसा आपने कहा था।

आगे बन्ध मोक्ष की व्यवस्था आपके ही मत में बनती है, सुगत आदि के मत में नहीं, यह कहते हैं—

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥४॥

अन्वयार्थ—(हे नाथ) हे स्वामिन् **(बन्धश्च)** बन्ध, **(मोक्षश्च)** मोक्ष, **(तयोः हेतू च)** बन्ध और मोक्ष के हेतु **(बद्धश्च)** बद्ध आत्मा **(मुक्तश्च)** मुक्त आत्मा **(च)** और **(मुक्तेः)** मुक्ति का **(फलं)** फल.... यह सब **(स्याद्वादिनः)** अनेकान्तमत से निरूपण करने वाले **(तवैव)** आपके ही **(मते)** मत में **(युक्तं)** ठीक होता है। **(एकान्तदृष्टेः न)** एकान्तदृष्टि रखने वाले बौद्ध अथवा सांख्य आदि के मत में ठीक नहीं होता **(अतः)** इसलिए **(त्वम्)** आप ही **(शास्ता)** तत्त्वोपदेष्टा **(असि)** हैं।

आगे स्तुतिकर्त्ता अपने गर्व का परिहार करते हैं—

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥५॥

अन्वयार्थ—(हे आर्य!) गुणों अथवा गुणवानों के द्वारा सेव्य; हे शंभव जिनेन्द्र! **(पुण्यकीर्तेः)** पवित्र ख्याति, पवित्र वाणी अथवा पुण्यवर्धक स्तुति से युक्त **(तव)** आपकी **(स्तुत्यां)** स्तुति में **(प्रवृत्तः)** प्रवृत्त हुआ **(शक्रः अपि)** अवधिज्ञानी और समस्त श्रुत का धारक इन्द्र भी जब **(अशक्तः)** असमर्थ रहा है, तब **(मादृशः अज्ञः किमु)** मेरे जैसा अज्ञानी पुरुष कैसे समर्थ हो सकता है ? यद्यपि यह बात है **(तथापि)** तो भी **(भक्त्या)** तीव्र अनुराग द्वारा **(स्तुतपादपद्मः)** स्तुत चरणकमलों से युक्त आप **(मम)** मेरे लिए **(उच्चैः)** उत्कृष्ट **(शिवतातिम्)** यथार्थ सुख की सन्तति को **(देयाः)** प्रदान करें।

श्री अभिनन्दनजिनस्तवनम्

भगवान के अभिनन्दन नाम की सार्थकता कहते हैं—

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(गुणाभिनन्दात्)** अनन्तज्ञानादि अन्तरङ्ग और सकल लक्ष्मी आदि बहिरङ्ग गुणों की वृद्धि होने से **(अभिनन्दनः)** अभिनन्दन इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(भवान्)** आपने **(क्षान्तिसखीं)** क्षमा रूप सखी से सहित **(दयावधूम्)** दयारूप स्त्री का **(अशिश्रियत्)** आश्रय लिया था तथा **(समाधितन्त्रः)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानरूप समाधि को प्रधान लक्ष्य बनाकर **(तदुपोपपत्तये)** उसकी सिद्धि के लिए आप **(द्वयेन)** अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग के भेद से दोनों प्रकार के **(नैर्ग्रन्थ्यगुणेन च)** निष्परिग्रहतारूप गुण से **(अयुजत्)** युक्त हुए थे।

अब दयारूप वधू को प्राप्त कर भगवान् ने क्या किया? यह कहते हैं—

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि च ममेदमित्याभिनिवेशिकग्रहात्।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥२॥

अन्वयार्थ—(अचेतने) अचेतन शरीर में **(च)** और **(तत्कृतबन्धजेऽपि)** उस अचेतन शरीर के द्वारा किए हुए कर्मबन्ध से उत्पन्न सुख-दुःखादिक तथा स्त्री-पुत्रादिक परपदार्थों में **(ममेदम्)** यह मेरा है, मैं इसका स्वामी हूँ **(इति)** इस प्रकार के **(आभिनिवेशिकग्रहात्)** मिथ्या अभिप्राय को स्वीकार करने से अथवा मिथ्या अभिप्राय रूप पिशाच से **(च)** तथा **(प्रभङ्गुरे)** विनश्वर शरीर आदि

परपदार्थ में **(स्थावरनिश्चयेन)** स्थायित्व के निश्चय से **(क्षतं)** नष्ट हुए **(जगत्)** जगत् को **(भवान्)** आपने **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप **(अजिग्रहत्)** ग्रहण कराया था—समझाया था।

आगे आपने किस रूप से तत्त्व ग्रहण कराया ? यह कहते हैं—

क्षुदादिदु:खप्रतिकारतः स्थितिर्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥३॥

अन्वयार्थ—(क्षुदादिदु:खप्रतिकारतः) क्षुधा-तृषा आदि के दु:ख का प्रतिकार करने से—भोजनपान ग्रहण करने से **(च)** और **(इन्द्रियार्थ-प्रभवाल्प-सौख्यतः)** स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न अल्प सुख से **(देहदेहिनोः)** शरीर और शरीरधारी आत्मा की **(स्थितिः)** सदा स्थिति **(न)** नहीं रहती, **(ततः)** इसलिए उनसे उनका कुछ **(गुणः)** उपकार **(नास्ति)** नहीं है। **(इत्थम्)** इस तरह **(इदम्)** इस जगत् को **(भगवान्)** भगवान् अभिनन्दन जिनेन्द्र ने **(इति)** यह परमार्थ तत्त्व **(व्यजिज्ञपत्)** बतलाया था।

परम दयालु भगवान् ने जगत् के उपकार के लिए यह कहा, यह बतलाते हैं—

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित् कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥४॥

अन्वयार्थ—(जनः) मनुष्य **(अतिलोलः अपि 'सन्')** अत्यन्त आसक्त होता हुआ भी **(अनुबन्धदोषतः)** आसक्ति रूप दोष से **(भयात्)** राजा आदि के भय के कारण **(इह)** इस संसार में **(अकार्येषु)** परस्त्री सेवन आदि अकरणीय कार्यों में **(न प्रवर्तते)** प्रवृत्त नहीं होता है फिर **(इहापि अमुत्रापि)** इहलोक और परलोक दोनों ही जगह **(अनुबन्धदोषवित्)** आसक्ति के दोष को जानने वाला मनुष्य **(सुखे)** विषय सुख में **(कथं संसजति)** कैसे आसक्त होता है? यह आश्चर्य की बात है। **(इति च अब्रवीत्)** हे अभिनन्दन जिनेन्द्र! जगत् के जीवों को आपने यह भी बतलाया था।

विषयासक्ति रूप अनुबन्ध में और भी दोष दिखलाते हुए कहते हैं—

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत् तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः॥५॥

अन्वयार्थ—(सः अनुबन्धः) वह आसक्तता **(च)** और आसक्तता से उत्पन्न होने वाली **(तृषोऽभिवृद्धिः)** उत्तरोत्तर तृष्णा की वृद्धि दोनों ही **(अस्य जनस्य)** इस विषयासक्त मनुष्य के लिए **(तापकृत्)** संताप उत्पन्न करने वाली है। **(सुखतः)** प्राप्त हुए अल्पमात्र विषय सुख से **(न च स्थितिः)** जीव की सुख से स्थिति नहीं होती अर्थात् अल्प सुख से जीव संतुष्ट नहीं होता **(इति)** इस

तरह **(प्रभो!)** हे स्वामिन् **(यत:)** चूँकि **(मतं)** आपका मत **(लोकहितं)** लोककल्याणकारी है, **(तत:)** इसलिए **(भवानेव)** आप ही **(सतां)** विवेकशाली सत्पुरुषों के **(गति:)** शरण **(मत:)** माने गये हैं।

श्री सुमतिजिनस्तवनम्

भगवान् 'सुमति' इस नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारक-तत्त्वसिद्धिः ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(मुनिः)** प्रत्यक्षज्ञानी हैं तथा **(सुमतिः अन्वर्थसंज्ञः)** सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त हैं—उत्तम बुद्धि से सहित होने के कारण आपका 'सुमति' नाम सार्थक है, **(येन)** क्योंकि आपने **(सुयुक्तिनीतं)** उत्तम युक्तियों से युक्त **(तत्त्वं)** तत्त्व **(स्वयं मतं)** स्वीकृत किया है **(च)** और **(यत:)** जिस कारण से **(शेषेषु मतेषु)** आपके मत से शेष अन्य मतों में **(सर्वक्रियाकारक-तत्त्वसिद्धिः)** सम्पूर्ण क्रियाओं तथा कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों की तत्त्वसिद्धि **(नास्ति)** नहीं है।

आगे तत्त्व की सुयुक्तियुक्तता दिखलाते हुए कहते हैं—

अनेक-मेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(तदेव तत्त्वं) वही सुयुक्ति को प्राप्त तत्त्व **(अनेकं च एकं)** अनेक तथा एक रूप है। **(हि)** निश्चय से **(इदं भेदान्वयज्ञानं)** अनेक को विषय करने वाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाला यह अन्वयज्ञान **(सत्यम्)** यथार्थ है। इनमें से किसी एक को **(उपचार:)** उपचाररूप कल्पित मानना **(मृषा)** मिथ्या है, क्योंकि **(अन्यतरस्य)** दो में से किसी एक का **(लोपे)** लोप—अभाव होने पर **(तच्छेषलोपोऽपि)** उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और **(तत:)** दोनों का अभाव हो जाने से तत्त्व **(अनुपाख्यम्)** निःस्वभाव होने से अवाच्य हो जाता है।

इस प्रकार जीवादि पदार्थों की द्रव्य और पर्याय रूपता दिखलाकर, अब भावा-भावात्मकता दिखलाते हैं—

सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥३॥

अन्वयार्थ—(सत:) स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा सद्रूप जीवादि पदार्थ के **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा **(असत्त्वशक्ति:)** असद्रूपता

है। जैसे कि **(पुष्पं)** फूल **(तरुषु)** वृक्षों पर **(प्रसिद्धं)** प्रसिद्ध है और **(खे)** आकाश में **(नास्ति)** नहीं है। यदि तत्त्व को **(सर्वस्वभावच्युतं)** सत्त्व और असत्त्व दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह **(अप्रमाणं)** प्रमाण रहित हो जायेगा। हे भगवन्! **(तव दृष्टितः अन्यत्)** तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन **(स्ववाग् विरुद्धं)** स्ववाणी से विरुद्ध हैं अर्थात् स्ववचनबाधित हैं।

इस प्रकार जीवाजीवादि तत्त्वों की युगपत् सदसद्रूपता दिखलाकर, अब प्रतिवादी के मत में दूषण देते हुए क्रम से सदसद्रूपता दिखलाते हैं—

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारक - मत्र - युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ॥४॥

अन्वयार्थ—(सर्वथा नित्यं) सब प्रकार से नित्य वस्तु **(न उदेति न अपैति)** न उत्पन्न होती है, न नष्ट ही होती है **(च न)** और न **(अत्र)** इस मान्यता में **(क्रियाकारकं युक्तम्)** क्रियाकारक भाव ही संगत होता है, क्योंकि **(असतः)** असत्—अविद्यमान पदार्थ का **(नैव जन्म)** जन्म नहीं होता और **(सतो न नाशः)** सत्—विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाये कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है? यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि **(दीपः)** दीपक **(तमः पुद्गलभावतः अस्ति)** अन्धकाररूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

अब जीवादि तत्त्वों में नित्यानित्यात्मकपने का निरूपण करते हुए कहते हैं—

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ॥५॥

अन्वयार्थ—(विधिः) अस्तित्व **(च)** और **(निषेधः)** नास्तित्व दोनों ही **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(इष्टौ)** इष्ट हैं। **(विवक्षया)** वक्ता की इच्छा से उनमें **(मुख्यगुण-व्यवस्था)** मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है। **(इति)** इस तरह **(इयं)** यह **(प्रणीतिः)** तत्त्व निरूपण की पद्धति **(सुमतेः तव)** आप सुमतिनाथ स्वामी की है। **(नाथ)** हे स्वामिन्! **('त्वां' स्तुवतः 'मे')** आपकी स्तुति करते हुए मुझे **(मतिप्रवेकः)** मति का उत्कर्ष **(अस्तु)** प्राप्त होवे।

श्रीपद्मप्रभजिनस्तवनम्

भगवान् के पद्मप्रभ इस नाम की सार्थकता दिखलाते हैं—

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः॥१॥

अन्वयार्थ–(पद्मपलाशलेश्य:) जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रङ्ग का था तथा **(पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्ति:)** जिनकी आत्म स्वरूप निर्मल मूर्ति अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरङ्ग लक्ष्मी से एवं जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीररूप मूर्ति नि:स्वेदत्व आदि–पसीना के अभाव आदि रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिङ्गित थी ऐसे **(पद्मप्रभ:)** पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। हे जिनेन्द्र! **(भवान्)** आप **(भव्यपयोरुहाणां)** भव्यजीवरूप कमलों के हितोपदेशरूप विकास के लिए, उस तरह **(बभौ)** सुशोभित हुए थे, **(पद्माकराणामिव पद्मबन्धु:)** जिस तरह कि कमल समूह के विकास के लिए सूर्य सुशोभित होता है।

आगे भगवान् के हितोपदेश की प्रामाणिकता बतलाते हैं–

बभार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्या:।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्त: ॥२॥

अन्वयार्थ–हे पद्मप्रभजिनेन्द्र! **(भवान्)** आपने **(प्रतिमुक्तिलक्ष्म्या: पुरस्तात्)** मोक्षरूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात् अरहन्त अवस्था में **(पद्माम्)** अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी **(च)** और **(सरस्वतीं च)** दिव्यवाणी–दिव्यध्वनि को **(बभार)** धारण किया था अथवा **(समग्रशोभां)** समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप विभूति और समवसरणादि रूप समस्त शोभा से युक्त **(सरस्वतीमेव)** दिव्यवाणी को ही धारण किया था। पीछे **(विमुक्त: सन्)** समस्त कर्ममल से रहित होकर **(ज्वलितां)** देदीप्यमान–सदा उपयोग रूप **(सर्वज्ञलक्ष्मीं)** सर्वज्ञतारूप लक्ष्मी को धारण किया था।

आगे आपके शरीर की कान्ति के विस्तार ने प्रतिमुक्ति लक्ष्मी के पूर्व क्या किया ? यह कहते हैं–

शरीररश्मिप्रसर: प्रभोस्ते बालार्क - रश्मिच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणे: स्वसानुम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(बालार्क-रश्मिच्छवि:) प्रात:कालीन सूर्य की किरणों के समान कान्ति वाले **(ते प्रभो:)** आप स्वामी के **(शरीररश्मिप्रसर:)** शरीर सम्बन्धी किरणों के समूह ने **(नरामराकीर्ण-सभां)** मनुष्य और देवों से व्याप्त समवसरण सभा को **(पद्माभमणे: शैलस्य प्रभावत् स्वसानुमिव आलिलेप)** उस तरह आलिप्त कर रखा था, जिस तरह कि पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्व भाग को आलिप्त कर रखती है।

आगे इस प्रकार के भगवान् क्या एक ही स्थान पर बैठकर रह गये अथवा विहार किया ? यह कहते हैं–

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्त्रपत्राम्बुजगर्भचारै:।
पादाम्बुजै: पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥४॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(पातितमारदर्पः)** कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले **(त्वम्)** आपने **(सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः)** सहस्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने **(पादाम्बुजैः)** चरण कमलों के द्वारा **(नभस्तलं)** आकाश तल को **(पल्लवयन्निव)** पल्लवों से युक्त जैसा करते हुए **(भूमौ)** पृथिवी पर स्थित **(प्रजानां विभूत्यै)** प्रजाजनों की विभूति के लिए **(विजहर्थ)** विहार किया था।

अब कवि अपनी उद्धतता का परिहार करते हुए कहते हैं—

गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्त्रं नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुतातिभक्ति-र्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ऋषेः)** समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप **(तव)** आपके **(गुणाम्बुधेः)** गुणरूप सागर की **(विप्रुषमपि)** एक बूँद की भी **(अजस्रम्)** निरन्तर **(स्तोतुं)** स्तुति करने के लिए जब **(आखण्डलः)** इन्द्र **(प्रागेव)** पहले ही **(अलं न)** समर्थ नहीं हो सका है, तब **(मादृक्)** मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य **(किम् उत)** कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। **(अतिभक्तिः)** यह तीव्र भक्ति ही **(मां बालं)** मुझ अज्ञानी से **(इत्थं)** इस तरह **(इदं)** इस स्तवन को **(आलापयति)** कहला रही है।

श्री सुपार्श्व-जिनस्तवनम्

आगे सच्चे स्वास्थ्य का लक्षण कहते हुए कहते हैं—

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान्सुपार्श्वः ॥१॥

अन्वयार्थ—(यत् आत्यन्तिकं स्वास्थ्यम्) जो अविनाशी स्वरूपलीनता है **(एष)** यही **(पुंसां)** जीवात्माओं का **(स्वार्थः)** निजी प्रयोजन है, **(परिभङ्गुरात्मा)** क्षणभङ्गुर **(भोगः)** भोग **(स्वार्थः न)** निजी प्रयोजन नहीं है। **(तृषः)** उत्तरोत्तर भोगाकाङ्क्षा की **(अनुषङ्गात्)** वृद्धि से **(न च तापशान्तिः)** ताप की शान्ति नहीं होती है, **(इति इदम्)** इस प्रकार यह विवेक **(भगवान् सुपार्श्वः)** विशिष्ट ज्ञानी सुपार्श्वनाथ ने **(आख्यत्)** कहा है।

भगवान् ने न केवल उक्त सुखादि का उपदेश दिया, किन्तु शरीर के उपदेश का भी क्रम रखा है, यह कहते हैं—

अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(जङ्गमनेययन्त्रं)** गतिशील मनुष्य के द्वारा चलाया जाने

वाला यन्त्र स्वयं **(अजङ्गमं)** गति रहित होता है, **(तथा)** उसी तरह **(जीवधृतं)** जीव के द्वारा धारण किया हुआ **(शरीरं)** शरीर स्वयं (अजङ्गमं) गति रहित है—जड़ है। साथ ही यह शरीर **(बीभत्सु)** घृणित **(पूति)** दुर्गन्ध से युक्त, **(क्षयि)** विनश्वर **(च)** और **(तापकं)** संताप उत्पन्न करने वाला है इसलिए **(अत्र)** इस शरीर में **(स्नेहः)** अनुराग करना **(वृथा)** व्यर्थ है। **(इति)** यह **(हितं)** हितकारक वचन **(त्वम्)** हे सुपार्श्व जिन! आपने **(आख्यः)** कहा है।

यदि भगवान् ने हित का उपदेश दिया था तो उनके वचन सुनकर सभी लोग शरीरादि से विरक्त होकर हित के मार्ग में क्यों नहीं लगे? यह कहते हैं—

अलङ्घ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३॥

अन्वयार्थ—(हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा) शुभ-अशुभ कर्म अथवा बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कारणों से उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिङ्ग—ज्ञापक है, ऐसी **(इयं)** यह **(भवितव्यता)** भवितव्यता—होनहार **(अलङ्घ्यशक्तिः)** अलङ्घ्यशक्ति है—किसी भी तरह टाली नहीं जा सकती तथा भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला **(अहंक्रियार्त्तः)** अहंकार से पीड़ित हुआ **(जन्तुः)** संसारी प्राणी **(संहत्यकार्येषु)** अनेक सहकारी कारणों से मिलकर भी सुख-दुःखादि कार्यों में **(अनीश्वरः)** असमर्थ है। हे सुपार्श्वजिनेन्द्र! आपने **(इति)** यह **(साधु)** ठीक ही **(अवादीः)** कहा है।

आगे यही दिखलाते हुए कहते हैं—

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥४॥

अन्वयार्थ—यह जीव **(मृत्योः)** मरण से **(बिभेति)** डरता है परन्तु **(ततः)** उससे **(मोक्षः)** छुटकारा **(न अस्ति)** नहीं है। **(नित्यं)** सदा **(शिवं)** कल्याण अथवा निर्वाण की **(वाञ्छति)** इच्छा करता है परन्तु **(अस्य लाभः न)** इसकी प्राप्ति नहीं होती। **(तथापि)** फिर भी **(भयकाम-वश्यः)** भय और काम के वशीभूत हुआ **(बालः)** अज्ञानी प्राणी **(स्वयं)** स्वयं ही **(वृथा)** निष्प्रयोजन **(तप्यते)** दुःखी होता है। हे भगवन् **(इति)** यह आपने **(अवादीः)** कहा है।

यहाँ कोई कहता है कि हेयोपादेय तत्त्व का ठीक-ठीक ज्ञान होने पर ही उनका उपदेश प्रामाणिकता को प्राप्त होता है-

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥५॥

अन्वयार्थ—(भवान्) आप **(सर्वस्य तत्त्वस्य)** समस्त जीवादि पदार्थों के **(प्रमाता)** संशयादि रहित ज्ञाता हैं, **(बालस्य)** सन्तान को **(मातेव)** माता के समान अज्ञानी जनों को **(हितानुशास्ता)** हित का उपदेश देने वाले हैं और **(गुणावलोकस्य जनस्य)** सम्यग्दर्शनादि गुणों का अन्वेषण करने वाले भव्य समूह के **(नेता)** सन्मार्ग दर्शक हैं अतः **(अद्य)** आज **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी; हे सुपार्श्वजिनेन्द्र! (त्वम्) आप **(भक्त्या)** भक्ति पूर्वक **(परिणूयसे)** मन, वचन, काय से स्तुत हो रहे हैं—मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

श्री चन्द्रप्रभजिनस्तवनम्

भगवान् के चन्द्रप्रभ नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥१॥

अन्वयार्थ—मैं **(चन्द्रमरीचिगौरं)** चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण, **(जगति)** संसार में **(द्वितीयं चन्द्रमिव कान्तं)** दूसरे चन्द्रमा के समान सुन्दर, **(महतां)** इन्द्र आदि बड़े-बड़े जनों के **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय, **(ऋषीन्द्रं)** गणधरादि ऋषियों के स्वामी, **(जिनं)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले और **(जितस्वान्तकषायबन्धम्)** अपने विकारी भाव स्वरूप कषाय के बन्धन को जीतने वाले, **(चन्द्रप्रभं)** चन्द्रमा के समान कान्ति के धारक चन्द्रप्रभ नामक अष्टम तीर्थङ्कर को **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

चन्द्रप्रभ भगवान् की विशेषता बतलाते हुए कहते हैं—

यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(अङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं)** शरीर सम्बन्धी दिव्यप्रभा-मण्डल से विदारित **(बहु)** बहुत सारा **(बाह्यं)** बाह्य अन्धकार **(च)** और **(ध्यान-प्रदीपातिशयेन)** शुक्लध्यानरूपी श्रेष्ठ दीपक के अतिशय से **(भिन्नं)** विदारित **(बहु)** बहुत सारा **(मानसं)** मानसिक अज्ञानान्धकार **(तमोरेः)** सूर्य की **(रश्मिभिन्नं)** किरणों से विदारित **(तम इव)** अन्धकार के समान **(ननाश)** नष्ट हो गया था।

अब इस प्रकार के भगवान् के वचन सुनकर प्रतिवादी मद रहित हो गये, यह कहते हैं—

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(केसरिणः)** सिंह की **(निनादैः)** गर्जनाओं से **(मदार्द्रगण्डाः)**

मद से गीले गण्डस्थलों के धारक **(गजा:)** हाथी **(विमदा:)** मद से रहित हो जाते हैं **(तथा)** उसी प्रकार **(यस्य)** जिनके **(वाक्‌सिंहनादै:)** वचन रूप सिंहनादों के द्वारा **(स्वपक्षसौस्थित्य-मदावलिप्ता:)** अपने मत–पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले **(प्रवादिन:)** प्रवादीजन **(विमदा:)** गर्व रहित **(बभूवु:)** हो जाते थे।

भगवान् फिर कैसे हैं ? यह बतलाते हैं–

य: सर्वलोके परमेष्ठिताया: पदं बभूवाद्‌भुतकर्मतेजा:।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षु: समन्तदु:खक्षयशासनश्च ॥४॥

अन्वयार्थ–(य:) जो **(सर्वलोके)** समस्त संसार में **(परमेष्ठिताया:)** परमाप्तपना के **(पदं)** स्थान **(बभूव)** थे, **(अद्‌भुत-कर्मतेजा:)** तीव्र तपश्चरणरूप कार्य से जिनका तेज अद्‌भुत–अचिन्त्य था अथवा समस्त प्राणिसमूह को प्रतिबोधित करने रूप कार्य में जिनका केवलज्ञान रूप तेज आश्चर्यकारक था, **(अनन्त-धामाक्षरविश्वचक्षु:)** अनन्त केवलज्ञान ही जिनका लोकालोक को प्रकाशित करने वाला अविनाशी चक्षु था, **(च)** और **(समन्त-दु:खक्षयशासन:)** जिनका शासन चतुर्गति के दु:खों का क्षय करने वाला था।

चन्द्रप्रभ भगवान् फिर कैसे हैं? यह बतलाते हैं–

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेप:।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमाल: पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥५॥

अन्वयार्थ–जो **(भव्यकुमुद्वतीनां चन्द्रमा:)** भव्यजीवरूप कुमुदिनियों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा हैं, **(विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेप:)** जिनका रागादि दोष रूप मेघकलङ्क का आवरण नष्ट हो गया है, **(व्याकोश-वाङ्न्याय-मयूखमाल:)** जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों के न्यायरूप किरणों की माला से युक्त हैं तथा **(पवित्र:)** कर्ममल से रहित होने के कारण जो अत्यन्त विशुद्ध हैं, **(स: भगवान्)** वे चन्द्रप्रभ भगवान् **(मे)** मेरे **(मन:)** मन को **(पूयात्)** पवित्र करें।

श्री सुविधिजिनस्तवनम्

आगे सुविधि जिनेन्द्र ने जो उपदेश दिया है उसे दूसरे नहीं प्राप्त कर सके हैं, यह कहते हैं–

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना नैतत्समालीढपदं त्वदन्यै: ॥१॥

अन्वयार्थ–(सुविधे) हे सुविधिनाथ भगवन्! **(त्वया)** आपके द्वारा **(स्वधाम्ना)** अपने ज्ञानरूप तेज से **(प्रणीतं)** प्रतिपादित **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थ **(एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधि)** एकान्त दर्शन का निषेध करने वाला है, **(प्रमाण-सिद्धं)** प्रत्यक्षादि–प्रमाणों से सिद्ध है तथा **(तदतत्स्वभावम्)**

तत् और अतत् स्वभाव को लिए है अर्थात् विधि निषेध रूप है। हे भगवन् **(एतत्)** यह तत्त्व **(त्वदन्यैः)** आपसे भिन्न सुगत आदि के द्वारा **(समालीढपदं न)** अनुभूत स्थान वाला नहीं है–सुगतादि के द्वारा ऐसा तत्त्व प्रतिपादित नहीं हो सका है।

इस प्रकार तत्त्व की विधि-निषेधकता को युक्ति द्वारा सिद्ध करते हैं–

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात् तथा-प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥२॥

अन्वयार्थ–हे सुविधिजिनेन्द्र! **(तव)** आपका **(तत्)** वह तत्त्व **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(तदेव च स्यात्)** तद्रूप ही है **(च)** और **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(तदेव न स्यात्)** तद्रूप नहीं है, क्योंकि **(तथा-प्रतीतेः)** उस प्रकार की प्रतीति होती है। **(विधेः)** विधि **(च)** और **(निषेधस्य)** निषेध में **(अत्यन्तं)** सर्वथा **(न अन्यत्वम्)** न भिन्नता है **(च)** और **(अनन्यता)** न अभिन्नता है, क्योंकि ऐसा मानने से **(शून्य-दोषात्)** शून्यता का दोष आता है।

अब पदार्थ की नित्यानित्यात्मकता दिखलाते हैं–

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते-र्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(इदं तदेव)** यह वही है **(इति)** इस प्रकार **(प्रतीतेः)** प्रतीति होने से तत्त्व **(नित्यं)** नित्य है और **(अन्यत्प्रतिपत्ति-सिद्धेः)** यह अन्य है, इस प्रकार प्रतीति होने से **(नित्यं न)** नित्य नहीं है तथा **(ते)** आपके मत में **(बहिरन्तरङ्गनिमित्त-नैमित्तिकयोगतः)** बहिरङ्ग-अन्तरङ्ग कारण और कार्य के योग से **(तद्)** वह नित्यानित्यात्मक तत्त्व **(विरुद्धं न)** विरुद्ध भी नहीं है।

आगे आगम से भी वस्तु की अनेकान्तात्मकता दिखलाते हैं–

अनेक-मेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षेऽनियमेऽपवादः ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(पदस्य)** सुबन्त-तिङन्त रूप शब्द का **(वाच्यं)** अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय **(प्रकृत्या)** स्वभाव से ही **(वृक्षा इति प्रत्ययवत्)** वृक्ष इस ज्ञान की तरह **(अनेकं)** अनेक **(च)** और **(एकं)** एक दोनों रूप होता है। **(आकाङ्क्षिणः)** विरोधी धर्म के प्रतिपादन की इच्छा रखने वाले पुरुष के **(स्यात् इति निपातः)** कथंचित् अर्थ का प्रतिपादक स्यात् यह शब्द **(गुणानपेक्षे)** गौण अर्थ की अपेक्षा न रखने वाले **(अनियमे)** सर्वथा एकान्तरूप कथन में **(वै)** निश्चय से **(अपवादः)** बाधक है।

इस प्रकार पद के अभिधेय का स्वरूप कहकर, अब वाक्य के अभिधेय का स्वरूप कहते हैं—

गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(जिनस्य)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले **(ते)** आपका **(इदम्)** यह जो **(गुणप्रधानार्थम्)** गौण और प्रधान अर्थ से युक्त **(वाक्यं)** वाक्य है। **(तद्)** वह **(हि)** निश्चय से **(द्विषताम्)** द्वेष रखने वाले सर्वथा एकान्तवादियों के लिए **(अपथ्यं)** अनिष्ट है, **(ततः)** इसलिए **(साधोः)** समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए प्रयत्नशील **(तव)** आपके **(पादपद्मं)** चरण-कमल **(जगदीश्वराणां)** तीनों जगत् के स्वामी इन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्र के और **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय हैं।

श्री शीतलजिनस्तवनम्

अब भगवान् के वचनों की शीतलता का वर्णन करते हैं—

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(मुनेः ते)** चराचर को प्रत्यक्ष जानने वाले आप शीतल जिनेन्द्र की **(शमाम्बुगर्भाः)** शान्तिरूप जल से मिश्रित **(अनघवाक्य-रश्मयः)** निर्दोष वचनरूप किरणें **(विपश्चितां)** हेयोपादेय तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के लिए **(यथा)** जिस प्रकार **(शिशिराः)** शीतल हैं—संसार संताप को नष्ट कर शान्ति पहुँचाने वाली हैं तथा उस प्रकार **(चन्दनचन्द्ररश्मयः)** चन्दन और चन्द्रमा की किरणें, **(गाङ्गमम्भः)** गङ्गा नदी का जल **(च)** और **(हारयष्टयो न शीतलाः)** मोतियों की मालाएँ शीतल नहीं हैं।

आगे जिन भगवान् के वचन शीतल हैं, उन्होंने क्या किया ? यह बतलाते हैं—

सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
व्यदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं यथा भिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(विषदाहमोहितं)** विषरूपी दाह से मूर्च्छित **(स्वविग्रहं)** अपने शरीर को **(भिषक्)** वैद्य **(मन्त्रगुणैः)** मन्त्र के गुणों के द्वारा शान्त करता है। उसी प्रकार हे भगवन्! **(त्वं)** आपने **(सुखाभिलाषा-नलदाहमूर्च्छितं)** वैषयिक सुखों की अभिलाषारूप अग्नि की दाह से मूर्च्छित **(निजं)** अपने **(मनः)** मन को **(ज्ञानमयामृताम्बुभिः)** ज्ञानामृतरूप जल के द्वारा **(व्यदिध्यपः)** शान्त किया था।

आगे विशुद्धता के मार्ग में आप ही जागृत-सावधान रहे, यह कहते हैं—

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्य! नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥३॥

अन्वयार्थ—(प्रजाः) लौकिकजन **(स्वजीविते)** अपने जीवन **(च)** और **(कामसुखे)** स्त्री आदि की अभिलाषा से उत्पन्न काम-सुख की **(तृष्णया)** तृष्णा से **(दिवा)** दिन में **(श्रमार्त्ताः)** सेवा-कृषि आदि के श्रम से दुखी रहते हैं और **(निशि)** रात्रि में **(शेरते)** सो जाते हैं, परन्तु **(हे आर्य)** हे पूज्य शीतलजिनेन्द्र! **(त्वम्)** आप **(नक्तं दिवम्)** रात-दिन **(अप्रमत्तवान्)** प्रमाद रहित हो, **(आत्मविशुद्धवर्त्मनि)** आत्मा को अत्यन्त शुद्ध करने वाले सम्यग्दर्शनादिरूप मार्ग में **(अजागः एव)** जागते ही रहे हैं।

आगे अन्य प्राणियों और आपकी प्रवृत्ति में विशेषता बतलाते हैं—

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते।
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत् ॥४॥

अन्वयार्थ—(केचन) कितने ही **(तपस्विनः)** दयनीय प्राणी अथवा व्रतीजन **(अपत्यवित्तोत्तर-लोकतृष्णया)** सन्तान, धन तथा उत्तरलोक-परलोक या उत्कृष्ट लोक की तृष्णा से **(कर्म)** अग्निहोम आदि कार्य **(कुर्वते)** करते हैं, **(पुनः)** किन्तु **(भवान्)** आपने **(समधीः)** समबुद्धि होकर **(जन्मजरा-जिहासया)** जन्म और जरा को छोड़ने की इच्छा से **(त्रयीं प्रवृत्तिं)** मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को **(अवारुणत्)** रोका है अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप भेद रत्नत्रय को दूरकर, शुद्ध आत्मस्वरूप की लीनता रूप अभेद रत्नत्रय को अंगीकृत किया है।

आगे हरिहरादिक भी आपके तुल्य हैं, ऐसी आशङ्का कर उसका समाधान करते हैं—

त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेकैर्जिन! शीतलेड्यसे ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे शीतलजिनेन्द्र! **(उत्तमज्योतिः)** केवलज्ञानरूप उत्कृष्ट ज्योति से सहित **(अजः)** पुनर्जन्म से रहित और **(निर्वृतः)** सुखीभूत **(त्वम्)** आप **(क्व)** कहाँ और **(बुद्धिलवोद्धवक्षताः)** ज्ञान के लेशमात्र से उत्पन्न गर्व से नष्ट **(ते परे)** वे हरि-हर-हिरण्यगर्भ आदि अन्य देवता **(क्व)** कहाँ ? दोनों में महान् अन्तर है, **(ततः)** इसीलिए **(स्वनिःश्रेयस-भावनापरैः)** आत्मकल्याण की भावना में तत्पर **(बुधप्रवेकैः)** श्रेष्ठ विद्वानों—गणधरादिक, श्रेष्ठ ज्ञानियों के द्वारा **(ईड्यसे)** आप स्तुत हो रहे हैं—आपकी स्तुति की जा रही है।

श्री श्रेयोजिनस्तवनम्

आगे भगवान् के 'श्रेयस्' इस नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्नेको यथा वीतघनो विवस्वान्॥१॥

अन्वयार्थ—(अजेयवाक्यः) अबाधित वचनों से युक्त **(श्रेयान् जिनः)** हे श्रेयोजिन! **(इमाः प्रजाः)** इन संसारीजनों को **(श्रेयसि वर्त्मनि)** कल्याणकारी मोक्षमार्ग में **(श्रेयः शासत्)** हित का उपदेश देते हुए **(भवान्)** आप **(अस्मिन् भुवनत्रये)** इन तीनों लोकों में **(एकः)** अकेले ही **(वीतघनः)** मेघों के आवरण से रहित **(विवस्वान् यथा)** सूर्य के समान **(चकासे)** प्रकाशमान हुए हैं।

आगे विधि और निषेध की मुख्यता तथा गौणता का प्रतिपादन करते हैं—

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥२॥

अन्वयार्थ—हे श्रेयोजिन! **(ते)** आपके मत में **(विषक्तप्रतिषेधरूपः)** कथञ्चित् परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्वरूप भी तादात्म्यसम्बन्ध से सम्बद्ध है ऐसा **(विधिः)** स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्व **(प्रमाणं)** प्रमाण का विषय है। **(अत्र)** इन विधि और प्रतिषेध में **(अन्यतरत्)** एक **(प्रधानम्)** प्रधान है और **(अपरः)** दूसरा **(गुणः)** अप्रधान है। यहाँ **(मुख्यनियामहेतुः)** मुख्य के नियम का जो हेतु है **(नयः)** वह नय है तथा **(सः)** वह नय **(दृष्टान्तसमर्थनः)** दृष्टान्त का समर्थन करने वाला है।

अब मुख्य कौन है तथा गौण कौन है ? यह बताते हैं—

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्यकरं हि वस्तु ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(विवक्षितः)** विवक्षित पदार्थ **(मुख्य इतीष्यते)** मुख्य कहलाता है और **(अन्यः)** दूसरा—अविवक्षित पदार्थ **(गुणः)** गौण कहलाता है। **(अविवक्षः)** जो पदार्थ अविवक्षित है, वह **(निरात्मकः न)** अभावरूप नहीं है **(तथा)** मुख्य और गौण की इस विधि से **(वस्तु)** पदार्थ **(अरिमित्रानुभयादि-शक्तिः)** शत्रु, मित्र और अनुभय आदि शक्तियों से युक्त होता है। **(हि)** निश्चय से समस्त पदार्थों की **(द्वयावधिः)** भाव-अभाव अथवा द्रव्य और पर्यायरूप मर्यादा है और उसी मर्यादा का आश्रय कर वस्तु **(कार्यकरं)** कार्यकारी होती है।

आगे दृष्टान्त की उपयोगिता सिद्ध करते हैं–

दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्तनियामि दृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥४॥

अन्वयार्थ–(उभयोः) वादी और प्रतिवादी के **(विवादे)** विवाद में **(दृष्टान्त-सिद्धौ)** उदाहरण की सिद्धि होने पर **(साध्यं)** साध्य **(प्रसिद्ध्येत्)** अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है, **(तु)** परन्तु **(तादृक् न दृष्टं अस्ति)** वैसी दृष्टान्तभूत कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं है **(यत्)** जो **(सर्वथैकान्तनियामि)** सर्वथा एकान्तवाद का नियमन करने वाली हो, क्योंकि **(त्वदीयदृष्टिः)** आपका अनेकान्तमत **(अशेषे)** समस्त–साध्य, साधन और दृष्टान्त में **(विभवति)** अपना प्रभाव डाले हुए है।

अब एकान्त का निषेध और अनेकान्त की सिद्धि किससे होती है? यह बतलाते हैं–

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥५॥

अन्वयार्थ–हे श्रेयोजिनेन्द्र! **(एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिः)** एकान्त दृष्टि के निषेध की सिद्धि **(न्यायेषुभिः)** न्यायरूप बाणों के द्वारा होती है अर्थात् आपने न्याय रूप बाणों के द्वारा सर्वथा एकान्तवादियों का निराकरण कर उन पर विजय प्राप्त की है और (यतः) जिस कारण आप **(मोहरिपुं)** अज्ञानरूपी शत्रु अथवा मोहनीयकर्म से युक्त ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों को **(निरस्य)** नष्टकर **(कैवल्यविभूतिसम्राट्)** केवलज्ञानरूप विभूति अथवा समवसरणादि-रूप लक्ष्मी के सम्राट् **(असि स्म)** हुए हैं **(ततः)** इस कारण **(अर्हन्)** हे अर्हन्त! **(त्वम्)** आप **(मे)** मेरे **(स्तवार्हः)** स्तवन के योग्य **(असि)** हैं अर्थात् मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

श्री वासुपूज्यजिनस्तवनम्

मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा भगवान् वासुपूज्य की पूजा-विधि का विधान करते हैं–

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र! दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥१॥

अन्वयार्थ–(हे मुनीन्द्र!) हे गणधरादि मुनियों के स्वामी! **(शिवासु)** कल्याण-कारिणी **(अभ्युदयक्रियासु)** स्वर्गावतरण आदि कल्याणकों की क्रियाओं में **(पूज्यः)** पूज्य, **(वासुपूज्यः)** वासुपूज्य नाम को धारण करने वाले **(त्वम्)** आप चूँकि **(त्रिदशेन्द्रपूज्यः)** इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं, अतः **(अल्पधिया)** अल्पबुद्धि के धारक **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी **(पूज्यः)** पूज्य हैं। **(किं)** क्या **(दीपार्चिषा)** दीपशिखा के द्वारा **(तपनः)** सूर्य **(न पूज्यः)** पूजनीय

नहीं होता?

आपकी पूजा से आपको क्या प्रयोजन है? यह कहते हैं—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥२॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन्! यद्यपि **(वीतरागे)** राग से रहित **(त्वयि)** आप में **(पूजया)** पूजा के द्वारा **(न)** प्रयोजन नहीं है और **(विवान्तवैरे)** वैर से रहित आप में **(निन्दया)** निन्दा के द्वारा **(अर्थः न)** प्रयोजन नहीं है। **(तथापि)** तो भी **(ते)** आपके **(पुण्यगुणस्मृतिः)** प्रशस्त गुणों का स्मरण **(नः)** हमारे **(चित्तं)** मन को **(दुरिताञ्जनेभ्यः)** पापरूपी अञ्जन से **(पुनातु)** पवित्र करे—दूर रखे।

पूजा में होने वाली अल्पहिंसा दोष का कारण नहीं है, यह कहते हैं—

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(पूज्यं)** इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा **(जिनं)** कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले **(त्वा)** आपकी **(अर्चयतः)** पूजा करने वाले **(जनस्य)** मनुष्य के जो **(सावद्यलेशः)** सरागपरिणति अथवा आरम्भादिजनित थोड़ा-सा पाप का लेश होता है, वह **(बहुपुण्यराशौ)** बहुत भारी पुण्य की राशि में **(दोषाय)** दोष के लिए **(अलं न)** समर्थ नहीं है, क्योंकि **(विषस्य)** विष की **(कणिका)** अल्पमात्रा **(शीतशिवाम्बुराशौ)** शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में **(दूषिका न)** दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

पुष्पादि बाह्य सामग्री के बिना भी मुनि के पूजा संभव है, यह कहते हैं—

यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूते - र्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥४॥

अन्वयार्थ—(यद् वस्तु) जो पुष्पादिक पदार्थ **(गुणदोषसूतेः)** पुण्य और पाप की उत्पत्ति के **(बाह्यं)** बहिरङ्ग **(निमित्तं)** कारण हैं **(तद्)** वह **(अध्यात्म-वृत्तस्य)** आत्मा में प्रवर्तने वाले **(अभ्यन्तरमूलहेतोः)** अन्तरङ्ग/उपादानरूप मूलकारण का **(अङ्गभूतं)** सहकारी कारण है। हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अभ्यन्तरं)** अन्तरङ्ग कारण **(केवलमपि)** बाह्य वस्तु से निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही प्रकार का **(अलं)** गुण-दोष की उत्पत्ति में समर्थ है।

बाह्य और आभ्यन्तर सामग्री से ही कार्य की उत्पत्ति होती है, यह कहते हैं—

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(कार्येषु)** घट आदि कार्यों में **(इयं)** यह जो **(बाह्ये-तरोपाधिसमग्रता)** बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है, वह **(ते)** आपके मत में **(द्रव्यगतः)** जीवादि द्रव्यगत **(स्वभावः)** स्वभाव है। **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं, किन्तु **(पुंसां)** मोक्षाभिलाषी पुरुषों के **(मोक्षविधिश्च)** मोक्ष की विधि भी **(नैव)** घटित नहीं होती है, **(तेन)** इसीलिए **(ऋषिः)** परम ऋषियों से युक्त **(त्वम्)** आप **(बुधानां)** गणधरादि बुधजनों के **(अभिवन्द्यः)** वन्दनीय हैं।

श्री विमलजिनस्तवनम्

आगे निरपेक्ष नय मिथ्या हैं, यह कहते हैं—

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥१॥

अन्वयार्थ—(य एव) जो ही **(नित्यक्षणिकादयः नयाः)** नित्य अथवा क्षणिक आदि नय **(मिथोऽनपेक्षाः)** परस्पर में निरपेक्ष होकर अन्यमतों में **(स्वपर-प्रणाशिनः)** निज और पर का नाश करने वाले हैं, **(ते एव)** वे ही नय **(परस्परेक्षाः)** परस्पर की अपेक्षा रखते हुए **(स्वपरोप-कारिणः)** निज और पर का उपकार करने वाले होकर **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी **(ते)** आप **(विमलस्य)** विमल जिनेन्द्र के मत में **(तत्त्वं)** वस्तु स्वरूप होते हैं।

आगे नयों में प्रतिनियत व्यवस्था का विधान करते हैं—

यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(एकशः)** एक-एक **(कारकम्)** उपादानकारण या निमित्तकारण **(स्वसहायकारकं)** अपनी सहायता करने वाले **(शेषं)** अन्य कारक की **(समीक्ष्य)** अच्छी तरह अपेक्षा करके **(अर्थसिद्धये)** कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ होता है। **(तथैव)** उसी प्रकार **(सामान्य-विशेषमातृका)** सामान्य और विशेष से उत्पन्न अथवा सामान्य और विशेष को जानने वाले एवं **(गुणमुख्यकल्पतः)** गौण और मुख्य की कल्पना से **(तव)** आपके **(इष्टाः)** अभिप्रेत **(नयाः)** नय (अर्थसिद्धये) कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ हैं।

आगे नयों की सामान्यविशेषमातृकता सिद्ध करते हैं—

परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यथा)** जिस प्रकार **(भुवि)** पृथिवी पर **(स्वपराव-भासकं)** स्व और पर को प्रकाशित करने वाला **(बुद्धिलक्षणं)** ज्ञानरूप लक्षण से युक्त **(प्रमाणं)** प्रमाण प्रसिद्ध है। **(तथा)** उसी प्रकार **(तव)** आपके मत में **(परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः)** परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले अभेद और भेद के ज्ञान से **(प्रसिद्धसामान्यविशेषयोः)** प्रसिद्ध सामान्य और विशेष की **(समग्रता)** पूर्णता **(अस्ति)** विद्यमान है।

अब विशेष्य और विशेषण का स्वरूप बतलाते हैं—

विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं वचो यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(विशेष्यवाच्यस्य)** वाच्यभूत विशेष का वह **(वचः)** वचन **(यतः)** जिससे **(विशेष्यं)** विशेष्य **(विनियम्यते)** नियमित किया जाता है **(विशेषणं)** विशेषण कहलाता है और **(यत्)** जो **(विनियम्यते)** नियमित होता है **(तत्)** वह **(विशेष्यं)** विशेष्य कहलाता है **(च)** और **(तयोः)** उन विशेषण और विशेष्य में यद्यपि **(सामान्य-मतिप्रसज्यते)** सामान्य का प्रसङ्ग आता है, परन्तु **(ते)** आपके मत में **(स्यादिति)** कथञ्चित् अर्थ के वाचक स्यात् पद के द्वारा **(विवक्षितात्)** विवक्षित विशेषण विशेष्य से **(अन्यवर्जनम्)** अविवक्षित विशेषण विशेष्य का परिहार हो जाता है।

आगे स्यात् शब्द का फल दिखलाते हुए कहते हैं—

नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यतः)** चूँकि **(स्यात्पदसत्यलाञ्छिताः)** स्यात् पद रूपी सत्य से चिह्नित **(तव)** आपके **(नयाः)** नय **(रसोपविद्धाः)** रस से अनुलिप्त **(लोहधातवः इव)** लोह धातुओं के समान **(अभिप्रेतगुणाः)** इष्ट गुणों से युक्त पक्ष में सुवर्ण आदि इष्ट पदार्थ के गुणों से युक्त **(भवन्ति)** होते हैं, **(ततः)** इसलिए **(हितैषिणः)** हित के इच्छुक **(आर्याः)** गणधर आदि उत्तम पुरुष **(भवन्तं)** आपके प्रति **(प्रणताः)** नम्रीभूत हैं।

श्री अनन्तजिनस्तवनम्

भगवान् के अनन्तजित् नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित् ॥१॥

अन्वयार्थ–(अनन्तदोषाशयविग्रहः) जिसका शरीर अनन्त रागादि दोषों का आधार है तथा जो **(चिरं)** चिरकाल से **(हृदि)** हृदय में **(विषङ्गवान्)** संलग्न था अथवा ममता भाव से सहित था, ऐसा **(मोहमयः)** मोहरूप **(ग्रहः)** पिशाच **(तत्त्व-रुचौ)** तत्त्व श्रद्धा से **(प्रसीदता)** प्रसन्न रहने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा, **(यतः)** क्योंकि **(जितः)** जीत लिया था, **(ततः)** इसलिए आप **(भगवान्)** भगवान् **(अनन्त-जित्)** अनन्तजित् इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(अभूः)** हुए हैं।

आगे कषाय रूप शत्रुओं को जीतकर आप सर्वज्ञ हुए, यह कहते हैं–

कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयत् ॥२॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रमाथिनाम्)** दुःख देने वाले **(कषायनाम्नां द्विषताम्)** कषाय नामक शत्रुओं के **(नाम)** नाम को हृदय में **(अशेषयन्)** समाप्त करते हुए **(अशेषवित्)** सर्वज्ञ हुए हैं तथा आपने **(समाधि-भैषज्यगुणैः)** ध्यानरूप औषधि के गुणों के द्वारा **(विशोषणं)** संतापकारक **(मन्मथदुर्मदामयं)** कामदेव के दुष्ट दर्परूपी रोग को **(व्यलीनयत्)** विलीन किया है–नष्ट किया है।

आगे आपको निर्वाणधाम की प्राप्ति किस तरह हुई? यह कहते हैं–

परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी त्वया स्वतृष्णासरिदार्य! शोषिता।
असङ्गघर्मार्क-गभस्तितेजसा परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(परिश्रमाम्बुः) जिसमें परिश्रमरूपी जल भरा है और **(भयवीचि-मालिनी)** भयरूप तरङ्गों की मालाएँ उठ रही हैं, ऐसी **(स्वतृष्णा-सरित्)** अपनी भोगाकाङ्क्षारूप नदी **(हे आर्य)** हे पूज्य **(त्वया)** आपके द्वारा **(असङ्ग-घर्मार्क गभस्ति-तेजसा)** निष्परिग्रहतारूप ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के तेज से **(शोषिता)** सुखा दी गई है, **(ततः)** इसलिए **(परम्)** उसके आगे विद्यमान **(निर्वृतिधाम)** निर्वाण-स्थान **(तावकम्)** आपका ही है अथवा आपका अनन्तज्ञानादि तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है।

अब भगवान् की वीतरागता का प्रतिपादन करते हैं–

सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वयि सुहृद्)** आप में उत्तम हृदय को रखने वाला-भक्त पुरुष **(श्रीसुभगत्वं)** लक्ष्मी के वल्लभपने को **(अश्नुते)** प्राप्त होता है और **(त्वयि द्विषन्)** आपमें द्वेष रखने वाला—अभक्त पुरुष **(प्रत्ययवत्)** व्याकरण के प्रसिद्ध क्विप् आदि प्रत्ययों अथवा क्षायोपशमिक ज्ञान के समान **(प्रलीयते)** नष्ट हो जाता है—चतुर्गति के दुःखों का अनुभव करता है, परन्तु **(भवान्)** आप **(तयोरपि)** उन दोनों—भक्त और अभक्त पुरुषों के विषय में **(उदासीन-तमः)** अत्यन्त उदासीन हैं—रागद्वेष से रहित हैं। **(प्रभो)** हे स्वामिन्! **(तव)** आपकी **(इदम् ईहितं)** यह चेष्टा **(परं चित्रम्)** अत्यन्त आश्चर्यकारी है।

अब भगवान् का अल्प गुण वर्णन भी कल्याण का कारण है, यह कहते हैं—

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः ॥५॥

अन्वयार्थ—(महामुने!) हे समस्त पदार्थों के प्रत्यक्ष जानने वाले मुनिनाथ! **(त्वम्)** आप **(ईदृशः)** ऐसे हैं, **(तादृशः)** वैसे हैं, **(इति)** इस प्रकार का **(अयं)** यह **(मम अल्पमतेः)** मुझ अल्पबुद्धि का **(प्रलापलेशः)** थोड़ा-सा प्रलाप **(अशेषमाहात्म्यं)** आपकी समस्त महिमा को **(अनीरयन्नपि)** न कहता हुआ भी **(अमृताम्बुधेः)** सुधासागर के **(संस्पर्श इव)** समीचीन स्पर्श के समान **(शिवाय)** मोक्ष के लिए है—मोक्षसुख की प्राप्ति का कारण है।

श्री धर्म जिनस्तवनम्

भगवान् धर्मनाथ नाम की सार्थकता बताते हैं—

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(अनघं)** निर्दोष **(धर्मतीर्थं)** धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म का प्रतिपादन करने वाले आगम को **(प्रवर्तयन्)** प्रवर्ताते हुए, **(भवान्)** आप **(सतां)** गणधरदेवादि विद्वानों के द्वारा **(धर्मः)** धर्म **(इति)** इस सार्थक नाम से युक्त **(अनुमतः)** माने गये हैं। आपने **(तपोऽग्निभिः)** तप रूपी अग्नियों के द्वारा **(कर्मकक्षम्)** कर्मरूपी वन को **(अदहत्)** जलाया है तथा **(शाश्वतं)** अविनाशी **(शर्म)** सुख **(अवाप)** प्राप्त किया है, इसलिए आप सत्पुरुषों के द्वारा **(शङ्करः)** शङ्कर इस नाम से युक्त (अनुमतः) माने गये हैं।

अब ऐसे भगवान् ने क्या किया? यह कहते हैं—

देवमानवनिकायसत्तमै रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥२॥

अन्वयार्थ—हे धर्मजिन! **(देवमानवनिकायसत्तमैः)** देवसमूह और मनुष्यसमूह में अत्यन्त श्रेष्ठ भव्यजीवों के द्वारा **(परिवृतः)** चारों ओर से वेष्टित तथा **(बुधैः)** गणधरादि विद्वानों से **(वृतः)** घिरे हुए आप **(व्योमनि)** आकाश में **(तारकापरिवृतः)** ताराओं से परिवेष्टित **(अमलः)** घनपटलादि मल से रहित, **(अतिपुष्कलः)** सम्पूर्ण **(शशलाञ्छन इव)** चन्द्रमा के समान **(रेजिषे)** सुशोभित हुए थे।

अब सिंहासनादि विभूति के रहते हुए भी भगवान् के वीतरागता है, यह दिखाते हैं—

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान् नापि शासनफलैषणातुरः ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रातिहार्यविभवैः)** सिंहासनादि प्रातिहार्यों तथा समवसरणादि विभूतियों से **(परिष्कृतः)** विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे, किन्तु **(देहतोऽपि)** शरीर से भी **(विरतः)** ममत्व रहित **(अभूत्)** थे तथा आपने **(नरामरान्)** मनुष्यों और देवों को **(मोक्षमार्गम्)** मोक्षमार्ग का **(अशिषत्)** उपदेश दिया था फिर भी आप **(शासनफलैषणातुरः)** उपदेश के फल की इच्छा से आतुर—व्यग्र **(नापि)** नहीं हुए थे।

अब इच्छा के बिना भगवान् का विहार आदि होता है, यह कहते हैं—

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे नाथ! **(तव)** आप **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी के **(काय-वाक्यमनसां)** काय, वचन और मन की **(प्रवृत्तयः)** चेष्टाएँ **(चिकीर्षया)** करने की इच्छा से **(न अभवन्)** नहीं हुईं तथा **(भवतः)** आपकी **(प्रवृत्तयः)** प्रवृत्तियाँ—चेष्टाएँ **(असमीक्ष्य)** वस्तुस्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना **(न)** नहीं हुईं। **(हे धीर)** परीषहादिक तथा अन्यमतावलम्बियों के प्रश्न आदि से चित्त को क्षुभित न करने वाले, हे धीर-वीर धर्मजिनेन्द्र! **(तावकं)** आपका **(ईहितं)** चरित **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय है—आश्चर्य करने वाला है।

आगे भगवान् की लोकोत्तर प्रकृति का वर्णन करते हैं—

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यतः)** चूँकि आप **(मानुषीं प्रकृतिं)** मानव स्वभाव को **(अभ्यतीतवान्)** अतिक्रान्त कर गये हैं **(च)** और **(देवतास्वपि)** इन्द्र, चन्द्र आदि देवों में भी **(देवता)** देवता हैं, पूज्य हैं, **(तेन)** इसलिए **(हे नाथ)** हे स्वामिन्! आप **(परम देवता असि)**

उत्कृष्ट देवता हैं। **(हे जिनवृष)** हे जिनेन्द्र! **(नः)** हमारे **(श्रेयसे)** कल्याण के लिए **(प्रसीद)** प्रसन्न होईये।

श्री शान्तिजिनस्तवनम्

भगवान् पापों की शान्ति कर स्वयं शान्तिनाथ हुए, यह कहते हैं—

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(यः शान्तिः) जो शान्तिजिनेन्द्र **(परतः)** शत्रुओं से **(प्रजानां)** प्रजा-जनों की **(रक्षां विधाय)** रक्षा कर **(चिरं)** चिरकाल तक पहले **(अप्रतिमप्रतापः)** अतुल्य पराक्रमी **(राजा)** राजा हुए और **(पुरस्तात्)** फिर **(स्वत एव)** स्वयं ही **(मुनिः)** मुनि होकर जिन्होंने **(दयामूर्तिरिव)** दया की मूर्ति की तरह **(अघशान्तिं)** पापों की शान्ति **(व्यधात्)** की।

अब भगवान् के राज्य अवस्था और वीतराग अवस्था के कार्य कहते हैं—

चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(महोदयः) गर्भावतरण आदि कल्याणकों की परम्परा से युक्त **(यः)** जो शान्ति जिनेन्द्र गृहस्थावस्था में **(शत्रुभयङ्करेण)** शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले **(चक्रेण)** सुदर्शनचक्र के द्वारा **(सर्वनरेन्द्रचक्रं)** समस्त राजाओं के समूह को **(जित्वा)** जीतकर **(नृपः)** चक्रवर्ती हुए और **(पुनः)** पश्चात् वीतरागावस्था में जिन्होंने **(समाधिचक्रेण)** ध्यानरूप चक्र के द्वारा **(दुर्जय-मोहचक्रं)** कठिनाई से जीतने योग्य मोहनीयकर्म की मूल तथा उत्तर प्रकृतियों के समूह को **(जिगाय)** जीता था।

अब भगवान् की सराग और वीतराग अवस्था के कार्य कहते हैं—

राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥३॥

अन्वयार्थ—(राजसिंहः) राजाओं में श्रेष्ठ तथा **(राजसुभोगतन्त्रः)** राजाओं के उत्तम भोगों के अधीन अथवा राजाओं के उत्तम भोगों को स्वाधीन रखने वाले **(यः)** जो शान्तिजिनेन्द्र सराग अवस्था में **(राजसु)** राजाओं के बीच **(राजश्रिया)** नौ निधि तथा चौदह रत्नों से युक्त राजलक्ष्मी के द्वारा **(रराज)** सुशोभित हुए थे और **(पुनः)** पश्चात् वीतरागावस्था में **(आत्मतन्त्रः)** आत्माधीन होते हुए **(देवासुरोदारसभे)** देव और धरणेन्द्रादिकों की महती सभा में **(आर्हन्त्यलक्ष्म्या)** अष्ट प्रातिहार्य रूप बाह्य तथा अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग विभूति से **(रराज)** सुशोभित हुए थे।

सराग और वीतराग अवस्था में और क्या हुआ ? यह कहते हैं -

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधिति धर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(राजनि 'सति')** राजा होने पर **(राजचक्रं)** राजाओं का समूह **(प्राञ्जलि)** बद्धाञ्जलि **(अभूत्)** हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(मुनौ 'सति')** मुनि होने पर **(दयादीधिति)** दयारूप किरणों से युक्त अथवा दया को प्रकाशित करने वाला **(धर्मचक्रं)** उत्तमक्षमा आदि धर्मों का समूह (प्राञ्जलि अभूत्) अपने आधीन हुआ था अथवा जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(मुनौ)** समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले केवलज्ञानी होने पर **(दयादीधिति)** दयारूप किरणों से युक्त **(धर्मचक्रं)** देवरचित धर्मचक्र (प्राञ्जलि अभूत्) अपने अधीन हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(पूज्ये)** पूज्य होने पर—समवसरण में स्थित होकर धर्मोपदेश होने पर **(देवचक्रं)** देवों का समूह **(मुहुः)** बार-बार (प्राञ्जलि अभूत्) बद्धाञ्जलि हुआ था और जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(ध्यानोन्मुखे)** व्युपरत-क्रियानिवर्तिनामक चतुर्थ शुक्लध्यान के सन्मुख होने पर **(ध्वंसि)** क्षय को प्राप्त होता हुआ **(कृतान्तचक्रं)** कर्मों का समूह (प्राञ्जलि) शरण की भिक्षा के लिए बद्धाञ्जलि (अभूत्) हुआ था।

आगे स्तुतिकर्ता स्तुति से फल की याचना करता हुआ कहता है—

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥५॥

अन्वयार्थ—(स्वदोषशान्त्या) अपने रागादि दोषों की शान्ति से **(विहितात्म-शान्तिः)** जिन्हें आत्मशान्ति की प्राप्ति हुई है, जो **(शरणं गतानां)** शरण में आये हए जीवों को **(शान्तेर्विधाता)** शान्ति के करने वाले हैं, जो **(जिनः)** कर्म रूप शत्रुओं के जीतने वाले हैं, **(भगवान्)** विशिष्टज्ञान अथवा लोकोत्तर ऐश्वर्य से सहित हैं तथा **(शरण्यः)** शरण देने में निपुण हैं वह **(शान्तिः)** शान्तिनाथ जिनेन्द्र **(मे)** मेरे **(भवक्लेशभयोप-शान्त्यै)** संसारपरिभ्रमण, क्लेशों और भयों की शान्ति के लिए **(भूयात्)** हों।

श्री कुन्थुजिनस्तवनम्

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्र-पाणिः ॥१॥

अन्वयार्थ—(कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः) कुन्थु आदि समस्त जीवों पर एक मुख्य रूप से दया का विस्तार करने वाले **(कुन्थुः जिनः)** कुन्थुनाथ जिनेन्द्र थे। हे भगवन्! **(त्वं)** आपने

(पुरा) पहले गृहस्थावस्था में **(भूत्यै)** राजविभूति के निमित्त **(क्षितिपतीश्वर चक्रपाणिः)** राजाधिराज चक्रवर्ती **(भूत्वा)** होकर पश्चात् **(इह)** इस संसार में **(ज्वरजरा-मरणोपशान्त्यै)** ज्वर आदि समस्त रोग, बुढ़ापा और मरण के विनाश से युक्त **(भूत्यै)** मोक्षलक्ष्मी के लिए **(धर्मचक्रं)** धर्म के समूह को अथवा देवरचित धर्मचक्र नामक अतिशय विशेष को **(वर्तयसि स्म)** प्रवर्तित किया था।

आगे भगवान् की राज्यसंपदा के त्याग का कारण कहते हैं—

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्तमित्यात्मवान् विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥२॥

अन्वयार्थ—(तृष्णार्चिषः) विषयाकाङ्क्षारूप अग्नि की ज्वालाएँ **(परिदहन्ति)** इस जीव को सब ओर से जला रही हैं, **(इष्टेन्द्रियार्थविभवैः)** इष्ट इन्द्रियों के विषयों से **(आसां)** इन विषयाकाङ्क्षारूप अग्नि की ज्वालाओं की **(न शान्तिः)** शान्ति नहीं होती, किन्तु **(परिवृद्धिरेव)** सब ओर से वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि **(स्थित्यैव)** इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है। **(निमित्तं)** निमित्त कारण **(कायपरितापहरं)** मात्र शरीर के संताप को हरने वाला होता है, विषयाकाङ्क्षारूप अग्निज्वालाओं का उपशमन करने वाला नहीं होता। हे भगवन्! **(इति)** यह सब विचार कर ही **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय होते हुए आप **(विषयसौख्य-पराङ्मुखः)** विषयजन्य सुख से पराङ्मुख **(अभूत्)** हुए हैं।

अब भगवान् के बाह्य और आभ्यन्तर तप की प्रवृत्ति का वर्णन करते हैं—

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिवृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आपने **(आध्यात्मिकस्य)** अन्तरङ्ग **(तपसः)** तप की **(परिवृंहणार्थम्)** वृद्धि के लिए **(परमदुश्चरं)** अत्यन्त कठिन **(बाह्यं तपः)** अनशनादि बाह्यतप का **(आचरन्)** आचरण किया था तथा **(कलुषद्वयं)** आर्त्त-रौद्र रूप दो खोटे **(ध्यानं)** ध्यानों को **(निरस्य)** छोड़कर आप **(अतिशयोपपन्ने)** उत्कृष्ट अतिशय से युक्त अथवा अपने अवान्तर भेदों से सहित **(उत्तरस्मिन्)** आगे के **(ध्यानद्वये)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन दो ध्यानों में **(ववृतिषे)** स्थिर हुए थे।

अब ध्यान का फल कहते हैं—

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्रो रत्नत्रयातिशयतेजसि जातवीर्यः।
बभ्राजिषे सकलवेदविधेर्विनेता व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(चतस्रः स्वकर्मकटुकप्रकृतीः)** अपने कर्मों की चार कटुक प्रकृतियों

को **(रत्नत्रयातिशयतेजसि)** सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्रकृष्टतारूप अग्नि में **(हुत्वा)** होमकर **(जातवीर्यः)** आप सामर्थ्यवान् अनन्तवीर्य से युक्त हुए तथा **(सकलवेदविधेः)** समस्त लोकालोक विषयक ज्ञान के विधायक परमागम के **(विनेता)** प्रणेता होकर **(तथा)** उस तरह **(बभ्राजिषे)** दैदीप्यमान हुए, **(यथा)** जिस तरह कि **(व्यभ्रे)** मेघ रहित **(वियति)** आकाश में **(दीप्तरुचिः)** दैदीप्यमान किरणों से युक्त **(विवस्वान्)** सूर्य होता है।

अब भगवान् की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं—

यस्मान्मुनीन्द्र! तव लोक पितामहाद्या विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद् भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः॥५॥

अन्वयार्थ—(हे मुनीन्द्र) हे यतिनाथ! **(यस्मात्)** चूँकि **(लोकपितामहाद्याः)** ब्रह्मा आदि लौकिक देवता **(तव)** आपकी **(विद्याविभूति-कणिकामपि)** केवलज्ञानरूप विद्या और समवसरणरूप विभूति के एक कण मात्र को भी **(न आप्नुवन्ति)** नहीं प्राप्त करते हैं, **(तस्मात्)** इसलिए **(सुधियः)** उत्तम बुद्धि के धारक **(स्वहितैकतानाः)** एक आत्महित में निमग्न—मोक्ष के अभिलाषी **(आर्याः)** गणधरादिदेव **(अजं)** जन्म से रहित, **(अप्रतिमेयं)** अपरिमित—अनन्त तथा **(स्तुत्यं)** स्तुति के योग्य **(भवन्तं)** आपकी **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं।

श्रीअरजिनस्तवनम्

गुणों की अधिकता के कारण आपकी स्तुति शक्य नहीं है, यह कहते हैं—

गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुम-शक्यास्त्वयि सा कथम्॥१॥

अन्वयार्थ—(सद्) विद्यमान **(गुणस्तोकं)** अल्प गुणों का **(उल्लङ्घ्य)** उल्लङ्घन कर **(तद्बहुत्वकथा)** उन गुणों की अधिकता का कथन करना **(स्तुतिः)** स्तुति कहलाती है परन्तु **(आनन्त्यात्)** अनन्त होने के कारण **(ते)** आपके **(गुणाः)** गुण **(वक्तुमशक्याः)** कहने के लिए अशक्य हैं, अतः **(त्वयि)** आपके विषय में **(सा)** वह स्तुति **(कथं)** किस प्रकार संभव है?

यदि शक्य नहीं है तो चुप बैठो, यह कहते हैं—

तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥२॥

अन्वयार्थ—यद्यपि आपके गुणों की स्तुति अशक्य है **(तथापि)** तो भी **(पुण्यकीर्तेः)** प्रशस्तयशवाणी अथवा ख्याति के धारक तथा **(मुनीन्द्रस्य)** गणधरादि मुनियों के स्वामी **(ते)** आपका **(कीर्तितं)** उच्चरित **(नामापि)** नाम भी **(यतः)** चूँकि **(नः)** हमें **(पुनाति)** पवित्र करता है,

(ततः) इसलिए **(किञ्चन)** कुछ **(ब्रूयाम)** कहते हैं।

भगवान् की निःस्पृहता का वर्णन करते हैं—

लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्र - लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(लक्ष्मीविभवसर्वस्वं)** लक्ष्मी की विभूतिरूप सर्वस्व से युक्त तथा **(चक्रलाञ्छनं)** सुदर्शनचक्ररूप चिह्न से सहित **(सार्वभौमं)** समस्त पृथ्वी सम्बन्धी जो **(ते)** आपका **(साम्राज्यं)** साम्राज्य था, वह **(मुमुक्षोः)** मोक्ष के इच्छुक होने पर आपके लिए **(जरत्तृणमिव)** जीर्ण तृण के समान **(अभवत्)** हो गया था।

भगवान् की शारीरिक सुन्दरता का वर्णन करते हैं—

तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(तव)** आपके **(रूपस्य)** शरीर सम्बन्धी रूप की **(सौन्दर्यं)** सुन्दरता को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तृप्तिं)** संतोष को **(अनापिवान्)** प्राप्त न होने वाला **(द्व्यक्षः)** दो नेत्रों का धारक **(शक्रः)** इन्द्र **(बहुविस्मयः)** बहुत भारी आश्चर्य से युक्त **(सहस्राक्षः)** एक हजार नेत्रों का धारक **(बभूव)** हुआ था।

आगे आपने मोहरूपी भट को जीता है, यह कहते हैं—

मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः।
दृष्टिसंपदुपेक्षास्त्रैस् त्वया धीर! पराजितः ॥५॥

अन्वयार्थ—(हे धीर) परीषहादि से जिनका चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ऐसे हे अर जिनेन्द्र! **(त्वया)** आपने **(पापः)** पापरूप तथा **(कषायभट-साधनः)** कषायरूप योद्धाओं की सेना से सहित **(मोहरूपो रिपुः)** मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को **(दृष्टि-संपत्-उपेक्षा-अस्त्रैः)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप शस्त्रों के द्वारा **(पराजितः)** पराजित किया है।

अब मोह विजय का फल दिखाते हैं -

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस् - त्रैलोक्यविजयार्जितः।
ह्रेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥६॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्यविजयार्जितः) तीनों लोकों की विजय से उपार्जित **(कन्दर्पस्य)** कामदेव के **(उद्धरः)** उत्कट—बहुत भारी **(दर्पः)** गर्व ने **(धीरे)** धीर-वीर **(त्वयि)** आपके विषय में **(प्रतिहतोदयः सन्)** खण्डित प्रसर हो **(तं)** कामदेव को **(ह्रेपयामास)** लज्जित किया था।

मोह और काम के जीतने का फल दिखाते हैं—

आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्दुरुत्तरा।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥७॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(आयत्यां च तदात्वे च)** जो परलोक तथा इस लोक-दोनों ही जगह **(दुःखयोनिः)** दुःखों की उत्पत्ति का कारण है तथा **(दुरुत्तरा)** जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है, ऐसी **(तृष्णानदी)** तृष्णारूपी नदी **(त्वया)** आपने **(विविक्तया)** निर्दोष **(विद्यानावा)** विद्या—सम्यग्ज्ञानरूपी नौका के द्वारा **(उत्तीर्णा)** पार की है।

मोह, काम और तृष्णा के नष्ट होने पर जो हुआ, उसे दिखाते हैं—

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखः सदा।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥८॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(जन्मज्वरसखः)** पुनर्जन्म तथा ज्वर आदि रोगों का मित्र और **(सदा)** हमेशा **(नृणां क्रन्दकः)** मनुष्यों को रुलाने वाला **(अन्तकः)** यम **(अन्त-कान्तकं)** यम का अन्त करने वाले **(त्वाम्)** आपको **(प्राप्य)** प्राप्त कर **(कामकारतः)** अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से **(व्यावृत्तः)** उपरत हुआ है।

अब भगवान् के मोहादि का क्षय कैसे जाना गया ? यह कहते हैं—

भूषावेषायुधत्यागि विद्यादमदयापरम्।
रूपमेव तवाचष्टे धीर! दोषविनिग्रहम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(धीर!) हे धीर! अर जिनेन्द्र! **(भूषावेषायुधत्यागि)** आभूषणों, वेषों तथा शस्त्र का त्याग करने वाला तथा **(विद्यादमदयापरम्)** ज्ञान, इन्द्रियदमन और दया में तत्पर **(तव)** आपका **(रूपमेव)** रूप ही **(दोष-विनिग्रहं)** रागादि दोषों के अभाव को **(आचष्टे)** कहता है।

मोह का निग्रह होने पर जो हुआ, उसे दर्शाते हैं -

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्ण-मध्यात्मं ध्यानतेजसा ॥१०॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(समन्ततः)** सब ओर फैलने वाले **(ते)** आपके **(अङ्गभासां)** शरीर सम्बन्धी प्रभाओं के **(भूयसा)** विशाल **(परिवेषेण)** मण्डल के द्वारा **(बाह्यं)** बाह्य **(तमः)** अन्धकार **(अपाकीर्णं)** नष्ट हुआ है और **(ध्यानतेजसा)** ध्यानरूप तेज के द्वारा **(अध्यात्मं)** ज्ञानावरणादि कर्मरूप अन्तरंग का अन्धकार (अपाकीर्णम्) नष्ट हुआ है।

अब भगवान् की पूजा के अतिशय का वर्णन करते हैं—

सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस् तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ! सचेतनम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे अरनाथ जिनेन्द्र! **(ते)** आपकी **(सर्वज्ञ-ज्योतिषा)** समस्त पदार्थों को जानने वाली केवलज्ञानरूपी ज्योति से **(उद्भूतः)** उत्पन्न हुआ **(तावकः)** आपकी **(महिमोदयः)** महिमा का उत्कर्ष **(कं)** किस **(सचेतनं)** गुणदोष के विचार में चतुर **(सत्त्वं)** प्राणी को **(प्रणम्रं)** नम्रीभूत **(न कुर्यात्)** नहीं कर देता है ? —सबको कर देता है।

आगे भगवान् के वचनों का अतिशय दिखलाते हैं—

तव वागमृतं श्रीमत्-सर्वभाषास्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्-प्राणिनो व्यापि संसदि ॥१२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(श्रीमत्)** पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने रूप लक्ष्मी सहित **(सर्वभाषास्वभावकम्)** समस्त भाषाओं रूप परिणमन करने वाले स्वभाव से युक्त तथा **(संसदि)** समवसरण सभा में **(व्यापि)** व्याप्त होने वाला **(तव)** आपका **(वागमृतं)** वचनरूप अमृत **(अमृतं यद्वत्)** अमृत के समान **(प्राणिनः)** प्राणियों को **(प्रीणयति)** सन्तुष्ट करता है।

आगे अनेकान्तदृष्टि ही समीचीन है, यह दिखाते हैं—

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात् तदयुक्तं स्वघाततः ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ते)** आपकी **(अनेकान्तात्मदृष्टिः)** अनेकान्तरूप दृष्टि **(सती)** सत्यार्थ है, उससे **(विपर्ययः)** विपरीत एकान्तमत **(शून्यः)** शून्यरूप असत् है, **(ततः)** इसलिए **(तदयुक्तं)** उस अनेकान्तदृष्टि से रहित **(सर्वं)** सब **(उक्तं)** कथन **(स्वघाततः)** स्वघातक होने से **(मृषा स्यात्)** मिथ्या रूप है अथवा **(ततः)** एकान्तमत के आश्रय से **(उक्तं)** कहा हुआ **(सर्वं)** समस्त वस्तुस्वरूप **(मृषा)** असत्य है तथा **(स्वघाततः)** स्व घातक होने से **(तद्)** वह **(अयुक्तं)** अनुचित है।

आगे अनेकान्तदृष्टि में संभावित दोषों का परिहार करते हैं—

ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः।
तपस्विनस्ते किं कुर्युर - पात्रं त्वन्मतश्रियः ॥१४॥

अन्वयार्थ—(ये) जो एकान्तवादी **(परस्खलितोन्निद्राः)** पर—अनेकान्तमत में स्खलित—विरोध आदि दोषों के देखने में उन्निद्र—जागृत रहते हैं और **(स्वदोषेभ-निमीलिनः)** स्व—अपने सदेकान्त

आदि एकान्त में दोष– स्वघातत्व आदि दोषों के विषय में इभनिमीलन–गज निमीलन से युक्त हैं अर्थात् उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते हैं, **(ते)** वे **(तपस्विनः)** बेचारे **(किं कुर्युः)** क्या करें–स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष के निराकरण में वे असमर्थ हैं तथा **(त्वन्मतश्रियः)** आपके मतरूपी लक्ष्मी के **(अपात्रं)** अपात्र हैं।

अब तत्त्व की अवक्तव्यता का निराकरण करते हैं–

ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्द्विषःस्वहनो बालास्-तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः ॥१५॥

अन्वयार्थ–(ते) वे एकान्तवादी **(तं)** उस पूर्वोक्त **(स्वघातिनं दोषं)** स्वघाती दोष को **(शमीकर्तुं)** शमन करने के लिए **(अनीश्वराः)** असमर्थ हैं, **(त्वद्द्विषः)** आप–अनेकान्तवादी से द्वेष रखते हैं, **(स्वहनः)** अपने आपका घात करने वाले हैं, **(बालाः)** यथावद्वस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ हैं और इसीलिए **(तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः)** तत्त्व की अवक्तव्यता का आश्रय लेते हैं।

आगे वक्ता के कैसे अभिप्राय सत्य हैं और कैसे असत्य हैं ? यह दिखलाते हैं–

सदेकनित्यवक्तव्यास्-तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥१६॥

अन्वयार्थ–(सदेकनित्यवक्तव्याः) सद्, एक, नित्य, वक्तव्य **(च)** और **(तद्विपक्षाः)** इनसे विपरीत असत्, अनेक, अनित्य, अवक्तव्य **(ये नयाः)** ये जो नय हैं, **(ते)** वे **(इह)** इस जगत् में **(सर्वथा इति)** सर्वथा रूप से **(प्रदुष्यन्ति)** वस्तु तत्त्व को अत्यधिक विकृत करते हैं–सदोष बनाते हैं और **(स्यात् इति)** स्यात्–कथञ्चित्–रूप से वस्तु तत्त्व को **(पुष्यन्ति)** पुष्ट करते हैं।

अब स्यात् शब्द की महिमा दिखलाते हैं–

सर्वथानियमत्यागी, यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावकेन्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(सर्वथानियमत्यागी) सर्वथारूप नियम का त्याग करने वाला तथा **(यथादृष्टमपेक्षकः)** यथादृष्टप्रमाणसिद्ध वस्तुस्वरूप की अपेक्षा रखने वाला **(स्याच्छब्दः)** स्यात् शब्द **(तावके न्याये)** आपके न्याय में है, **(आत्म-विद्विषाम्)** अपने आपके वैरी **(अन्येषां)** अन्य एकान्तवादियों के न्याय में **(न)** नहीं हैं।

अब अनेकान्त भी अनेकान्त एवं एकान्त रूप है, यह दिखलाते हैं–

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१८॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अनेकान्तः अपि)** अनेकान्त भी **(प्रमाणनयसाधनः)** प्रमाण और नयरूप साधनों से युक्त होने के कारण **(अनेकान्तः)** अनेकान्तस्वरूप है। **(प्रमाणात्)** प्रमाण की अपेक्षा **(अनेकान्तः)** अनेकान्तस्वरूप है और **(अर्पितात् नयात्)** विवक्षित नय से **(तदेकान्तः)** अनेकान्त में एकान्तस्वरूप है।

अब प्रकृत अर्थ का संकोच करते हुए कहते हैं—

इति निरुपमयुक्तशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः।
अरजिन! दमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥१९॥

अन्वयार्थ—(इति) इस तरह **(अरजिन)** हे अर जिनेन्द्र! आप **(निरुपमयुक्त-शासनः)** उपमा रहित प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त शासन से सहित हैं, **(प्रियहित-योग-गुणानुशासनः)** सुखदायक तथा फलकाल में हितकारक मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापाररूप योग और सम्यग्दर्शनादि गुणों का उपदेश देने वाले हैं तथा **(दमतीर्थ-नायकः)** इन्द्रियविजय को सूचित करने वाले आगम के नायक हैं। हे नाथ! **(त्वमिव)** आपके समान **(सतां प्रतिबोधनाय)** विद्वज्जनों को प्रतिबोध देने के लिए **(कः)** दूसरा कौन है? कोई नहीं है।

अब स्तुति के फल की याचना करते हुए कहते हैं—

मतिगुणविभवानुरूपतस् त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम भवताद् दुरितासनोदितम् ॥२०॥

अन्वयार्थ—(हे वरद) हे वर को प्रदान करने वाले अरजिनेन्द्र! मैंने **(मतिगुण-विभवानुरूपतः)** अपनी बुद्धि के गुणों की सामर्थ्य के अनुरूप तथा **(आगमदृष्टिरूपतः)** आगम से प्राप्त हुई दृष्टि के अनुसार **(त्वयि)** आपके विषय में **(किञ्चन गुणकृशमपि)** आपके गुणों का जो कुछ थोड़ा-सा **(उदितं)** वर्णन किया है, वह वर्णन **(मम)** मेरे **(दुरितासनोदितम्)** पापों के नष्ट करने में समर्थ **(भवतात्)** होवे।

श्री मल्लिजिनस्तवनम्

केवलज्ञान होने पर भगवान् को सब प्रणाम करते थे, यह कहते हैं—

यस्य महर्षेः सकलपदार्थ-प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपततिस्म ॥१॥

अन्वयार्थ—(यस्य महर्षेः) जिन महर्षि के **(सकलपदार्थप्रत्यव-बोधः)** जीवादि समस्त पदार्थों को सब ओर से अशेष-विशेषता के साथ जानने वाला केवलज्ञान **(साक्षात्)** स्पष्टरूप से **(समजनि)** उत्पन्न हुआ, इसलिए जिन्हें **(सामरमर्त्यं)** देवों तथा मनुष्यों से सहित **(सर्वमपि जगत्)**

सभी संसार ने **(प्राञ्जलि भूत्वा)** बद्धाञ्जलि होकर **(प्रणिपतति स्म)** प्रणाम किया, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

आगे भगवान् के शरीर और वचन का वर्णन करते हैं—

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून्॥२॥

अन्वयार्थ—(कनकमयीव) सुवर्ण से निर्मित के समान **(स्व-स्फुरदाभा-कृतपरिवेषा)** अपनी देदीप्यमान आभा से समस्त शरीर में व्याप्त भामण्डल को करने वाली **(यस्य मूर्तिः)** जिनकी मूर्ति—शरीराकृति **(च)** और **(तत्त्वं कथयितुकामा)** वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छुक एवं **(स्यात्पद-पूर्वा)** स्यात्पद से सहित **(यस्य)** जिनकी **(वागपि)** वाणी भी **(साधून्)** भव्यजीवों को **(रमयति)** प्रसन्न करती है, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अब भगवान् के विहार के समय होने वाली पृथिवी की विशेषता दिखलाते हैं—

यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा ॥३॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(पुरस्तात्)** आगे **(विगलितमानाः)** गलित मान हुए **(प्रतितीर्थ्याः)** एकान्तवादी जन **(भुवि)** पृथ्वी पर **(न विवदन्ते)** विवाद नहीं करते थे और जिनके विहार के समय **(भूरपि)** पृथिवी भी **(प्रतिपदं)** डग-डग पर **(जात-विकोशाम्बुजमृदुहासा)** विकसित कमलों से कोमल हास को धारण करती हुई **(रम्या)** मनोहर **(आसीत्)** हुई थी, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अब भगवान् की शिष्य-सम्पदा का वर्णन करते हैं—

यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्र,-त्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(यस्य जिनशिशिरांशोः) जिन मल्लि जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा के **(समन्तात्)** चारों ओर **(शिष्यकसाधुग्रहविभवः)** शिष्यसाधुरूप ग्रहों का—ताराओं का विभव **(अभूत्)** विद्यमान था और जिनका **(स्वं)** अपना **(तीर्थमपि)** शास्त्र भी **(जनन-समुद्र-त्रासित-सत्त्वोत्तरणपथः अग्रम्)** संसाररूपी समुद्र से भयभीत प्राणियों के पार उतरने का प्रधान मार्ग था, उन मल्लिजिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अब भगवान् के शुक्लध्यान की महिमा कहते हैं—

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि र्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥५॥

अन्वयार्थ–(च) और **(यस्य)** जिनके **(शुक्लं ध्यानं)** शुक्लध्यानरूप **(परम-तपोऽग्निः)** उत्कृष्ट तपरूपी अग्नि ने **(अनन्तं)** अन्त को प्राप्त न होने वाले **(दुरितं)** अष्टकर्मरूप पाप को **(अधाक्षीत्)** दग्ध किया था, **(तं)** उन **(जिनसिंहं)** जिनश्रेष्ठ **(कृतकरणीयं)** कृतकृत्य, **(अशल्यं)** माया, मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित **(मल्लिं)** मल्लिजिनेन्द्र की **(शरण-मितोऽस्मि)** शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

श्री मुनिसुव्रतजिनस्तवनम्

अब भगवान् के मुनिसुव्रत इस नाम की सार्थकता बतलाते हैं–

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडु परिषत्परिवीतसोमवत् ॥१॥

अन्वयार्थ–(अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिः) जिन्होंने मुनियों के उत्तम व्रतों की स्थिति को अधिगत–सुनिश्चित अथवा प्राप्त कर लिया है, जो **(मुनिवृषभः)** मुनियों में श्रेष्ठ हैं और जो **(अनघः)** चार घातियाकर्मरूपी पाप से रहित हैं, ऐसे **(भवान्)** आप **(मुनिसुव्रतः)** 'मुनिसुव्रत' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले जिनेन्द्र **(मुनि-परिषदि)** समवसरण के बीच मुनियों की सभा में **(उडुपरिषत्परिवीतसोमवत्)** नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए चन्द्रमा के समान **(निर्बभौ)** सुशोभित हुए थे।

अब भगवान् के शरीर का अतिशय कहते हैं–

परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहविग्रहाभया।
तव जिन! तपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(कृतमदनिग्रह) काम अथवा अहंकार का निग्रह करने वाले **(जिन!)** हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! **(परिणतशिखिकण्ठरागया)** तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली **(तपसः प्रसूतया)** तप से उत्पन्न **(तव विग्रहाभया)** आपके शरीर की आभा–चारों ओर फैलने वाली दीप्ति **(ग्रहपरिवेषरुचेव)** चन्द्रमा के परिवेष–परिमण्डल की दीप्ति के समान **(शोभितं)** सुशोभित हुई थी।

भगवान् का शरीर कैसा था ? यह कहते हैं–

शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते! यदपि च वाङ् मनसीयमीहितम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(यते) हे महामुनिराज! **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त, **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित और **(विरजः)** रजरहित–मलरहित जो **(तव)** आपका **(निजं वपुः)** अपना शरीर **(शिवं)** अत्यन्त शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाला था **(च)** और **(वाङ्-मनसीयमपि)** वचन तथा मन की भी **(यत् ईहितं)** जो चेष्टा थी, वह भी (अतिविस्मयं) अत्यन्त आश्चर्य करने वाली थी ।

अथवा

अन्वयार्थ–(हे जिन) हे मुनिसुव्रतजिनेन्द्र! **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(परिणत-शिखिकण्ठरागया)** तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली **(तपसः)** अनशनादि तप से **(प्रसूतया)** उत्पन्न **(कृतमदनिग्रहविग्रहाभया)** मदन-मद अथवा गर्व का निग्रह करने वाले शरीर की आभा से उस तरह **(शोभितं)** शोभित हुआ था, जिस तरह **(ग्रहपरिवेषरुचा 'चन्द्र' इव)** ग्रह परिवेष की कान्ति से चन्द्रमा। **(तव)** आपका वह **(निजं)** अपना **(वपुः)** शरीर **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त, **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित, **(विरजः)** रज रहित, **(शिवं)** शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था **(च)** और **(यते)** हे महामुनिराज! आपके **(वाङ्मनसीयमपि)** वचन और मन की भी **(यत्)** जो **(ईहितं)** चेष्टा थी, **(तदपि)** वह भी **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाली थी।

अब भगवान् की सर्वज्ञता के परिचायक वचनों की महिमा दिखाते हैं–

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन! सकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥४॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! **(चरं)** चेतन **(च)** और **(अचरं)** अचेतनरूप **(जगत्)** संसार **(प्रतिक्षणं)** क्षण-क्षण में **(स्थिति-जननिरोधलक्षणं)** ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है, **(इति इदं)** इस प्रकार का यह जो **(वदतांवरस्य ते)** वक्तृ प्रवर आपका **(वचनं)** वचन है, वह **(सकलज्ञलाञ्छनं)** सर्वज्ञ का चिह्न है–आपकी सर्वज्ञता का द्योतक है।

अब स्तोता, स्तुति के फल की याचना करता है-

दुरितमलकलङ्कमष्टकं, निरुपमयोगबलेन निर्दहन्।
अभवदभवसौख्यवान्भवान्, भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(निरुपमयोगबलेन)** अनुपम शुक्लध्यान के बल से **(अष्टकं)** आठ प्रकार के **(दुरितमलकलङ्कं)** कर्ममल-कलङ्क को **(निर्दहन्)** जलाते हुए **(भवान्)** आप **(अभवसौख्यवान्)** मोक्ष सम्बन्धी अतीन्द्रिय सुख से युक्त **(अभवत्)** हुए हैं, ऐसे आप **(ममापि)**

मुझ समन्तभद्र के भी **(भवोपशान्तये)** संसार की उपशान्ति के लिए **(भवतु)** होवें।

श्री नमिजिनस्तवनम्

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे
स्तुयान्न त्वां विद्वान्सततमभिपूज्यं नमिजिनम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(स्तुतिः) भगवान् की स्तुति **(स्तोतुः)** स्तुति करने वाले **(साधोः)** भव्यपुरुष के **(कुशलपरिणामाय)** पुण्यसाधक—प्रशस्त परिणाम के लिए होती है **(तदा)** स्तुति के काल अथवा स्तुति के देश में **(सः स्तुत्यः)** वह स्तुति का पात्र आराध्यदेव **(भवेत् मा वा)** हो अथवा न हो **(च)** और **(ततः)** उस स्तुत्य से **(तस्य सतः)** उस स्तुति करने वाले भव्य पुरुष को **(फलमपि)** स्वर्गादि फल की प्राप्ति भी (भवेन्मा वा) हो अथवा न हो **(एवं)** इस प्रकार **(जगति)** संसार में **(स्वाधीन्यात्)** स्वाधीनता से **(श्रायसपथे)** कल्याण अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्षसम्बन्धी मार्ग के **(सुलभे 'सति')** सुलभ रहने पर **(किं)** क्या **(विद्वान्)** विचारपूर्वक कार्य करने वाला विवेकीजन **(सततं)** सदा **(अभिपूज्यं)** इन्द्रादि के द्वारा पूज्य **(त्वां नमिजिनं)** आप नमिजिनेन्द्र की **(न स्तुयात्)** स्तुति न करें? अवश्य करें।

नमि जिनेन्द्र ने ऐसा कौन-सा कार्य किया, जिससे वे इस प्रकार पूज्य हुए ? यह दिखाते हैं—

त्वया धीमन्! ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगलं
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी।
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगवन्-
नभूवन्खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः॥२॥

अन्वयार्थ—(हे धीमन्) हे विशिष्ट बुद्धि से युक्त नमिजिनेन्द्र! **(ब्रह्मप्रणिधि-मनसा)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिर चित्त वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(जन्मनिगलं)** संसाररूपी बन्धन **(समूलं)** मूल—कारण सहित **(निर्भिन्नं)** नष्ट किया गया है, इसलिए **(त्वम्)** आप **(विदुषां)** विद्वानों के लिए **(मोक्षपदवी)** मोक्षमार्गस्वरूप **(असि)** हैं। **(भगवन्)** हे भगवन्! **(त्वयि)** आपके **(ज्ञान-ज्योतिर्विभवकिरणैः)** केवलज्ञानज्योति की सम्पदारूप किरणों के द्वारा **(भाति 'सति')** सुशोभित होने पर **(अन्यमतयः)** सुगत, कपिल, ईश्वर आदि अन्यमतावलम्बीजन **(शुचिरवौ)** ग्रीष्मऋतु के सूर्य के देदीप्यमान रहने पर **(खद्योता इव)** जुगनुओं के समान **(अभूवन्)** हो गये थे।

अब सप्तभङ्गों के आश्रय से भगवान् ने तत्त्व का उपदेश दिया है ? यह दिखाते हैं—

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद्
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः।
सदान्योऽन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा)** समस्त संसार के महान् गुरु स्वरूप **(त्वया)** आपने **(बहुनयविवक्षेतरवशात्)** अनेक नयों की विवक्षा और अविवक्षा के वश **(प्रत्येकं)** विधि-निषेध, मूर्त-अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म आदि प्रत्येक धर्म का लक्ष्य कर **(नियमविषयैः)** 'भङ्ग' सात ही होते हैं हीनाधिक नहीं, इस नियम के विषयभूत **(च)** और **(सदान्योन्यापेक्षैः)** सदा एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले **(अपरिमितैः)** अनन्त **(विशेषैः)** त्रैकालिक धर्मों के द्वारा **(तत्तत्त्वं)** उस वस्तु स्वरूप को **(विधेयं)** विधिस्वरूप, **(वार्यं)** निषेध स्वरूप, **(उभयं)** विधि-निषेध स्वरूप, **(अनुभयं)** अवक्तव्य स्वरूप **(च)** और **(मिश्रमपि)** मिश्ररूप भी—अर्थात् स्यादस्ति-अवक्तव्य, स्यान्नास्ति-अवक्तव्य तथा स्यादस्ति-नास्ति-अवक्तव्य इस तरह सात भङ्ग रूप **(गीतं)** कहा है।

आगे निर्ग्रन्थ दशा के बिना अहिंसा संभव नहीं है, यह दिखलाते हैं—

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भूतानां)** प्राणियों की **(अहिंसा)** अहिंसा **(जगति)** जगत् में **(परमं ब्रह्म)** परम ब्रह्मरूप से **(विदितं)** प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है, परन्तु **(सा)** वह अहिंसा **(तत्र)** उस **(आश्रमविधौ)** आश्रम विधि में **(न अस्ति)** नहीं है। **(यत्र)** जिसमें कि **(अणुरपि)** थोड़ा भी **(आरम्भः)** आरम्भ होता है, **(ततः)** इसलिए **(तत्सिद्ध्यर्थं)** उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए **(परमकरुणः)** परम दयालु होकर **(भवानेव)** आपने ही **(उभयं)** बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दोनों प्रकार के **(ग्रन्थं)** परिग्रह को **(अत्याक्षीत्)** छोड़ा है **(च)** और **(विकृतवेषोपधिरतः)** यथाजात लिङ्ग के विरोधी वेष तथा परिग्रह में आसक्त **(न 'अभवत्')** नहीं हुए हैं।

आगे कहते हैं कि आपका शरीर ही वीतरागता को प्रकट कर रहा है—

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तकरणं
यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातङ्कविजयम्।

विना भीमैः शस्त्रैरदयहृदयामर्षविलयं
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भूषावेषव्यवधिरहितं)** आभूषण, वेष तथा वस्त्रादिक के आवरण से रहित और **(शान्तकरणं)** अपने-अपने विषयों से निःस्पृह इन्द्रियों से युक्त **(ते)** आपका **(वपुः)** शरीर **(यतः)** चूँकि **(स्मरशर-विषातङ्कविजयम्)** काम के बाणरूप विष से उत्पन्न व्याधि की विजय को तथा **(भीमैः शस्त्रैः विना)** भयंकर शस्त्रों के बिना **(अदय-हृदयामर्षविलयं)** निर्दय हृदय सम्बन्धी क्रोध के विनाश को **(संचष्टे)** कह रहा है, **(ततः)** इसलिए **(त्वं)** आप **(निर्मोहः)** मोह रहित और **(शान्ति-निलयः)** कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाली शान्ति के स्थान हैं तथा **(नः)** हमारे **(शरणम्)** शरणभूत—रक्षक **(असि)** हैं।

श्री अरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

इन विशेषणों से विशिष्ट भगवान् कैसे हुए? यह बतलाते हैं—

भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनः।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं प्रतिबुद्ध्य बुद्धकमलायतेक्षणः॥१॥
हरिवंशकेतु - रनवद्य - विनय - दम - तीर्थनायकः।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ॥२॥

अन्वयार्थ—(भगवान्) जो विशिष्ट ज्ञानवान् अथवा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य हैं, **(ऋषिः)** जो परम ऋद्धियों से सम्पन्न हैं, **(परमयोगदहनहुत-कल्मषेन्धनः)** उत्कृष्ट शुक्लध्यानरूपी अग्नि में जिन्होंने कर्मरूपी ईंधन को होम दिया है, **(बुद्धकमलायतेक्षणः)** जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान विशाल हैं, **(हरिवंशकेतुः)** जो हरिवंश के प्रधान हैं, **(अनवद्यविनय-दमतीर्थनायकः)** जो निर्दोष विनय और इन्द्रियदमन के प्रतिपादक शास्त्र के प्रवर्तक हैं, **(शीलजलधिः)** जो शील के समुद्र हैं और **(अजरः)** जो वृद्धावस्था से रहित हैं। ऐसे **(त्वं)** आप **(अरिष्टनेमि-जिनकुञ्जरः)** अरिष्टनेमि जिनेन्द्र **(ज्ञानविपुलकिरणैः)** ज्ञानरूप विस्तृत किरणों के द्वारा **(सकलं)** समस्त लोकालोक को **(प्रतिबुद्ध्य)** प्रकाशित कर अथवा जानकर **(विभवः)** संसार से मुक्त **(अभवः)** हुए थे।

ऐसे भगवान् के चरण युगल कैसे थे ? यह कहते हैं—

त्रिदशेन्द्र - मौलिमणि - रत्नकिरण-विसरोप-चुम्बितम्।
पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥३॥
नखचन्द्ररश्मिकवचातिरु-चिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(स्वार्थनियतमनसः)** मोक्षरूप स्वार्थ में जिनके मन नियन्त्रित हैं, **(सुधियः)** जो उत्तमबुद्धि से युक्त हैं और **(मन्त्रमुखराः)** जो 'णमो णेमिजिणाणं' इस सात अक्षर वाले मन्त्र से अथवा सामान्य स्तुति से वाचाल हैं, ऐसे **(महर्षयः)** गणधरादि बड़े-बड़े ऋषि **(भवतः)** आपके **(तत्)** उस **(पादयुगलं)** चरणयुगल को **(प्रणमन्ति)** प्रणाम करते हैं, **(यत्)** जो कि **(त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्न-किरणविसरोपचुम्बितम्)** इन्द्रों के मुकुटों में लगे हुए मणियों और रत्नों की किरणों के समूह से चुम्बित हैं, **(अमलं)** निर्मल—उज्ज्वल हैं, **(विकसत्कुशेशयदलारुणोदरं)** जिनका तलभाग खिले हुए कमलदल के समान लालवर्ण का है तथा **(नखचन्द्र-रश्मि-कवचातिरुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम्)** जिनकी अंगुलियों का स्थान नखरूपी चन्द्रमा की किरणों के परिवेष से अत्यन्त मनोहर अग्रभाग से सहित है।

आगे नारायण और बलभद्र आपके चरणों में प्रणाम करते थे, यह कहते हैं—

द्युतिमद्रथाङ्गर - विबिम्बकिरण - जटिलां - शुमण्डलः।
नीलजलदजलराशिवपुः सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥५॥
हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जनेश्वरौ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥६॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरणजटिलांशु-मण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शनचक्ररूपी सूर्यबिम्ब की किरणों से जिनकी कान्ति का मण्डल व्याप्त हो रहा है अथवा **(जटिलांशुमण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शनचक्ररूपी सूर्यबिम्ब की किरणों से जिनके कन्धे का प्रदेश व्याप्त हो रहा है, **(नीलजलद-जलराशिवपुः)** नीलमेघ और समुद्र के समान जिनका श्याम शरीर है **(ईश्वरः)** जो तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी हैं, ऐसे **(गरुडकेतुः)** श्रीकृष्ण **(च)** और **(हलभृत्)** बलभद्र इस प्रकार **(स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ)** आत्मबन्धु की भक्ति से जिनके चित्त प्रसन्न हो रहे थे, **(जनेश्वरौ)** जो लोक के स्वामी थे और **(धर्मविनय-रसिकौ)** जो धर्मार्थ विनय के रसिक थे- ऐसे दोनों भाईयों ने **(बन्धुभिः सह)** अपने अन्य भाईयों के साथ **(ते)** आपके **(चरणार-विन्दयुगलं)** चरण कमलों के युगल को **(सुतरां)** बार-बार **(प्रणेमतुः)** प्रणाम किया था।

जिस पर्वत पर नारायण और बलभद्र ने प्रणाम किया था, उस ऊर्जयन्तगिरि का वर्णन करते हैं—

ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलङ्कृतः ।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥७॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥८॥

अन्वयार्थ—(भुवः ककुदम्) जो पृथ्वी का ककुद है—बैल के कन्धे के समान ऊँचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है, **(खचरयोषिदुषित-शिखरैः)** जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा **(अलङ्कृतः)** सुशोभित है, **(मेघपटलपरिवीततटः)** जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं, **(वज्रिणा लिखितानि तव लक्षणानि वहति इति तीर्थं)** जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए **[हे नेमिजिन!]** आपके चिह्नों को धारण करता है, इसलिए तीर्थस्थान है। **(सततं अद्य च)** हमेशा तथा आज भी **(प्रीतिविततहृदयैः)** प्रीति से विस्तृत चित्त वाले **(ऋषिभिश्च)** ऋषियों के द्वारा जो **(परितः)** सब ओर से **(भृशं)** अत्यधिक **(अभिगम्यते)** सेवित है, **(इति)** ऐसा वह **(विश्रुतः)** अतिशय प्रसिद्ध **(ऊर्जयन्तः अचलः)** ऊर्जयन्त नाम का पर्वत है। (जिस पर जाकर कृष्ण और बलराम ने आपके चरणकमल-युगल को प्रणाम किया था)।

आगे भगवान् नेमिजिनेन्द्र के सर्वज्ञता सिद्ध करते हैं—

बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत्।
नाथ! युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद् विवेदिथ ॥९॥
अत एव ते बुधनुतस्य चरितगुण-मद्भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(हे नाथ) हे स्वामिन्! **(त्वं)** आप **(इदं अखिलं)** इस समस्त संसार को **(युगपत् च सदा)** एक साथ और सर्वदा **(तलामलकवत् विवेदिथ)** हस्ततल पर रखे हुए स्फटिक के समान जानते हैं तथा आपके इस जानने में **(बहिः)** बाह्य **(च)** और **(अन्तरपि)** अभ्यन्तर **(करणं)** इन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् **(च उभयथा)** और दोनों प्रकार से **(अविघाति)** बाधक नहीं हैं एवं **(अर्थकृत् न)** उपकारक भी नहीं हैं, **(अतएव)** इसीलिए **(बुधनुतस्य)** विद्वानों के द्वारा स्तुत **(ते)** आपके **(अद्भुतोदयम्)** आश्चर्यकारक अभ्युदय से युक्त तथा **(न्यायविहितं)** न्यायसिद्ध—आगम ज्ञान से सिद्ध **(चरितगुणं)** स्वकार्य की प्रसाधकता का **(अवधार्य)** निश्चय कर **(वयं)** हम **(सुप्रसन्नमनसः)** अत्यन्त प्रसन्न चित्त होते हुए **(त्वयि जिने)** आप जिनेन्द्र में **(स्थिताः)** स्थित हुए हैं—आपके कार्य का साधक समझ आपकी शरण में आये हैं।

श्री पार्श्व जिनस्तवनम्

उपसर्ग के समय भगवान् की निश्चलता का वर्णन करते हैं—

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः॥१॥

अन्वयार्थ—(तमालनीलैः) तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण, **(सधनुस्तडिद्गुणैः)** इन्द्रधनुषों

की बिजलीरूप डोरियों से सहित, **(प्रकीर्ण-भीमाशनि-वायुवृष्टिभिः)** भयंकर वज्र, आँधी और वर्षा को बिखेरने वाले ऐसे **(वैरिवशैः)** शत्रु के वशीभूत **(बलाहकैः)** मेघों के द्वारा **(उपद्रुतः)** उपद्रुत होने पर भी **(महामनाः)** उत्कृष्ट धैर्य के धारक **(यः)** जो पार्श्वनाथ भगवान् **(योगतः)** शुक्लध्यानरूप योग से **(न चचाल)** विचलित नहीं हुए थे।

आगे धरणेन्द्र के द्वारा उपसर्ग निवारण का वर्णन करते हैं—

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥२॥

अन्वयार्थ—(उपसर्गिणं) उपसर्ग से युक्त **(यं)** जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(धरणो नागः)** धरणेन्द्र नामक नागकुमारदेव ने **(स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचा)** चमकती हुई बिजली के समान पीली कान्ति से युक्त **(बृहत्फणामण्डलमण्डपेन)** बहुत भारी फणामण्डलरूपी मण्डप के द्वारा **(तथा)** उस तरह **(जुगूह)** वेष्टित कर लिया था, **(यथा)** जिस तरह कि **(विरागसन्ध्यातडिदम्बुदः)** काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ **(धराधरं)** पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

उपसर्ग को जीतकर भगवान् अरहन्त पद को प्राप्त हुए, यह कहते हैं—

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया)** अपने शुक्लध्यानरूप खड्ग की तीक्ष्ण धारा के द्वारा **(दुर्जयमोहविद्विषम्)** मोहरूपी दुर्जय शत्रु को **(निशात्य)** नष्टकर **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारक गुणों से युक्त **(त्रिलोक-पूजातिशयास्पदं)** त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान **(आर्हन्त्यं पदम्)** आर्हन्त्यपद को **(अवापत्)** प्राप्त किया था।

भगवान् पार्श्वनाथ के प्रभाव से वशीभूत होकर अन्य तापस भी उनकी शरण आये, यह बतलाते हैं—

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(यं) जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(ईश्वरं)** समस्त लोक के प्रभु तथा **(विधूतकल्मषं)** घातिचतुष्करूप पाप से रहित **(वीक्ष्य)** देखकर **(तथा बुभूषवः)** उन्हीं के समान होने के इच्छुक **(वनौकसः)** वनवासी **(ते तपोधनाः अपि)** वे तपस्वी भी **(स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः)** अपने प्रयास में निष्फल बुद्धि होते हुए **(शमोपदेशं)** मोक्षमार्ग अथवा शान्ति का उपदेश देने वाले भगवान् पार्श्वनाथ की **(शरणं प्रपेदिरे)** शरण को प्राप्त हुए थे।

इस प्रकार भगवान् ने केवलज्ञान होने पर क्या किया ? सो कहते हैं—

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः॥५॥

अन्वयार्थ—(सत्यविद्यातपसां प्रणायकः) जो सत्य विद्याओं तथा तपस्याओं के प्रणेता थे, **(समग्रधीः)** जो पूर्ण केवलज्ञान के धारक थे **(उग्रकुलाम्बरांशुमान्)** जो उग्रवंशरूपी कुल के चन्द्रमा थे और **(विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः)** जिन्होंने मिथ्यामार्ग सम्बन्धी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को नष्ट कर दिया था, **(सः)** वे **(पार्श्वजिनः)** पार्श्वजिनेन्द्र **(मया)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा **(सदा)** हमेशा **(प्रणम्यते)** प्रणत किये जाते हैं—मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

श्री वीरजिनस्तवनम्

आपके वे कौन से गुण हैं, जिनके द्वारा आपकी कीर्ति फैली है ? सो कहते हैं—

कीर्त्या भुवि भासि तया वीर! त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया ॥१॥

अन्वयार्थ—(हे वीर!) हे वर्धमान जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(भुवि)** पृथिवी पर **(गुणसमुच्छ्रया)** आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणों से उत्पन्न **(भासितया)** सुशोभित अथवा उज्ज्वल **(तया)** उस **(कीर्त्या)** ख्याति से **(उडुसभासितया)** नक्षत्रों की सभा में आसित—स्थित एवं **(कुन्दशोभासितया)** कुन्दकुसुम की शोभा के समान सफेद **(भासा)** कान्ति से **(व्योम्नि)** आकाश में **(सोम इव)** चन्द्रमा के समान **(भासि)** सुशोभित होते हैं।

तव जिन! शासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः।
दोषकशासनविभवः स्तुवन्ति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥२॥

अन्वयार्थ—(हे जिन) हे वीरजिनेन्द्र! **(गुणानुशासनविभवः)** भव्यजीवों के भव को नष्ट करने वाला **(तव)** आपके **(शासनविभवः)** प्रवचन का यथावस्थित समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप सामर्थ्य **(कलावपि)** कलिकाल में भी **(जयति)** जयवन्त है—सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है **(च)** और **(प्रभा-कृशासनविभवः)** प्रभा—ज्ञानादितेज से आसनविभुओं—लोक के तथाकथित हरि-हरादि स्वामिओं को कृश—महत्त्वहीन करने वाले **(दोषक-शासनविभवः)** दोषरूप चाबुकों के निराकरण करने में समर्थ गणधरादि देव **(एनं)** आपके इस शासन विभव की—प्रवचन सामर्थ्य की **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं।

वे इन्द्रादि जिनशासन की स्तुति करते हैं? सो कहते हैं—

अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो द्वितयविरोधान्मुनीश्वरास्याद्वादः॥३॥

अन्वयार्थ–(हे मुनीश्वर) हे मुनिनाथ! **(स्याद्वादः)** 'स्यात्' इस कथञ्चित् अर्थ के वाचक शब्द से सहित **(तव)** आपका **(स्याद्वादः)** स्यादस्तीत्यादि अनेकान्तरूप कथन **(दृष्टेष्टाविरोधतः)** प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध न होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष है। इसके विपरीत **(इतरः अस्याद्वादः)** 'स्यात्' इस शब्द से रहित अन्य जो वाद–एकान्तरूप कथन है, वह **(द्वितयविरोधात्)** दृष्ट और इष्ट–प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष **(न)** नहीं है।

प्रकारान्तर से भी भगवान् के गुणों को दर्शाते हैं–

त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धामहितः ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(सुरासुरमहितः)** सुरों तथा असुरों से पूजित **(असि)** हैं, किन्तु **(ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः)** मिथ्यादृष्टि प्राणियों के अभक्त हृदय से प्राप्त होने वाले प्रणाम से पूजित नहीं हैं, आप **(लोक त्रयपरमहितः)** तीनों लोकों के परम हितकारी हैं और **(अनावरण-ज्योतिरुज्ज्वलद्धामहितः)** केवलज्ञान से प्रकाशमान मुक्तिरूप स्थान को प्राप्त हैं।

आपमें और भी क्या विशेषता है? यह कहते हैं–

सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन् आप **(सभ्यानां)** समवसरण सभा में स्थित भव्यजीवों के **(अभिरुचितं)** रुचिकर तथा **(श्रिया)** अष्टप्रातिहार्यरूप लक्ष्मी से **(चारु-चितं)** सुन्दरतापूर्वक व्याप्त **(गुणभूषणं)** गुणों के भूषण को अथवा गुणरूप आभूषण को **(दधासि)** धारण करते हैं **(च)** और **(स्वकान्त्या)** अपनी कान्ति के द्वारा **(स्वस्यां रुचितं)** स्वकीय कान्ति में **(मग्नं)** निमग्न, **(रुचितं)** सुन्दर, **(तं मृगलाञ्छनं)** उस चन्द्रमा को **(जयसि)** जीतते हैं।

पुनः वे कौन से गुण हैं, जिन्हें भगवान् भूषण के समान धारण करते हैं? कहते हैं–

त्वं जिन! गतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥६॥

अन्वयार्थ–(मुमुक्षुकामद!) हे मोक्षाभिलाषी जीवों के मनोरथ को देने वाले **(जिन!)** वीर जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(गतमदमायः)** गर्व और माया से रहित हैं तथा **(तव)** आपका **(भावानां)**

जीवादिपदार्थविषयक **(मायः)** केवलज्ञान अथवा आगमरूप प्रमाण **(श्रेयान्)** अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवन्! **(त्वया)** आपने **(श्रीमदमायः)** लक्ष्मी के मद को नष्ट करने वाला अथवा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाली श्रीलक्ष्मी से युक्त और माया से रहित **(सप्रयामदमायः)** श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रियविजय का **(समादेशि)** उपदेश दिया है।

दूसरे प्रकार से भी भगवान् के गुणों की स्तुति करते हुये, कहते हैं—

गिरिभित्त्यवदानवतः, श्रीमत इव दन्तिनः स्त्रवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो, गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥७॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमतः स्त्रवद्दानवतः दन्तिनः इव)** जिस प्रकार पहाड़ की कटनियों में पराक्रम से युक्त अर्थात् उनका विदारण करने वाले उत्तम जाति विशिष्ट तथा झरते हुए मद से सहित हाथी का **(ऊर्जितं)** बलशाली अर्थात् रुकावट से रहित **(गतं)** गमन होता है, उसी तरह **(शमवादान् अवतः)** दोषों के उपशमन का उपदेश देने वाले शास्त्रों के रक्षक तथा **(अपगतप्रमादानवतः)** अभयदान से युक्त **(तव)** आपका **(ऊर्जितं)** उत्कृष्ट **(गतं)** गमन—विहार हुआ था।

अब पर-मत और आपका-मत कैसा है? सो कहते हैं—

बहुगुणसम्पदसकलं, परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(हे देव!) हे वीर जिनदेव! **(परमतं)** अन्य एकान्तवादियों का शासन **(मधुर-वचनविन्यासकलम् अपि)** कर्णप्रिय वचनों के विन्यास से मनोज्ञ होता हुआ भी **(बहुगुणसम्पदसकलं)** अत्यधिक गुणरूप सम्पत्ति से विकल है, परन्तु **(तव)** आपका **(मतं)** शासन **(नयभक्त्यवतंसकलं)** नैगमादि नयों से उत्पन्न स्यादस्तीत्यादि भङ्गरूप आभूषणों से मनोज्ञ है अथवा नयों की उपासनारूप कर्णाभरण को देने वाला है, **(समन्तभद्रं)** सब ओर से कल्याणकारक है और **(सकलं)** पूर्ण है।

❑ ❑ ❑

स्तुतिविद्या

मंगलाचरण

श्रीमज्जिनपदाऽभ्याशं प्रतिपद्याऽऽगसां जये।
कामस्थानप्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये ॥१॥

अन्वयार्थ—(कामस्थानप्रदानेशं) इच्छित वा शोभनीय स्थान को प्रदान करने में समर्थ **(श्रीमज्जिनपदाऽभ्याशं)** अंतरंग अनन्त चतुष्टय रूप तथा बहिरंग समवसरणादि लक्ष्मी के धारण जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की निकटता को श्रीमान् जिनेन्द्र भगवान् के चरण सान्निध्य को **(प्रतिपद्य)** प्राप्त करके **(आगसां जये)** स्वकीय पापकर्मों पर विजय प्राप्त करने के लिए अर्थात् पापों का नाश करने के लिए मैं समन्तभद्राचार्य **(स्तुतिविद्यां)** स्तुतिविद्या नामक जिनस्तोत्र की **(प्रसाधये)** रचना करता हूँ।

ऋषभ-जिन-स्तुतिः

स्नात - स्वमलगम्भीरं जिनामितगुणार्णवम्।
पूतश्रीमज्जगत्सारं जनायात क्षणाच्छिवम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(जन!) संबोधन हे संसारी प्राणियो वा हे भव्य जीवों! **(स्वमलगम्भीरं)** सम्यक् प्रकार से नहीं है द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप मल जिसके **(स्वमलं)** निर्मल अत्यन्त अगाध गम्भीर-निर्मल और अगाध **(पूतश्रीमज्जगत्सारं)** पवित्र श्री (लक्ष्मी) सम्पन्न संसार में सारभूत सर्वोत्कृष्ट **(जिनामितगुणार्णवं)** जिनेन्द्र भगवान् के अमित (अनन्त) गुणरूपी समुद्र में **(स्नात)** स्नान करो अवगाहन करो एकाग्रचित्त होकर इसमें लीन हो और **(क्षणात्)** शीघ्र ही **(शिवं)** कल्याणस्वरूप मोक्षपद को **(आयात)** प्राप्त होओ मोक्षपद को प्राप्त करो।

धिया ये श्रितयेतार्त्या यानुपायान्वरानताः।
येऽपापा यातपारा ये श्रियाऽऽयातानतन्वत ॥३॥
आसते सततं ये च सति पुर्वक्षयालये।
ते पुण्यदा रतायातं सर्वदा माऽभिरक्षत ॥४॥ (युग्मम्)

अन्वयार्थ—(इतार्त्या ये) जो **(इता)** नष्ट हो गई है **(अर्त्ति)** पीड़ा मानसिक संताप जिसके वह इत्यार्त्तः उस मानसिक पीड़ा शारीरिक पीड़ा से रहित है अर्थात् अनन्त सुख सम्पन्न **(धिया)** बुद्धि से अर्थात् केवलज्ञान से **(श्रितया)** आश्रित है—युक्त है अर्थात् जो ज्ञानावरण कर्म के अत्यन्त क्षय होने उत्पन्न केवलज्ञान रूपी बुद्धि से सहित है इसमें 'सह' शब्द का प्रयोग न होते हुए भी

तृतीया विभक्ति से युक्त होने से बुद्धिसम्पन्न अर्थ हुआ है उपायान्–'उप' उपसर्गपूर्वक 'अय् गतौ' अय्धातु है–जिसका अर्थ गमन ज्ञान या प्राप्त होता है **(उपायान्)** सेवनीय सेवा करने योग्य **(यान्)** जिनको **(वराः)** प्रधान इन्द्रादि **(नताः)** नमस्कार करते हैं **(चः)** और **(ये)** जो **(अपापाः)** पापरहित है अथवा द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म से रहित है **(यातपाराः)** अगाध ज्ञानसमुद्र के पारगामी हैं वा संसारसमुद्र को पार कर चुके हैं **(ये)** जो **(आयातान्)** शरणागत भव्य पुरुषों को **(श्रिया)** केवलज्ञानादि लक्ष्मी से **(अतन्वत)** विस्तृत करते हैं। **(च)** और **(ये)** जो **(सततं)** निरंतर **(सति)** शोभनीय (प्रशंसनीय) **(पुर्वक्षयालये)** उत्कृष्ट अविनाशी परम पद में (उत्कृष्ट मोक्षरूप स्थान में) **(आसते)** स्थित रहते हैं **(पुण्यदा)** पुण्य को (पवित्रता आत्मविशुद्धि को) देने वाले **(ते)** वे जिनेश्वरदेव **(रतायातं)** शरणागत **(मा)** मेरी **(सर्वदा)** हमेशा **(अभिरक्षत)** रक्षा करे।

नतपीला - सनाशोक सुमनोवर्षभासितः।
भामण्डला - सनाऽशोक - सुमनोवर्षभासितः ॥५॥
दिव्यै—र्ध्वनिसितच्छत्र - चामरैर्दुन्दुभिस्वनैः ।
दिव्यैर्विनिर्मितस्तोत्र - श्रमदर्दुरिभिर्जनैः ॥६॥

अन्वयार्थ—(नतपीलासन) नम्र भक्तजनों की पीड़ा को दूर करने वाले **(अशोक)** हे शोक रहित **(सुमनः)** हे शोभन हृदय के धारक **(भामण्डलासना-शोकसुमनोवर्षभासितः)** भामण्डल सिंहासन अशोकवृक्ष पुष्पवृष्टि से शोभित **(दिव्यैः)** दिव्य **(ध्वनिसितच्छत्रचामरैः)** दिव्यध्वनि श्वेतच्छत्र चमर **(दुन्दुभिस्वनैः)** दुन्दुभिनाद **(विनिर्मितस्तोत्रश्रमदर्दुरिभिः)** विनिर्मित अनेक स्तोत्रों में श्रम करने वाले वा मधुरध्वनि से अनेक स्तोत्र पढ़ने वाले दर्दुरनामक वादित्रों से युक्त **(दिव्यैः)** दिव्य (जनैः–जन) देवेन्द्र विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के साथ **(आसितः)** समवसरण में स्थित **(दिवि)** आकाशमार्ग में **(ऐः)** गमन किया था ऐसे **(ऋषभ!)** ऋषभ! हे ऋषभदेव भगवान् मेरी **(अव)** रक्षा करो।

यतः श्रितोपि कान्ताभिर्दृष्टा गुरुतया स्ववान्।
वीतचेतोविकाराभिः स्त्रष्टा चारुधियां भवान् ॥७॥

अन्वयार्थ—(वीतचेतोविकाराभिः) नष्ट हो गया है मानसिक विकार जिसके अर्थात् निर्विकार **(कान्ताभिः)** स्त्रियों के द्वारा **(श्रितः)** आश्रित वा सेवित होते हुए **(अपि)** भी **(स्ववान्)** ज्ञानवान वा जितेन्द्रिय होने के कारण आप **(गुरुतया)** गुरु रूप से वा महान् पूज्य रूप से **(दृष्टा)** देखे गये थे **(यतः)** इसलिए **(भवान्)** आप ही **(चारुधियां)** निर्मलबुद्धि या प्रशंसनीय बुद्धि के **(स्त्रष्टा)** विधाता हो।

विश्वमेको रुचामाऽऽको व्यापो येनार्य्य! वर्त्तते।
शश्वल्लोकोऽपि चाऽलोको द्वीपो ज्ञानार्णवस्य ते ॥८॥

अन्वयार्थ–(आर्य!) हे श्रेष्ठ आदिनाथ भगवान्! **(एकः)** अद्वितीय **(विश्वं)** सारा विश्व (ते) तेरी **(रुचां)** ज्ञानज्योति को **(आकः)** प्राप्त है आपकी ज्ञानज्योति में प्रतिबिम्बित है **(व्यापः)** व्यापक है अर्थात् आप सारे लोक और अलोक को जानते हैं **(येन)** जिससे (इसलिए) **(शश्वत्)** अनादिनिधन द्रव्य का आधार यह **(लोकः)** लोकाकाश **(च)** और **(अलोकः)** अलोकाकाश **(अपि)** भी **(ते)** तेरे **(ज्ञानार्णवस्य)** ज्ञानरूपी समुद्र का **(द्वीपः)** द्वीप **(वर्तते)** है।

श्रितः श्रेयोऽप्युदासीने यत्त्वय्येवाऽश्नुते परः।
क्षतं भूयो मदाहाने तत्त्वमेवार्चितेश्वरः ॥९॥

अन्वयार्थ–(उदासीने) सबमें माध्यस्थ भाव रखने वाले वीतराग **(त्वयि)** तुझ में **(श्रितः)** आश्रय–शरण लेने वाला **(एव)** ही **(परः)** जीव **(यत्)** जिस **(श्रेयः)** कल्याण को **(अपि)** भी **(अश्नुते)** प्राप्त होते हैं **(मदाहाने)** मद की जिसके हानि नहीं है जो रागी–द्वेषी है उसका **(श्रितः)** आश्रय लेने वाला जीव **(भूयः)** बार–बार **(क्षतं)** दुःख को **(एव)** ही **(अश्नुते)** प्राप्त होता है **(तत्)** इसलिए प्रभो **(त्वं)** तुम **(एव)** ही **(अर्चितेश्वरः)** पूजनीय ईश्वर हो।

भासते विभुताऽस्तोना ना स्तोता भुवि ते सभाः।
याः श्रिताः स्तुत! गीत्या नु नुत्या गीतस्तुताः श्रिया ॥१०॥

अन्वयार्थ–(स्तुत!) हे स्तुति के योग्य प्रभो **(ते)** तेरी **(स्तोता)** स्तुति करने वाला **(ना)** भव्य पुरुष **(भुवि)** पृथ्वी पर **(याः)** जो सभी **(श्रिया)** अष्ट प्रातिहार्य लक्ष्मी से **(श्रिताः)** शोभित है **(नु)** जिस सभा में निश्चय से **(गीत्या)** संगीतमय **(नुत्या)** स्तोत्र से **(गीतस्तुताः)** गीत गाये और स्तुति की गई है **(विभुताऽस्तोना)** जो विभुता से हीन नहीं है अर्थात् उत्कृष्ट परकोटा खातिका आदि से युक्त है अर्थात् जिसने अपनी विभुता से अन्य सभाओं को तिरस्कृत कर दिया है ऐसी **(सभाः)** सभा–समवसरण में **(भासते)** शोभित होता है।

स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतस्तु ते।
चिराय भवते पीड्यमहोरुगुरवेऽशुचे ॥११॥
स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतः स्तुते।
चिराय भवतेपीड्य! महोरुगुरवे शुचे ॥ १२॥ (युग्मं)

अन्वयार्थ–(ईड्य) हे स्तुति करने योग्य परम पूज्य भगवान् **(महोरुगुरवे)** महादिव्य ध्वनिरूप किरणों से सुशोभित सूर्य **(विद्)** ज्ञानवान **(ना)** पुरुष **(नाशं)** कर्मों को **(शमयितुं)** शमन करने के

लिए नाश करने के लिए **(चिराय)** अविनाशी अक्षय पद को प्राप्त करने के लिए **(अशुचे)** शोक संताप रहित **(अपीड्य महोरुगुरवे)** निर्बाध प्रताप और केवलज्ञान से सम्पन्न **(ते)** तेरे लिए **(सन्नतः)** सम्यक्प्रकार शुद्ध निर्मल मन वचन काय से नमस्कार करता है तथा **(भवते)** आपकी **(स्तुतिविषये)** स्तुति के विषय में **(सन्नतः)** लीन होता है वह **(शं)** सुख को **(अयितुं)** प्राप्त करने के लिए **(अशं)** दुःख को **(इत्वा)** प्राप्त करके **(अपि)** भी **(ना)** पुरुष **(अचिराय)** शीघ्रं **(स्वयं)** शोभनीय पुण्यस्वरूप **(शं)** सुख को **(भवते)** प्राप्त करता हैं।

ततोतिता तु तेतीतस्तोतृतोतीतितोतृतः।
ततोऽतातितततोतोते ततता ते ततोततः ॥१३॥

अन्वयार्थ–(तोतृतोतीतितोतृतः) ज्ञातृत्व की वृद्धि की रक्षा के घातक ज्ञानावरणादि कर्मों से **(ततोतिता)** विस्तृत रक्षा करने वाले **(तु)** विशेष रूप से **(अतीतः)** पूजा को प्राप्त **(अतातितततोतोते)** परिग्रह की पराधीनता से रहित **(ततोततः!)** हे विशाल ज्ञानावरणादि कर्मों के नाशक प्रभो! **(ततः)** इसलिए **(ते)** तेरी ही **(ततता)** विशालता है प्रभुता है।

येयायायाययेयाय! नानानूनाननानन!।
ममाममाममामामितातततीतिततीतितः ॥१४॥

अन्वयार्थ–(येयायायाययेयाय) महान् पुण्यात्मा तथा पुण्यबंध के सम्मुख सुखी (निराकुल) जीवों के द्वारा प्राप्त करने योग्य है–मार्ग जिसका ऐसे हे जिनेश्वर प्रभो! **(नानानूनाननानन)** अनेक परिपूर्ण मुख और केवलज्ञान जिसका अर्थात् जिसके परिपूर्ण (सर्वांग सुन्दर) चारमुख तथा परिपूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) है उनका सम्बोधन हे परिपूर्ण चार मुख और केवलज्ञान से धारी! **(अमम)** हे ममकार अहंकार से रहित! **[अमितातततीतिततीतितः]** अपरिमित महान् व्याधियों का नाश करने वाले भगवान्! **(ममः)** मेरे **(आमं)** शारीरिक, मानसिक वा जन्म-मरणरूप रोगों को **(आम)** नष्ट करो।

गायतो महिमायते, गा यतो महिमाय ते।
पद्मया स हि तायते पद्मयासहितायते ॥१५॥

अन्वयार्थ–(महिमाय) हे महिमा को प्राप्त **(पद्मयासहितायते)** लक्ष्मी से सुशोभित अनुपम शरीर का सौन्दर्य जिसका सम्बोधन हे लक्ष्मी से शोभित अनुपम शरीर की सुन्दरता के धारक प्रभो! अथवा–कमलों पर विहार करने वाले तथा हितकारी आज्ञा का उपदेश देने वाले–प्रभो **(ते)** आपका **(महिमा)** माहात्म्य का **(गायतः)** गुणगान करने वाली की **(गा)** वाणी **(महिमायते)** महिमा को प्राप्त होती है **(यतः)** इसलिये **(मया)** मेरे द्वारा **(स)** वह **(ते)** आपके **(पद)** चरण **(तायते)** विस्तृत किये जाते हैं अर्थात् आपके चरणों का मैं गुणगान करता हूँ।

अजित-जिन-स्तुतिः

सदक्षराजराजित प्रभो दयस्व वर्द्धनः।
सतां तमो हरन् जयन् महो दयापराजितः ॥१६॥

अन्वयार्थ–(अक्षर!) हे अनश्वर **(अजर)** हे जरा रहित **(अजित)** हे द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ भगवान् **(प्रभो)** हे प्रभो **(दयापर)** हे दयाप्रधान **(सतां)** सज्जन भव्य जीवों के **(तमः)** अज्ञान अन्धकार को **(हरन्)** हरण (नाश) करने वाले **(अजितः)** दूसरे हरिहरादिक के द्वारा नहीं जीते जाने वाले मोहनीय आदि कर्मों को **(जयन्)** जीतने वाले **(वर्द्धनः)** ज्ञानादि गुणों से वृद्धि को प्राप्त भगवान्! मेरे लिए **(सत्)** समीचीन **(महः)** ज्ञान को **(दयस्व)** प्रदान करो।

सदक्षराजराजित प्रभोदय स्ववर्द्धनः।
स तान्तमोह रंजयन् महोदयापराजितः ॥१७॥

अन्वयार्थ–(सदक्षराजराजित!) हे दक्ष समर्थ राजाओं के साथ शोभित **(प्रभोदय)** हे ज्ञान की वृद्धि (केवलज्ञान) से युक्त **(तान्तमोह)** नष्ट मोह विकार जिनका अर्थात् मोह विकार से रहित **(स्ववर्द्धनः)** जो आत्मीय जनों की वृद्धि करने वाले हैं **(महोदयापराजितः)** महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुष और काम–क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं को जीतने वाले मुनिजनों को **(रंजयन्)** आनन्दित करने वाले हैं **(सः)** वह अजितनाथ भगवान् **(महः)** केवलज्ञान **(दयस्व)** प्रदान करो।

संभवनाथ-जिन-स्तुतिः

नचेनो न च रागादिचेष्टा वा यस्य पापगा।
नो वामैः श्रीयतेऽपारा नयश्रीर्भुवि यस्य च ॥१८॥
पूतस्वनवमाचारं तन्वायातं भयाद्रुचा।
स्वया वामेश पाया मा नतमेकार्च्य शंभव ॥१९॥
(युग्मं)

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसके **(इनः)** स्वामी **(न च)** नहीं हैं **(वा)** और **(पापगा)** पापबन्धकारक **(रागादिचेष्टा)** रागादिरूप मन, वचन, काय की चेष्टा **(न)** नहीं है **(च)** और **(यस्य)** जिसकी **(अपारा)** अगाध अर्थ से निचित **(नयश्रीः)** नयश्री **(भुवि)** पृथ्वीपर **(वामैः)** क्षुद्र मिथ्यादृष्टियों के द्वारा **(नो)** नहीं **(श्रीयते)** आश्रित नहीं है अर्थात् जिनदेव की नयविवक्षा को मिथ्यादृष्टि नहीं जान सकते **(वामेश!)** हे प्रधान चक्रवर्ती आदि के स्वामी **(एकार्च्य!)** हे प्रधानों के द्वारा पूज्य! **(शंभव!)** हे संभवनाथ भगवान् (तृतीय तीर्थंकर प्रभो) **(भयात्)** भय से संसार के दुःखों से भयभीत

होकर **(पूतस्वनवमाचारं)** पवित्र समीचीन गणधरादि के द्वारा अनुष्ठित है पापक्रिया निवृत्तिरूप है आचार जिसका **(तन्वायातं)** शरीर सहित आये हुए **(नतं)** नतमस्तक हुए **(मा)** मुझको **(स्वया)** स्वकीय **(रुचा)** तेज (ज्ञान) के द्वारा **(पायाः)** रक्षा करो।

धाम स्वयममेयात्मा मतयादभ्रया श्रिया।
स्वया जिन विधेया मे यदनन्तमविभ्रम ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेश्वर **(अविभ्रम!)** हे निर्मोही भगवन् आप **(स्वया)** अपनी **(मतया)** अभिमत **(अदभ्रया)** विशाल **(श्रिया)** लक्ष्मी से **(अमेयात्मा)** अनन्तज्ञानी हो अथवा आपका वास्तविक स्वरूप छद्मस्थ जीवों के अगोचर है **(जिन!)** हे जिनेश्वर **(यत्)** जो **(अनन्तं)** अन्त रजित है वह **(स्वयं)** प्रशंसनीय सुख का **(धाम)** स्थान वा तेजस्वी ज्ञान **(मे)** मेरे लिए **(विधेया)** प्रदान करो।

अभिनन्दन-जिन-स्तुतिः

अतमः स्वनतारक्षी तमोहा वन्दनेश्वरः।
महाश्रीमानजो नेता स्वव मामभिनन्दन ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अतमः!) हे अज्ञान अन्धकार से रहित **(अभिनन्दन!)** अभिनन्दन भगवान् **(स्वनतारक्षी)** स्व को नमस्कार करने वाले की रक्षा करने वाले **(तमोहा)** मोहरूपी अन्धकार के नाशक **(वन्दनेश्वरः)** वन्दना के ईश्वर **(महाश्रीमान्)** महान् अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी से युक्त **(अजः)** जन्म-मरण से रहित **(नेता)** मोक्षमार्ग के उपदेष्टा भगवन् **(मां)** मेरी **(स्वव)** रक्षा करो।

नन्द्यनन्तर्द्ध्यनन्तेन नन्तेनस्तेऽभिनन्दन।
नन्दनर्द्धिरनम्रो, न नम्रो नष्टोऽभिनन्द्य न ॥२२॥

अन्वयार्थ—(नन्द्यनन्तर्द्ध्यनन्त!) हे समृद्धि-सम्पन्न अनन्त ऋद्धियों से युक्त **(इन)** हे स्वामिन् **(अनन्त!)** हे अविनाशी **(अभिनन्दन!)** हे अभिनन्दनस्वामी ते-आपको **(नन्ता)** नमस्कार करने वाला **(इनः)** स्वामी (परमात्मा) बन जाता है इसलिए **(नन्दनर्द्धिः)** महान् ऋद्धिधारी मानव **(ते)** आपके प्रति **(अनम्रः)** अनम्र **(न)** नहीं हैं **(अभिनन्द्य)** आपको नमस्कार करके **(नम्रः)** वह नम्रजन **(नष्टो)** नष्ट **(न)** नहीं होता है।

नन्दनश्रीर्जिन त्वा न नत्वा नर्द्धया स्वनन्दि न।
नन्दिनस्ते विनन्ता ननन्तानर्द्ध्यन्तोभिनन्दन ॥२३॥

अन्वयार्थ—(नन्दन!) हे अभिनन्दन **(जिन!)**जिन भगवान् **(नन्दनश्रीः)** वर्द्धनशील लक्ष्मी वाले **(त्वा)** आपको **(ऋद्धया)** स्वकीय विभूति के साथ **(न नत्वा)** अतिशय रूप से नमस्कार

करके **(स्वनन्दि न न)** हर्षित नहीं होता है ऐसा नहीं है अपितु हर्षित होता ही है तथा **(नन्दिनः)** समृद्धिशाली **(ते)** तेरे को **(विनन्ता)** विशिष्ट रूप से नमस्कार करने वाला **(न नन्ता)** स्तुति करने वाले **(अनन्तः)** अविनाशी नहीं बन जाता है? इसमें दो 'न' कार का जो प्रयोग किया है वह अतिदृढ़ता का सूचक है अर्थात् ऐसा नहीं है ऐसी बात है अपितु ऐसा ही है।

नन्दनं त्वाप्य नष्टो न नष्टोऽनत्वाभिनन्दन।
नन्दनस्वर नत्वेन नत्वेनः स्यन्न नन्दनः ॥२४॥

अन्वयार्थ–(नन्दनम्) वृद्धि करने वाले **(नन्दनस्वर!)** हे प्रीतिकर वचन वाले **(अभिनन्दन!)** चतुर्थ तीर्थंकर अभिनन्दन इन स्वामी **(त्वा)** तुझको **(आप्य)** प्राप्तकर **(न)** नहीं **(नष्टः)** नष्ट हुआ है अपितु तुझको **(अनत्वा)** नमस्कार नहीं करके ही **(नष्टः)** हुआ है संसार में परिभ्रमण कर रहा है **(नत्वा)** तेरी स्तुति करके **(इन)** स्वामिन् **(एनः)** पापों को **(स्यन्)** विनाश करता हुआ **(न नन्दनः)** आनन्दित नहीं हुआ ऐसा **(न)** नहीं है **(तु)** अपितु आनन्दित हुआ ही है।

सुमति-जिन-स्तुतिः

देहिनो जयिनः श्रेयः सदाऽतः सुमते! हितः।
देहि नोजयिनः श्रेयः स दातः सुमतेहितः ॥२५॥

अन्वयार्थ–(सुमते!) हे सुमतिनाथ भगवान् **(जयिनः)** कर्म शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वाले **(देहिनः)** प्राणियों के द्वारा **(श्रेयः)** उपासना करने योग्य हो **(अतः)** क्योंकि आप उनके **(सदा)** निरन्तर **(हितः)** हित (कल्याण) करने वाले हो **(सुमतेहितः)** सुष्ठु–समीचीन है उत्तम है आगम और मन वचन काय की चेष्टा जिसकी ऐसे सुमतिनाथ भगवान् आप **(अजः)** जन्म–मरण के दुःखों से रहित है **(इनः)** सबके स्वामी हैं **(दातः)** हे मोक्ष के देने वाले स्वामिन् **(अतः)** इसलिए **(नः)** हमारे लिए **(सः)** वह **(श्रेयः)** कल्याण **(देहि)** प्रदान करो।

वरगौरतनुं देव वन्दे नु त्वाक्षयार्ज्जव।
वर्जयार्त्तिं त्वमार्याव वर्यामानोरुगौरव ॥२६॥

अन्वयार्थ–(अक्षयार्ज्जव!) अविनाशी है आर्जव धर्म जिसका ऐसे हे अविनाशी आर्जव धर्म वाले आर्य हे आर्य **(वर्य!)** हे सर्वश्रेष्ठ **(अमानोरुगौरव!)** अप्रमित विशाल गौरवशाली **(देव)** सुमतिनाथ भगवान् **(नु)** अत्याधिक भक्ति से **(वरगौरतनुं)** श्रेष्ठ तपाये हुए सुवर्ण के समान गौर वर्ण वाले भगवान् **(त्वा)** आपको **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ **(त्वं आर्य)** आप आर्य पुरुष **(नः)** इस नकार का अध्याहार करना चाहिए अतः हमारे **(अर्त्तिं)** शारीरिक पीड़ा वा जन्म–मरण की व्यथा का **(वर्जय)** निराकरण करो नाश करो **(अव)** मेरी रक्षा करो।

पद्मप्रभ-जिन-स्तुतिः

अपापापदमेयश्रीपादपद्म प्रभोऽर्दय।
पापमप्रतिमाभो मे पद्मप्रभ मतिप्रद ॥२७॥

अन्वयार्थ—(अपापापदमेयश्रीपादपद्म!) पद एवं आपत्ति से रहित अपरिमित लक्ष्मी है चरणारविन्द में जिसके उसका सम्बोधन हे पाप और आपत्तियों से रहित अपरिमित श्रीयुक्त चरण कमल वाले! **(मतिप्रद!)** सम्यग्ज्ञान देने वाले! **(अप्रतिमाभः)** अनुपम आभा से युक्त **(पद्मप्रभ!)** हे पद्मप्रभ **(प्रभो)** प्रभो भगवान् **(मे)** मेरे **(पापं)** पापों को **(अर्दय)** नष्ट करो।

वन्दे चारुरुचां देव भो वियाततया विभो।
त्वामजेय यजे मत्वा तमितांतं ततामित ॥२८॥

अन्वयार्थ—(चारुरुचां) शोभनीय कान्ति ज्ञान एवं भक्ति वाले प्राणियों के **(देव!)** स्वामी **(अजेय!)** अंतरंग बहिरंग शत्रुओं के द्वारा अजेय **(ततामित!)** हे अनन्त पदार्थों का निरूपण करने वाले **(भो विभो)** हे स्वामिन् **(तमितांतं)** अन्तरहित अविनाशी **(मत्वा)** मानकर **(त्वां)** आपको **(वियाततया)** धृष्टता से **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ **(यजे)** पूजा करता हूँ।

सुपार्श्व-जिन-स्तुतिः

स्तुवाने कोपने चैव समानो यन्न पावकः।
भवानेकोपि नेतेव त्वमाश्रेयः सुपार्श्वकः ॥२९॥

अन्वयार्थ—(सुपार्श्वकः) सुपपार्श्वनाथ भगवान् **(भवान्)** आप **(स्तुवाने)** स्तुति करने वाले में **(च)** और **(कोपने)** कोप करने वाले पर **(समानः)** सदृश **(एव)** ही है **(यत्)** क्योंकि आप **(न पावकः)** अग्नि नहीं हैं जिस प्रकार अग्नि निन्दा–स्तुति के समान है वैसे नहीं है अपितु पवित्र करने वाले हैं **(त्वं)** आप **(अपि)** असहाय होते हुए भी वा प्रधान होते हुए **(नेता)** नेता के **(इव)** समान **(आश्रेयः)** आश्रय करने योग्य है।

चन्द्रप्रभ-जिन-स्तुतिः

चन्द्रप्रभो दयोऽजेयो विचित्रेऽभात् कुमण्डले।
रुन्द्रशोभोऽक्षयोमेयो रुचिरे भानुमण्डले ॥३०॥

अन्वयार्थ—(चन्द्रप्रभः) चन्द्रप्रभ अष्टम तीर्थंकर **(दयः)** रक्षक है **(अजेयः)** किसी के द्वारा जीते नहीं जाते वा अरिचक्र को जिसने जीत लिया है **(रुन्द्रशोभः)** महान् शोभा के धारक हैं **(अक्षयः)** क्षय रहित हैं **(अमेयः)** अपरिमित गुणों वाले हैं **(विचित्रे)** नाना प्रकार की **(कुमण्डले)** पृथ्वीमण्डल पर **(रुचिरे)** रुचिर **(भानुमण्डले)** भानुमण्डल में **(अभात्)** शोभित होते हैं।

प्रकाशयन् खमुद्भूतस्त्वमुद्घांककलालयः।
विकासयन् समुद्भूतः कुमुदं कमलाप्रियः ॥३१॥

अन्वयार्थ—(त्वं) आप भगवान् **(उद्घांककलालयः)** महान् चिह्न और कलाओं के आलय (स्थान) है **(खं)** आकाश (लोकाकाश और अलोकाकाश को) **(प्रकाशयन्)** प्रकाशित करते हुए लोक और अलोक को ज्ञान के द्वारा जानते हुए **(उद्भूतः)** प्रकट हुए हैं **(कमलाप्रियः)** लक्ष्मी को प्रिय आप **(कुमुदं)** पृथ्वी के हर्ष को **(विकासयन्)** विकसित करते हुए **(समुद्भूतः)** उत्पन्न हुए हैं।

धाम त्विषां तिरोधानविकलो विमलोक्षयः।
त्वमदोषाकरोऽस्तोनः सकलो विपुलोदयः ॥३२॥

अन्वयार्थ—(त्वं) आप **(त्विषां)** तेज के वा केवलज्ञान के **(धाम)** स्थान **(तिरोधानविकलः)** तिरोधान से रहित **(विमलः)** कर्ममल कलंक से रहित **(अक्षयः)** अक्षय अविनाशी **(अदोषाकरः)** गुणों की खान है **(अस्तोनः)** ऊनता से रहित हैं अर्थात् असर्वज्ञरूप ताराओं का नाश कर दिया है **(सकलः)** सम्पूर्ण परिपूर्ण केवलज्ञान सहित **(विपुलोदयः)** विपुल उदय से युक्त अर्थात् आप एक स्थान में रहकर के भी सारे जगत् को प्रकाशित करते हैं। **(चन्द्रमा—त्विषां)** तेज का **(अधाम)** स्थान नहीं है **(अतिरोधानविकलः)** तिरोधान से रहित नहीं है **(अविमलः)** निर्मला रहित है **(क्षयः)** क्षयसहित है—प्रतिदिन क्षीण होता है **(दोषाकारः)** अनेक दोषों की खान है अर्थात् रात्रि को करने वाला है **(स्तोनः)** न्यूनता का नाश करने वाला नहीं **(असकलः)** असम्पूर्ण है **(अविपुलोदयः)** विपुल उदय से रहित है अतः आप चन्द्रमा से अधिक हैं।

यत्तु खेदकरं ध्वान्तं सहस्रगुरपारयन्।
भेत्तुं तदन्तरत्यन्तं सहसे गुरु पारयन् ॥३३॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस **(खेदकरं)** खेद करने वाला, अत्यन्त दुःख देने वाला **(अत्यन्तं)** अतिसघन **(अन्तः)** आंतरिक **(ध्वान्तं)** मोहरूप अन्धकार को **(भेत्तुं)** भेदने (नाश करने) के लिए **(सहस्रगुः)** सहस्र किरण वाला सूर्य **(तु)** भी **(अपारयन्)** समर्थ नहीं है परन्तु **(तत्)** उस **(गुरु)** महान् अज्ञानरूपी अन्धकार को **(भेत्तुं)** विदारने के लिए—नाश करने के लिए चन्द्रप्रभ भगवान् आप ही **(पारयन्)** समर्थ होते हुए **(सहसे)** नष्ट करते हैं।

खलोलूकस्य गोव्रातस्तमस्ताप्यति भास्वतः।
कालोविकलगोघातः समयोप्यस्य भास्वतः ॥३४॥

अन्वयार्थ—(भास्वतः) सूर्य की **(गोव्रातः)** किरणों का समूह **(खलोलूकस्य)** दुष्ट उल्लू को **(तमः)** अन्धकार करने वाला उल्लू की आँखों को अन्धकारित करने वाला **(अपि)** और

(अति) अत्यन्त **(तापि)** ताप देने वाला तथा–**(अस्य)** इस **(भास्वतः)** सूर्य का **(कालः)** काल **(विकलगः)** घटिका वर्ष आदि से विकल है और **(समयः)** ऋतु वा दिन **(घातः)** प्रतिहत–मेघादि के द्वारा घात सहित है परन्तु **(भास्वतः)** दैदीप्यमान चन्द्रप्रभु भगवान् के **(गोव्रातः)** वचनों का समूह यद्यपि **(खलोलूकस्य)** खल दुष्टरूपी उल्लूको तीव्र मिथ्यादृष्टिरूपी उल्लू को **(तमः)** अन्धकार रूप है **(ताप्यति)** संताप देने वाला है परन्तु भव्यजीवों के अज्ञान अन्धकार को दूर करता है और आनन्ददायक है **(अस्य)** इस **(भास्वतः)** निरंतर प्रकाशित रहने वाले चन्द्रप्रभस्वामी **(कालः)** काल **(अविकलः)** अव्यवहित है दिन–रात का भेद नहीं है **(इसका समयः)** सिद्धान्त–दर्शन **(अघातः)** घात रहित है–अर्थात् इसके सिद्धान्त कोई भी प्रतिवादी खण्डित नहीं कर सकते।

लोकत्रयमहामेय - कमला - करभास्वते ।
एकप्रियसहायाय नम एकस्वभाव ते ॥३५॥

अन्वयार्थ–(एकस्वभाव!) निरन्तर एक रूप रहने वाले चन्द्रप्रभ भगवान् **(लोकत्रय-महामेयकमलाकरभास्वते)** ऊर्ध्व–मध्य–पाताल तीन लोकरूपी विशाल कमल वन को विकसित करने के लिए सूर्य **(एकप्रियसहायाय)** अद्वितीय प्रिय (इष्ट) बन्धु **(ते)** तेरे लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

चारुश्रीशुभदौ नौमि रुचा वृद्धौ प्रपावनौ।
श्रीवृद्धौतौ शिवौ पादौ शुद्धौ तव शशिप्रभ ॥३६॥

अन्वयार्थ–(शशिप्रभ!) हे चन्द्रप्रभ भगवान् **(तव)** आपके **(चारुश्रीशुभदौ)** मनोज्ञ समवसरण तथा निःश्रेयस्रूप लक्ष्मी के दायक **(रुचा)** कान्ति से **(वृद्धौ)** वृद्धि को प्राप्त **(प्रपावनौ)** परम पवित्र **(श्रीवृद्धौतौ)** अंतरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी को प्राप्त करने से प्रक्षालित वा उज्ज्वल अथवा इन्द्र, चक्रवर्ती, योगीन्द्र और विविध लक्ष्मीवान् महापुरुषों के द्वारा प्रक्षालित **(शिवौ)** कल्याणकारी वा शोभनीय **(शुद्धौ)** अत्यन्त शुद्ध **(पादौ)** चरणों को **(नौमि)** नमस्कार करता हूँ।

पुष्पदंत-जिन-स्तुतिः

शंसनाय कनिष्ठायाश्चेष्टाया यत्र देहिनः।
नयेनाशंसितं श्रेयः सद्यः सन्नज राजितः ॥३७॥
शं स नायक! निष्ठायाश्चेष्टाया यत्र देहि नः।
न येनाशं सितं श्रेयः सद्यः सन्नजराजितः ॥३८॥

अन्वयार्थ–(सन्नजर!) नष्ट कर दिया है जरा (वृद्धत्व) को जिसने ऐसे हे सन्नजर **(इष्टयाः)** प्रिय **(निष्ठायाः)** मोक्षप्राप्ति के **(नायक)** नायक पुष्पदन्त भगवन्त **(अजितः)** अन्य किसी के भी

द्वारा जीते नहीं गये हैं, हरि–हरादि सब को पराजित करने वाले हैं **(यत्र)** जिस सर्वज्ञ के विषय में वा जहाँ आपके विषय में की गई **(कनिष्ठायाः)** अल्पसी **(चेष्टायाः)** मन वचन काय की चेष्टा **(देहिनः)** प्राणियों को **(यः)** जो **(सन्)** श्रेष्ठ **(श्रेयः)** पुण्यबंध **(सः)** वह पुण्यबंध **(नयेन)** अनुमाप द्वारा वा अभिप्राय द्वारा **(आशंसितं)** संभावित है अनुमान के द्वारा जाना जा सकता है **(शंसनाय)** प्रशंसा के लिए **(राजितः)** शोभित है अर्थात् वह प्रशंसा के योग्य है **(अज!)** हे जन्मरहित सर्वज्ञ भगवन् **(नः)** हमारे लिए **(सद्यः)** शीघ्र ही **(सः)** वह **(शं)** सुख **(देहि)** दीजिए **(येन)** जिससे **(अत्र)** इस संसार में **(अशं)** दुःख का **(सितं)** बन्ध **(न)** नहीं **(सद्यः)** शीघ्र ही **(श्रेयः)** कल्याण हो।

शोकक्षयकृदव्याधे! पुष्पदन्त! स्ववत्पते!
लोकत्रयमिदं बोधे गोपदं तव वर्त्तते ॥३९॥

अन्वयार्थ–(शोकक्षयकृत!) हे शोक का क्षय करने वाले **(अव्याधे!)** हे व्याधियों से रहित **(स्ववत्पते)** आत्मज्ञानियों के स्वामी **(पुष्पदन्त!)** हे पुष्पदन्त भगवान् **(तव)** आपके **(बोधे)** ज्ञान में **(इदं)** यह **(लोकत्रयं)** तीनों लोक **(गोपदं)** गाय के खुर में स्थित जल के समान **(वर्त्तते)** हैं।

लोकस्य धीर! ते वाढं रुचयेपि जुषे मतम्।
नो कस्मै धीमते लीढं, रोचतेपि द्विषेऽमृतम् ॥४०॥

अन्वयार्थ–(धीर!) हे गम्भीर! **(ते)** आपका **(लीढं)** आस्वादन किया हुआ **(मतं)** प्रवचन **(लोकस्य)** भव्य जीवों को **(वाढं)** अत्यन्त **(रुचये)** रूचि के लिए–दीप्ति के लिए **(जुषे)** प्रीति के लिए होता है **(अपि)** क्योंकि **(अमृतं)** अमृत **(कस्मै)** किस **(धीमते)** बुद्धिमान के लिए **(नो)** नहीं **(रोचते)** रुचिकर होता अपितु आस्वादन किया हुआ अमृत **(द्विषे)** शत्रु के लिए **(अपि)** भी (रोचते) रुचिकर होता है।

शीतल-जिन-स्तुतिः

एतच्चित्रं क्षितेरेव घातकोपि प्रसादकः।
भूतनेत्र! पतेऽस्यैव शीतलोपि च पावकः ॥४१॥

अन्वयार्थ–(भूतनेत्र!) हे प्राणियों के लोचन! **(पते)** हे भगवन् **(एतत्)** यह **(चित्रं)** आश्चर्य है कि **(क्षितेः)** पृथ्वी के **(घातकः)** घातक है **(अपि)** तथापि **(प्रसादकः)** पालक **(एव)** ही **(असि)** है **(च)** और **(शीतलः)** शीतल होकर **(अपि)** भी **(पावकः)** अग्नि (असि) है।

काममेत्य जगत्सारं जनाः स्नात महोनिधिम्।
विमलात्यन्तगम्भीरं जिनामृतमहोदधिम् ॥४२॥

अन्वयार्थ–(जनाः) हे संसारी भव्य जीवों **(एत्य)** यहाँ आकर **(कामं)** इच्छानुसार **(विमलात्यन्तगम्भीरं)** निर्मल अत्यन्त गंभीर **(जगत्सारं)** संसार में सारभूत वा श्रेष्ठ **(महोनिधिं)** महतेज की निधि (खान) **(जिनामृतमहोदधिं)** जिनेन्द्ररूपी क्षीरसमुद्र में **(स्नात)** स्नान करो।

श्रेयोजिन–स्तुतिः

हरतीज्याहिता तान्तिं रक्षार्थायस्य नेदिता।
तीर्थादे श्रेयसे नेताज्यायः श्रेयस्ययस्य हि ॥४३॥

अन्वयार्थ–(तीर्थादे!) हे तीर्थ के प्रारम्भ में होने वाले **(अज्यायः)** वृद्धत्व से रहित प्रभो **(श्रेयसि)** श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर के प्रति **(आयस्य)** प्रयत्नपूर्वक **(नेदिता)** समीपीकृत **(आहिता)** की गई **(इज्या)** पूजा **(तान्तिं)** सांसारिक दुःखों को **(हरति)** नाश करती है **(अयस्य)** पुण्य की **(रक्षार्था)** रक्षा के लिए तथा **(श्रेयसे)** कल्याण के लिए होती है **(हि)** निश्चय से हे भगवन् आप ही **(नेता)** नायक (महान्) हैं।

अविवेको न वा जातु विभूषापन्मनोरुजा।
वेषा मायाज वैनो वा कोपयागश्च जन्म न ॥४४॥

अन्वयार्थ–इस श्लोक में 'त्वयि श्रेयसि' यह ऊपर के श्लोक से ग्रहण करना है अतः **(अज!)** हे सर्वज्ञ **(त्वयि)** आप में **(श्रेयसि)** श्रेयांसनाथ में **(जातु)** कभी भी **(अविवेकः)** अविवेक–अज्ञान **(न)** नहीं है तुझ में **(विभूषा)** शरीर के अलंकार **(आपत्)** विपत्ति महासंक्लेश परिणाम **(मनोरुजा)** मानसिक पीड़ा **(वेषा)** चित्रविचित्र वस्त्र के द्वारा या केशविन्यासादि **(न)** नहीं है **(वा)** तथा आप में **(माया)** छल–कपट **(एनः वा)** पाप **(कोपः)** क्रोध **(आगः)** अपराध **(च)** और **(जन्म)** जन्म–उत्पत्ति **(न)** नहीं है।

आलोक्य चारु लावण्यं पदाल्लातुमिवोर्जितम्।
त्रिलोकी चाखिला पुण्यं मुदा दातुं ध्रुवोदितम् ॥४५॥

अन्वयार्थ–(मुदा) हर्षपूर्वक **(पुण्यं)** पुण्य को **(दातुं)** प्रदान करने के लिए **(ध्रुवोदितं)** निरन्तर उदित रहने वाले **(ऊर्जितं)** विस्तृत **(चारु)** मनोहर **(लावण्यं)** सौन्दर्य को **(आलोक्य)** देखकर **(पदात्)** तेरे चरणों से **(लातुं)** उस लावण्य को प्राप्त करने के लिए ही **(इव)** मानो **(च)** अत्यन्तर्थ (विशेषरूप से) **(अखिला)** सारे **(त्रिलोकी)** तीन लोक का समूह **(ननाम)** नमस्कार करता है इस श्लोक में 'तव' ऊपर के श्लोक से तथा 'ननाम' पद ४६ वें श्लोक से ग्रहण करना चाहिए।

अपराग! समाश्रेयन्ननाम यमितोभियम्।
विदार्य सहितावार्य! समुत्सन्नज! वाजितः ॥४६॥
अपराग! स मा श्रेयन्ननामयमितोभियम्।
विदार्यसहितावार्य! समुत्सन्नजवाजितः ॥४७॥ (युग्मं)

अन्वयार्थ–(अपराग) हे वीतरागदेव **(अज!)** हे सर्वज्ञ **(सहितावार्य!)** हे हितइच्छुक देव चक्रवर्ती आदि भव्यजीवों के द्वारा परिवेष्टित **(यं)** जिसको **(इतः)** प्राप्त हुए जो भव्य **(भियं)** भय को **(विदार्य)** नाशकर **(समुत्सन्)** हर्षित होकर **(वाजितः)** पुलकित होता हुआ **(समाश्रेयं)** सम्यक्प्रकार से आश्रय लेने योग्य आपको **(ननाम)** नमस्कार करता था **(सः)** वह **(अपराग!)** हे कषायराज से रहित प्रभो **(श्रेयन्)** ग्यारहवें तीर्थंकर **(विदार्यसहित!)** हे ज्ञानी साधुगणों से युक्त **(आर्य!)** सर्वश्रेष्ठ पूजनीय स्वामी **(आजितः)** रागद्वेषरूप संग्राम से **(समुत्सन्नजव)** उत्साह जिसका नष्ट हो गया अर्थात् रागद्वेषरूप संग्राम से रहित निष्कषायी भगवन् **(इतः)** आज से वह **(अनामयं)** नीरोगता **(अभियं)** निर्भयता को प्राप्त हो जाता है **(अतः श्रेयन्)** हे श्रेयांसनाथ भगवान् मा–मेरी **(अव)** रक्षा करो।

वासुपूज्य-जिन-स्तुतिः

अभिषिक्तः सुरैर्लोकैस्त्रिभिर्भक्तः परैर्न कैः।
वासुपूज्य मयीशेशस्त्वं सुपूज्यः क ईदृशः ॥४८॥

अन्वयार्थ–(वासुपूज्य!) हे वासुपूज्य बारहवें तीर्थंकर **(त्वं)** आप **(सुरैः)** चार प्रकार के देवों के द्वारा **(अभिषिक्तः)** अभिषेक किये गये **(त्रिभिः)** तीन **(लोकैः)** लोकों के द्वारा **(भक्तः)** सेवित हो **(परैः)** अन्य **(कैः)** किसके द्वारा **(न)** सेवित नहीं हो अर्थात् सबके द्वारा पूजित हो **(मयि)** मेरे विषय में **(त्वं)** तुम ही **(ईशेशः)** ईशेश्वर हो **(ईदृशः)** आप जैसा **(कः)** कौन दूसरा **(सुपूज्यः)** पूजनीय है।

चार्वस्यैव क्रमेऽजस्य तुंगः सायो नमन्नभात्।
सर्वतो वक्त्रमेकास्यमङ्गं छायोनमप्यभात् ॥४९॥

अन्वयार्थ–(अस्य) इस **(अजस्य)** सर्वज्ञ भगवान् के **(एव)** ही **(क्रमे)** चरण–कमलों में **(नमन्)** नमस्कार करने वाला **(तुंगः)** उच्च **(सायः)** पुण्यवान होता हुआ **(अभात्)** शोभित होता है **(अस्य)** इसके **(एकास्यं)** एक मुख होते हुए **(अपि)** भी **(सर्वतः)** चारों तरफ **(वक्त्रं)** मुख (दृष्टिगोचर होते हैं) **(छायोनं)** छाया रहित **(अङ्गं)** शरीर **(चारु)** अत्यन्त **(अभात्)** शोभित होता है।

विमल-जिन-स्तुतिः

क्रमतामक्रमं क्षेमं धीमतामर्च्यमश्रमम्।
श्रीमद्विमलमर्चेमं वामकामं नम क्षमम् ॥५०॥

अन्वयार्थ—(अक्रमं) क्रमरहित एक साथ सर्वपदार्थों को **(क्रमतां)** जानने वाले **(क्षेमं)** कल्याणकारी **(धीमतां)** बुद्धिमानों के द्वारा **(अर्च्यं)** पूजनीय **(अश्रमं)** श्रमरहित **(वामकामं)** गणधरादि महापुरुषों के द्वारा वांच्छित **(क्षमं)** समर्थ वा क्षमता के धारी **(इमं)** इस **(श्रीमद्विमलं)** श्रीमान् विमलनाथ भगवान् को **(अर्च)** पूजो **(नम)** नमस्कार करो।

ततोमृतिमतामीमं तमितामतिमुत्तमः।
मतोमातातिता तोत्तुं तमितामतिमुत्तमः ॥५१॥

अन्वयार्थ—(ततः) आपकी स्तुति से अनेक कल्याण प्राप्त होते हैं इसलिए **(अतिमुत्तमः)** अत्यन्त हर्षित हुआ [**(अहं)** मैं] **(तमितां)** दु:खों का **(तोत्तुं)** नाश करने के लिए **(अमृतिं)** मृत्यु से रहित **(तमितामतिं)** अज्ञान को नाश करने वाले **(इमं)** इन विमलनाथ भगवान् की **(अतामि)** शरण जाता हूँ हे भगवन् आप **(उत्तमः)** अति उत्तम हो **(मतः)** सबके द्वारा पूजित हो **(अमाता)** अहिंसक **(अतिता)** सतत गमन करने वाला हूँ।

नेतानतनुते नेनोनितान्तं नातततो नुतात्।
नेता न तनुते नेनो नितान्तं ना ततो नुतात् ॥५२॥

अन्वयार्थ—(अनेनः!) हे पापरहित भगवान् **(इतान्)** शरणागत **(नाततः)** संसार में न भटकने वाले **(न)** नहीं अर्थात् संसार में भटकने वाले संसारी प्राणियों को **(अनितान्तं)** बिना क्लेश **(अतनुते)** शरीर रहित **(तनुते)** कर देते हैं **(नुतात्)** नमस्कार करने से **(ना)** पुरुष **(इनः)** सबके स्वामी **(नेता)** नायक **(न तनुते)** न नहीं बनाते हो ऐसा नहीं है **(ततः)** इसलिए **(नुतात्)** इसको नमस्कार करो।

नयमानक्षमामान न मामार्यार्त्तिनाशन।
नशनादस्य नो येन नये नोरोरिमाय न ॥५३॥

अन्वयार्थ—(नयमानक्षम!) प्रशंसनीय क्षमाभाव से सम्पन्न **(अमान)** हे अहंकार शून्य **(आर्यार्तिनाशन)** हे साधुजनों की पीड़ा के नाशक **(उरो)** हे सर्वश्रेष्ठ **(न अरिमाय!)** कर्मशत्रुओं के घातक नहीं हैं ऐसा नहीं अपितु कर्मशत्रुओं के घातक हैं अत: हे कर्मशत्रुओं के घातक प्रभु **(मां)** मुझको **(नशनात्)** जन्म-मरण से **(अस्य)** दूर करो (मेरे जन्म-मरण का नाश करो) **(येन)** जिससे **(ननो नये)** मैं भी पूजा को प्राप्त नहीं होऊँ ऐसा नहीं है अपितु पूजा को प्राप्त होऊँगा ही।

अनन्त-जिन-स्तुतिः

वर्णभार्यातिनन्द्याव वन्द्यानन्त सदारव।
वरदातिनतार्य्याव वर्य्यातान्तसभार्णव ॥५४॥

अन्वयार्थ—(हे वर्णभ!) हे अनुपम शारीरिक प्रभा से शोभित! **(आर्य्य)** हे पूजनीय **(अतिनन्द्य!)** हे सम्यक् प्रकार से समृद्ध **(वन्द्य!)** हे सुर–असुरों के द्वारा वन्दनीय **(सदारव)** शोभनीय सर्वभाषात्मक वाणी के धारक **(वरद)** इच्छित वस्तु को प्रदान करने वाले **(अतिनतार्याव!)** हे अत्यन्त नम्र साधु पुरुषों की रक्षा करने वाले **(वर्य्य!)** हे श्रेष्ठ पुरुष! **(अतान्तसभार्णव!)** हे अक्षुभित समवसरण समुद्र से संयुक्त **(अनन्त)** चतुर्दशवें तीर्थंकर अनन्तनाथ भगवान् **(अव)** रक्षा करो।

नुन्नानृतोन्नतानन्त नूतानीतिनुताननः।
नतोनूनोनितान्तं ते नेतातान्ते निनौति ना ॥५५॥

अन्वयार्थ—(नुन्नानृत!) नष्ट कर दिया है–असत्य को जिसने! (हे असत्य को नष्ट करने वाले) **(उन्नत!)** हे महान्! **(अनन्त)** अनन्तनाथ भगवान्! **(नूतानीति नुताननः)** स्तुतसिद्धों की स्तुति करने के लिए मुखरित है मुख जिनका **(नतः)** झुके हुए **(अनूनः)** परिपूर्ण है ऐसे **(नेता)** इन्द्रादि नेता **(ना)** पुरुष **(अतान्ते)** मोक्षप्राप्ति के लिए **(अनितान्तं)** बिना क्लेश के **(ते)** तुझको **(निनौति)** नमस्कार करते हैं।

धर्म-जिन-स्तुतिः

त्वमवाध! दमेनर्द्ध—मत धर्मप्र गोधन।
वाधस्वाशमनागो मे धर्म! शर्मतमप्रद ॥५६॥

अन्वयार्थ—(अबाध!) हे बाधा रहित **(दमेनर्द्ध!)** हे इन्द्रियदमन वा उत्तम क्षमा से वृद्ध–परिपूर्ण **(मत)** हे परमपूज्य **(धर्मप्र!)** हे उत्तम क्षमादि धर्मों के पूरक वा धारक **(गोधन!)** हे दिव्यध्वनि रूप धन से सम्पन्न! **(अनागः!)** हे अपराध वा पापभाव से रहित **(शर्मतमप्रद!)** उत्तम मोक्षसुख को प्रदान करने वाले **(धर्म!)** हे धर्मनाथ भगवान् **(त्वं)** आप **(मे)** मेरे **(अशं)** दुःखों को **(बाधस्व)** नष्ट करो।

नतपाल! महाराज! गीत्यानुत ममाक्षर।
रक्ष मामतनुत्यागी जराहा मलपातन! ॥५७॥

अन्वयार्थ—(नतपाल!) नम्र मनुष्यों के रक्षक! **(महाराज!)** हे महान् राजेश्वर **(मम)** मेरे द्वारा **(गीत्यानुत!)** स्तुति से पूजित **(अक्षर!)** हे अविनश्वर! **(अतनुत्यागी!)** महान् दानकर्त्ता वा

महान् वैभव के त्यागी **(जराहा!)** बुढ़ापे से रहित! **(मलपातन!)** ज्ञानावरणादि कर्ममल वा अज्ञानरूप मल के नाशक! हे भगवन् **(मां)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करो।

मानसादर्शसंक्रान्तं सेवे ते रूपमद्भुतम्।
जिनस्योदयि सत्त्वान्तं स्तुवे चारूढमच्युतम् ॥५८॥

अन्वयार्थ–(मानसादर्शसंक्रान्तं) मनरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित **(अद्भुतं)** अनुपम **(उदयि)** निरन्तर उदय सहित **(सत्त्वान्तं)** उत्तमता की परम काष्ठा को **(आरूढं)** आरूढ़ **(अच्युतं)** अविनाशी **(ते)** तुझ **(जिनस्य)** जिनेन्द्र के **(रूपं)** सौन्दर्य को **(सेवे)** सेवा करता हूँ **(च)** और **(स्तुवे)** स्तुति करता हूँ।

यतः कोपि गुणानुक्त्या नावाब्धीनपि पारयेत्।
न तथापि क्षणाद्भक्त्या तवात्मानं तु पावयेत् ॥५९॥

अन्वयार्थ–(यतः) क्योंकि **(तव)** तेरे **(गुणान्)** गुणों का **(उक्त्या)** वचनों के द्वारा **(कः)** कोई **(अपि)** भी **(न पारयेत्)** कथन करने में समर्थ नहीं है जैसे **(नावा)** नौका के द्वारा **(अब्धीन्)** समुद्र को **(न अपि)** नहीं **(पारयेत्)** समर्थ होता है **(तु)** परन्तु **(तथापि)** फिर भी **(तव)** तेरी **(भक्त्या)** भक्ति से **(क्षणात्)** क्षणभर में **(आत्मानं)** आत्मा को **(पावयेत्)** पवित्र कर देता है।

रुचं बिभर्ति ना धीरं नाथातिस्पष्टवेदनः।
वचस्ते भजनात्सारं यथायः स्पर्शवेदिनः ॥६०॥

अन्वयार्थ–(नाथ) हे स्वामिन् **(यथा)** जैसे **(स्पर्शवेदिनः)** पारसमणि के **(भजनात्)** स्पर्श करने से **(अयः)** लोहा **(सारं)** सुवर्ण भाव को **(बिभर्ति)** धारण करता है वैसे ही **(ना)** भव्यपुरुष **(ते)** तुझ **(अतिस्पष्टवेदनः)** विशदज्ञानी (केवलज्ञानी) के **(भजनात्)** आराधना–सेवा से **(सारं)** परमतत्त्वभूतं **(वचः)** वचनों को (दिव्यध्वनि को) और **(धीरं)** गंभीर **(रुचं)** दीप्ति–तेज को **(बिभर्त्ति)** धारण करता है।

प्राप्य सर्वार्थसिद्धिं गां कल्याणेतः स्ववानतः।
अप्यपूर्वार्थसिद्ध्येगां कल्याऽकृत भवान् युतः॥६१॥

अन्वयार्थ–(कल्य) हे समर्थशाली भगवन् **(सर्वार्थसिद्धिं)** सर्वार्थसिद्धि नामक **(गां)** पृथ्वी को **(प्राप्य)** प्राप्त करके **(कल्याणेतः)** गर्भ जन्मादि कल्याणों को प्राप्त **(अपि)** भी **(स्ववान्)** अपनी आत्मा में लीन रहने वाले **(अतः)** इसके बाद **(अपूर्वार्थसिद्ध्या)** अनन्त चतुष्टयरूप अपूर्वार्थसिद्धि से **(युतः)** सहित **(अपि)** भी **(भवान्)** आपने **(इगां)** बिहार **(अकृत)** किया था।

भवत्येव धरा मान्या सूद्यातीति न विस्मये।
देवदेव पुरा धन्या प्रोद्यास्यति भुवि श्रिये ॥६२॥

अन्वयार्थ–(देवदेव) हे देवों के देव त्रिलोक्याधिपति **(भुवि)** पृथ्वी पर **(भवति)** आपके **(सूद्याति)** जन्म लेने पर **(धरा)** पृथ्वी **(मान्या)** पूजनीय होती है **(इति)** इसमें **(न)** नहीं **(विस्मये)** आश्चर्य करता हूँ अर्थात् इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि **(भवति)** आपके **(प्रोद्यास्यति)** जन्म लेगी आपका जन्म होगा उसके **(पुरा)** पहले–छह महीना पूर्व **(एव)** ही **(श्रिये)** श्री का निमित्त होने से रत्नों की वृष्टि कारण होने से **(धन्या)** धन्य मानी जाती है लक्ष्मी से सम्पन्न हो जाती है।

एतच्चित्रं पुरो धीर स्नपितो मन्दरे शरैः।
जातमात्रः स्थिरोदार क्वापि त्वममरेश्वरैः ॥६३॥

अन्वयार्थ–(धीर!) हे धीर **(स्थिर उदार)** धर्मनाथ भगवान् **(त्वं)** तुम **(जातमात्रः)** उत्पन्न होते ही **(पुरः)** सर्वप्रथम **(अमरेश्वरैः)** सुर–असुरादि सर्व देवों के द्वारा **(मन्दरे)** मेरु पर्वत पर **(शरैः)** क्षीरसमुद्र के जल से **(स्नपितः)** स्नान किया गया तुम्हारा अभिषेक किया **(एतत्)** यह **(चित्रं)** आश्चर्य **(क्वापि)** किसी भी काल में **(न)** नहीं है।

तिरीटघटनिष्ठ्यूतं हारीन्द्रौघविनिर्मितम्।
पदे स्नातः स्म गोक्षीरं तदेडित भगोश्चिरम् ॥६४॥

अन्वयार्थ–(भगोः) हे भगवन् **(तदा)** अभिषेक करने के बाद इन्द्रों के समूह ने **(पदे)** तेरे चरणों में **(ईडित)** नमस्कार किया तब **(तिरीटघटनिष्ठ्यूतं)** मुकुटरूपी घट से निकाला हुआ **(इन्द्रौघविनिर्मितं)** इन्द्रों के समूह से रचित **(हारि)** शोभनीय **(गोक्षीरं)** किरणरूपी दुग्ध प्रकट हुआ था उसमें **(चिरं)** चिरकाल तक **(पदे)** तेरे चरणों का **(स्नातः स्म)** स्नान हुआ था।

कुत एतो नु सन्वर्णो मेरोस्तेपि च संगतेः।
उत क्रीतोथ संकीर्णो गुरोरपि तु संमतेः ॥६५॥

अन्वयार्थ–(नु) भगवन् हम लोगों को संशय है कि **(मेरोः)** सुमेरु पर्वत का **(सन्)** शोभनीय **(वर्णः)** वर्ण–कान्ति **(कुतः)** कहाँ से **(एतः)** आया **(अपि च)** क्या **(ते)** तेरी **(संगतेः)** संगति से हुआ है **(उत)** अथवा **(क्रीतः)** मूल्य देकर खरीदा गया है **(अथ)** अथवा **(संकीर्णः)** किसी अन्य मनोहर वस्तु का उसमें संकीर्ण कर दिया गया है **(अपि तु)** अथवा **(गुरोः)** गुरु की **(संमतेः)** आज्ञा से ऐसा हो गया।

हृदि येन धृतोसीनः स दिव्यो न कुतो जनः।
त्वयारूढो यतो मेरुः श्रिया रूढो मतो गुरुः ॥६६॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस भव्य प्राणी के द्वारा **(इनः)** स्वामी रूप से **(हृदि)** हृदय में **(धृतः)** धारण किये गये **(असि)** हो **(सः)** वह **(जनः)** भव्य प्राणी **(दिव्यः)** पुण्यवान् **(कुतः)** कैसे **(न)** नहीं अवश्य ही है **(यतः)** क्योंकि **(त्वया)** तेरे से **(आरूढः)** अधिष्ठित **(मेरुः)** सुदर्शनमेरु **(श्रिया)** श्री के द्वारा **(आरूढः)** आरूढ़ श्री से सम्पन्न **(गुरुः)** महान् **(मतः)** माना जाता है।

शान्ति-जिन-स्तुतिः

चक्रपाणेर्दिशामूढा भवतो गुणमन्दरम्।
के क्रमेणेदृशा रूढाः स्तुवन्तो गुरुमक्षरम् ॥६७॥

अन्वयार्थ—(चक्रपाणेः) चक्र है हाथ में जिसके (चक्रवर्ती) (यह पूर्व राज्य अवस्था का विशेषण है) ऐसे **(भवतः)** आपके **(गुरुं)** महान् **(अक्षरं)** अविनाशी **(गुणमन्दरं)** गुणरूपी पर्वत को **(ईदृशा)** इसप्रकार **(क्रमेण)** न्याय की परिपाटी से वा मुरज बंध या चक्रवृत्त के द्वारा **(रूढाः)** प्रख्यात **(स्तुवन्तः)** स्तुति करने वाले **(के)** कौन **(दिशामूढाः)** दिशाभूल होते हैं अर्थात् कोई भी नहीं हैं।

त्रिलोकीमन्वशास्सङ्गं हित्वा गामपि दीक्षितः।
त्वं लोभमप्यशान्त्यङ्गं जित्वा श्रीमद्विदीशितः ॥६८॥

अन्वयार्थ—(त्वं) हे भगवन् आप **(सङ्गं)** परिग्रह को और **(गां)** पृथ्वी को **(अपि)** भी **(हित्वा)** छोड़कर **(दीक्षितः)** दीक्षित हो गए दिगम्बर मुनि बन गये फिर भी **(त्रिलोकीं)** तीन लोक का **(अन्वशाः)** अनुशासन किया **(अशांत्यङ्गं)** अशांति के कारणभूत **(लोभं)** लोभ को **(जित्वा)** जीतकर के **(अपि)** भी **(श्रीमद्विदीशितः)** लक्ष्मी और विद्वानों के स्वामी थे।

केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्य महिमाधरम्।
तव चाङ्गं क्षमाभूषलीलाधाम शमाधरम् ॥६९॥

अन्वयार्थ—(केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्य!) हे केवलज्ञानरूप शरीर से आलिंगित तथा अनन्त बल से युक्त प्रभो **(तव)** तेरा (आपका) **(अङ्गं)** यह परमौदारिक शरीर **(महिमाधरं)** महामहिमा को धारण करने वाला **(क्षमाभूषलीलाधाम)** क्षमारूप अलंकारों से अलंकृत वा क्षमारूप आभूषणों की लीला का आस्पद **(च)** और **(शमाधरं)** शम (समता) भाव का आधार है। **(च)** यह शब्द समुच्चय अर्थ में भी हो सकता है जिसका अर्थ है कि आप जैसा शरीर अन्य देवताओं के नहीं है।

त्रयोलोकाः स्थिताः स्वैरं योजनेधिष्ठिते त्वया।
भूयोन्तिकाः श्रितास्तेरं राजन्तेधिपते श्रिया ॥७०॥

अन्वयार्थ—(अधिपते!) हे भगवन् **(त्वया)** तेरे द्वारा **(अधिष्ठिते)** अधिष्ठित **(योजने)**

योजन (साढ़े चार योजन मात्र समवसरण) स्थान में **(त्रयोलोका:)** तीन लोक के सारे जीव **(स्वैरं)** स्वच्छन्दता के साथ (इच्छानुसार) **(स्थिता:)** बैठ जाते हैं और जो भव्य **(भूय:)** बहुलता से तेरे **(अन्तिका:)** समीप **(श्रिता:)** बैठते हैं आपका आश्रय लेते हैं **(ते)** वे भव्य प्राणी तेरी **(श्रिया)** श्री से (तेरे जैसे पद से) **(अरं)** शीघ्र ही **(राजन्ते)** शोभित होते हैं।

परान् पातुस्तवाधीशो बुधदेव भियोषिता:।
दूराद्धातुमिवानीशो निधयोवज्ञयोज्झिता: ॥७१॥

अन्वयार्थ–(बुधदेव!) हे विद्वानों के स्वामी सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता भगवन् **(परान्)** अन्य सारे प्राणियों के **(पातु:)** रक्षा करने वाले **(अधीश:)** स्वामी **(तव)** तेरी **(अवज्ञया)** अवज्ञा से **(उज्झिता:)** छोड़ी हुई **(निधय:)** नव निधियाँ **(हातुं)** तेरे को छोड़ने के लिए **(अनीश:)** असमर्थ हुई ही **(इव)** मानों **(भिया)** भय से **(दूरात्)** दूर हो **(उषिता:)** खड़ी हैं।

समस्तपतिभावस्ते समस्तपति तद्द्विष:।
संगतोहीन भावेन संगतो हि न भास्वत: ॥७२॥

अन्वयार्थ–(संगतोहीन!) हे परिग्रह रहित भगवन् **(ते)** तेरे में **(भास्वत:)** सूर्य में **(समस्तपतिभाव:)** सर्वस्वामित्व **(सम:)** समान है **(तथापि-भावेन)** भावरूप से **(संगत:)** सूर्य के समान **(न)** नहीं है **(हि)** क्योंकि **(भास्वत:)** सूर्य **(तपति)** तपता है संताप देता है परन्तु आप संताप नहीं देते शांति देते हैं **(तद्द्विष:)** सूर्य के शत्रु हैं आपके शत्रु नहीं हैं अर्थात् आपने रागादि शत्रुओं का नाश कर दिया है। **(इनभावेन संगत:)** स्वामित्व भाव से युक्त है परन्तु आप **(अहीनभावसंगत:)** हीनभाव (स्वामित्व से) युक्त नहीं है।

नयसत्त्वर्त्तव: सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगता:।
श्रियस्ते त्वयुवन् सर्वे दिव्यर्द्ध्या चावसंभृता: ॥७३॥

अन्वयार्थ–(नयसत्त्वर्त्तव:) नय सत्त्व और ग्रीष्म आदि ऋतुयें **(च)** और **(अन्ये)** अन्य **(अपि)** भी **(सर्वे)** सर्व परस्पर विरोधी पदार्थ **(गवि)** पृथ्वी पर **(असंगता:)** जो असंगत हैं–परस्पर विरोध रखने वाले हैं **(ते सर्वे)** वे सर्वनयादि पदार्थ **(ते)** तेरे **(श्रिय:)** लक्ष्मी वा माहात्म्य से **(तु)** तो **(अयुवन्)** संगत हो जाते हैं परस्पर विरोध को छोड़कर मैत्री भाव को धारण कर लेते हैं **(च)** और **(दिव्यर्द्ध्या)** कितने ही देवों के द्वारा ऋद्धय: (अतिशय) **(अवसंभृता:)** निष्पादित किये जाते हैं।

तावदास्व त्वमारूढो भूरिभूतिपरम्पर:।
केवलं स्वयमारूढो हरिर्भाति निरम्बर: ॥७४॥

अन्वयार्थ–(भूरिभूतिपरम्परः) अनेक प्रकार की अन्तरंग एवं बहिरंग भूतियों के धारक **(निरम्बरः)** परम दिगम्बर मुद्रा से सम्पन्न **(त्वं)** तुम **(आरूढः)** जगत् में विख्यात हो **(तावत्)** यह तो दूर **(आस्व)** रहे **(केवलं)** किन्तु (परन्तु) **(स्वयं)** स्वयं **(आरूढः)** आरूढ़ जिस पर तुम आरूढ़ हो वह **(हरिः)** सिंहासन भी **(भाति)** शोभित होता है।

नागसे त इनाजेय कामोद्यन्महिमार्द्दिने।
जगत्त्रितयनाथाय नमो जन्मप्रमाथिने ॥७५॥

अन्वयार्थ–(इन!) हे स्वामिन् **(अजेय!)** हे अजेय **(नागसे)** निष्पाप अपराध रहित **(कामोद्यन्महिमार्द्दिने)** काम की उद्यत (वृद्धि को प्राप्त) महिमा के घातक **(जन्मप्रमाथिने)** जन्म–मरण रूप संसार के घातक **(जगत्त्रितयनाथाय)** तीन लोक के नाथ **(ते)** तेरे लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

रोग - पात - विनाशाय तमोनुन्म - हिमायिने।
योगख्यातजनार्चाय, श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने ॥७६॥

अन्वयार्थ–(रोगपातविनाशाय) शारीरिक व्याधि और कुत्सित आचरणरूप पाप के विनाशक **(तमोनुन्महिमायिने)** अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने वाली महिमा के धारक **(योगख्यातजनार्चाय)** योग–शुभ वा शुद्ध ध्यान वा अनुष्ठान में विख्यात गणधरादि मानवों के द्वारा पूजा–सत्कार को प्राप्त **(श्रमोच्छिन्मंदिमासिने)** श्रम–स्वेदखेद आदि का नाश करने वाले तथा मृदुत्व दयार्द्रत्व भाव के धारक भगवन् **(ते नमः)** आपके लिए नमस्कार हो।

रोगपातविनाशाय, तमोनुन्महिमायिने।
योगख्यातजनार्चायः श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने ॥७७॥

अन्वयार्थ–(रोगपातविनाशाय) तिरस्कार के घातक और संसार पर्याय के नाशक **(तमोनुन्महिमायिने)** अलोकाकाश चतुर्गति में भ्रमण कराने वाले कर्म तथा जीवादि छहों द्रव्यों के ज्ञाता **(अगख्यातजनार्चायः)** पर्वतों में विख्यात मेरु पर्वत पर इन्द्रादि जनों के द्वारा पूजा को प्राप्त **(श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने)** उन क्लेश के विनाशक तथा जड़ता–मूर्खता का उच्छेद करने वाले भगवान् के लिए नमस्कार हो **(यः)** जो शांतिनाथ भगवान् हैं।

प्रयत्येमान् स्तवान् वश्मि प्रास्तश्रान्ताकृशार्त्तये।
नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये ॥७८॥

अन्वयार्थ–(प्रास्तश्रान्ताकृशार्त्तये) नष्ट कर दी है दुःखी जीवों की महती पीड़ा को जिन्होंने **(नयप्रमाणवग्रश्मिध्वस्त ध्वान्ताय)** नय और प्रमाण रूप वचनों की किरणों से नष्ट कर दिया है

भव्य जीवों के अज्ञान अन्धकार को जिन्होंने ऐसे **(शान्तये)** शान्तिनाथ भगवान् के लिए **(इमान्)** इन **(स्तवान्)** स्तोत्रों को **(प्रयत्य)** प्रयत्नपूर्वक रचकर **(वशिम)** प्रार्थना करता हूँ–वा शान्तिनाथ भगवान् के स्तोत्र की रचना करता हूँ।

स्वसमान समानन्द्या भासमान स मानघ।
ध्वंसमानसमानस्तत्रासमानसमानतम् ॥७९॥

अन्वयार्थ–(स्वसमान) अपने ही समान (उपमारहित) **(अनघ!)** हे निष्पाप! **(भासमान!)** हे शोभमान **(सः)** वह भगवान् **(ध्वंसमानसमानस्तत्रासमानसं)** ध्वंस हुए के समान होते हुए भी नहीं नष्ट हुई मानसपीड़ा जिसकी ऐसा **(आनतं)** तेरे चरणों में नत **(मा)** मुझको **(समानन्द्या)** आपके समान समृद्ध करो, आप जैसी अवस्था मुझे प्रदान करो।

सिद्धस्त्वमिह संस्थानं लोकाग्रमगमः सताम्।
प्रोद्धर्त्तुमिव सन्तानं शोकाब्धौ मग्नमंक्ष्यताम् ॥८०॥

अन्वयार्थ–(त्वं) तुम (आप भगवन्) **(इह)** इस भूतल पर ही **(संस्थानं)** सिद्धयोग्य संस्थान (आकार) से युक्त हो **(सिद्धः)** कृतकृत्य निष्ठितार्थ हो गये थे तथापि **(इव)** मानों **(शोकाब्धौ)** शोक समुद्र में **(मग्नमंक्ष्यतां)** डूबे हुए और भविष्य में अनन्त काल तक डूबे रहने वाले **(सतां)** सज्जनों के **(सन्तानं)** समूह को **(प्रोद्धर्त्तुं)** उद्धार करने के लिए उनको संसार से पार करने के लिए **(लोकाग्रं)** लोक के अग्र भाग में **(अगमः)** चले गये।

कुन्थु-जिन-स्तुतिः

कुन्थवे सुमृजाय ते नम्रयूनरुजायते।
ना महीष्वनिजायते सिद्धये दिवि जायते ॥८१॥

अन्वयार्थ–(अनिज!) हे जन्म–मरण से रहित कुन्थुनाथ भगवान्! **(सुमृजाय)** सुशुद्ध–अत्यन्त शुद्ध **(ते)** तुझ **(कुन्थवे)** कुन्थुनाथ भगवान् के लिए **(नम्रः)** नमस्कार करने वाला **(ना)** पुरुष **(महीषु)** पृथ्वी पर **(ऊनरुजायते)** रोगों से रहित हो जाते हैं **(सिद्धये)** मोक्ष के लिए **(अयते)** गमन करते हैं–मोक्ष को प्राप्त करते हैं **(दिवि)** स्वर्ग में **(जायते)** उत्पन्न होते हैं।

यो लोके त्वा नतः सोतिहीनोप्यतिगुरुर्यतः।
बालोपि त्वा श्रितं नौति को नो नीतिपुरुः कुतः ॥८२॥

अन्वयार्थ–(यः) जो पुरुष **(लोके)** इस लोक में **(त्वा)** तुझको **(नतः)** नमस्कार करता है **(सः)** वह **(अतिहीनः)** अति निकृष्ट होता हुआ **(अपि)** भी **(अतिगुरुः)** महागुरु बन जाता है **(यतः)** इसलिये **(बालः)** मूर्ख **(अपि)** भी **(श्रितं)** आश्रय लेने योग्य **(त्वा)** तुझको **(कः)** कौन

पुरुष **(न)** नहीं **(नौति)** नमस्कार करता है **(नीतिपुरुः)** नीति को जानने वाले **(कुतः)** क्यों **(न)** नहीं **(नौति)** नमस्कार करता है अर्थात् करता ही है।

नतयात विदामीश शमी दावितयातन।
रजसामन्त सन्देव वन्देसन्तमसाजर ॥८३॥

अन्वयार्थ—(नतयात!) हे नम्र पुरुषों के द्वारा जानने योग्य **(विदामीश)** हे ज्ञानियों के स्वामी **(दावितयातन!)** हे दुःखों के नाशक **(रजसामन्त)** हे पापरूपी रज (धूलि) को शमन करने वाले **(देव)** हे परमात्मन् **(असन्तमस)** हे अज्ञानशून्य **(अजर)** जन्म-मरण और जरा रहित **(शमी)** अत्यन्त शान्त **(सन्)** होता हुआ **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

पारावाररवारापारा क्षमाक्ष क्षमाक्षरा।
वामानाममनामावारक्षमर्द्धर्द्धमक्षर ॥८४॥

अन्वयार्थ—(पारावाररवार) हे समुद्र की ध्वनि के समान ध्वनि वाले **(क्षमाक्ष!)** सर्व पृथ्वीपर व्याप्त अर्थात् जिसके ज्ञान में सारे प्रमेय पदार्थ व्याप्त हैं **(वामानां)** पापों के **(अमन)** नाश करने वाले **(ऋद्ध)** ज्ञानादि गुणों से वृद्ध! अक्षर! हे अविनाशी भगवन् **(क्षमा)** तेरी क्षमा सहिष्णुता **(अपारा)** अपार और **(अक्षरा)** अविनाशी है इसलिए हे प्रभुवर **(मा)** मुझ **(ऋद्धं)** वृद्ध पर **(अम)** प्रसन्न होओ **(अव)** रक्षा करो वा मुझे सुशोभित करो **(आरक्ष)** मेरी रक्षा करो-मेरा पालन करो।

अर-जिन-स्तुतिः

वीरावारर वारावी वररोरुरुरोरव।
वीरावाररवारावी वारिवारिरि वारि वा ॥८५॥

अन्वयार्थ—(वीरावार!) विरूप नरकादि 'ईरा' गतियों के 'वीरा' प्रच्छादक-अर्थात् हे नरकादि दुर्गतियों के निवारक! **(अर!)** हे अठारहवें अरनाथ तीर्थंकर **(वारावी)** भक्तजनों के रक्षक **(वरर!)** हे इष्ट फलदायक **(उरुरोः)** महान् में भी महान् **(अवाररवारावी)** अप्रतिहत वाणी के द्वारा ध्वनि करने वाले (भव्यों को तत्त्व का प्रतिपादन करने वाले) **(वारिवारिरि)** सर्वव्यापी बादल जल से परिपूर्ण बादल के समान ज्ञान में प्रतिबिम्बित प्रमेय वाले अथवा-**(वारिवा)** जल के समान शब्द करने वाले **(वीर)** हे शूरवीर अरनाथ भगवान् **(अव)** मेरी और सारे संसारी प्राणियों की रक्षा करो।

रक्ष माक्षर वामेश शमी चारुरुचानुतः।
भो विभोनशनाजोरुनम्रेन विजरामय ॥८६॥

अन्वयार्थ—(भो विभो) हे तीन लोक के स्वामी! **(अनशन!)** अनाहार या अविनाशी! **(अक्षर!)** हे अनश्वर! **(वामेश!)** हे प्रधान स्वामी! **(उरुनम्र!)** हे महान् पुरुषों के द्वारा नमस्कार

करने योग्य **(अज!)** हे जन्म रहित **(इन)** हे स्वामिन् **(विजरामय!)** बुढ़ापा और रोग रहित **(शमी)** समता भाव के धारी **(चारुरुचानुतः)** शोभनीय महान् पुरुष जिसकी स्तुति करते हैं ऐसे हे भगवन् **(मा)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करो।

यमराज विनम्रेन रुजोनाशन भो विभो।
तनु चारुरुचामीश शमेवारक्ष माक्षर ॥८७॥

अन्वयार्थ–(यमराज!) हे मूलगुण उत्तरगुणआदि सर्वव्रतों के स्वामी **(विनम्रेन)** चरणों में नत हैं शत इन्द्र जिसके अर्थात् सर्व इन्द्र अहमिन्द्रों के द्वारा नमस्कृत **(रुजोनाशन!)** हे आधि–व्याधि विनाशक! **(चारुरुचां)** शोभनीय कान्ति के **(ईश)** स्वामी (सर्वांगसुन्दर) **(अक्षर!)** हे अविनाशी! **(भो विभो)** भगवन् **(मा)**मेरे लिए **(शम्)** सुख **(एव)** ही **(तनु)** विस्तृत करो–मुझ को मोक्षसुख ही दो **(मा)** मेरी **(आरक्ष)** रक्षा करो।

नय मा स्वर्य वामेश शमेवार्य स्वमाय न।
दमराजर्त्तवादेन नदेवार्त्तजरामद ॥८८॥

अन्वयार्थ–(स्वर्य!) हे समीचीन स्वामी **(वामेश!)** उत्कृष्ट नायक **(आर्य!)** हे श्रेष्ठ पुरुष **(स्वमाय!)** हे सम्यक् प्रकार से माया रहित अथवा **(आर्यस्वमायन)** सर्वप्रकार के स्वकीय आत्मा का अनुभव करने वाले ज्ञान से सम्पन्न अर्थात् हे स्वपर प्रकाशक ज्ञान से संयुक्त **(दमराज!)** हे इन्द्रियमन रूप संयम से शोभित! वा इन्द्रियदमनरूप संयम के राजा **(ऋतवाद!)** हे सत्य वचन बोलने वाले–सत्यार्थ रूप में पदार्थ का कथन करने वाले **(इन!)** हे स्वामिन्! **(नदेवार्त्तजरामद!)** देव–क्रीडा आर्त्त–पीड़ा जरा–बुढ़ापा और मद जिनके नहीं हैं–अर्थात् क्रीड़ा–पीड़ा–वृद्धत्व और अहंकार से रहित अरनाथ भगवान् **(मा)** मेरे लिए **(शं)** सुख **(एव)** ही **(नय)** दो **(न दुःखं)** दुःख मत दो।

वीरं मा रक्ष रक्षार परश्रीरदर स्थिर।
धीरधीरजरः शूर वरसारर्द्धिरक्षर ॥८९॥

अन्वयार्थ–(रक्षार!) हे समस्त प्राणियों के कल्याण करने वाले! **(अदर!)** हे निर्भय **(अजर)** हे जन्म–मरण रहित **(स्थिरः!)** हे अचल! **(अक्षर!)** हे अविनाशी! **(शूर)** शूरवीर प्रभो आप **(परश्रीः)** उत्कृष्ट लक्ष्मी के धारक हैं **(धीरधीः)** आप अगाध ज्ञान से सम्पन्न हैं **(वरसारर्द्धिः)** श्रेष्ठ सार (अविनाशीक) ऋद्धि (ज्ञानादिविभूति) वाले अरनाथ भगवान् **(वीरं)** विरूप गति–गतियों में भ्रमण करने वाले **(मा)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करो।

मल्लि-जिन-स्तुतिः

आस यो नतजातीर्य्यां सदा मत्वा स्तुते कृती।
यो महामतगोतेजा नत्वा मल्लिमितः स्तुत ॥९०॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(नतजातीर्यां)** नमस्कार करने वालों की उत्पत्ति (जन्ममरण) की प्राप्ति को **(आस)** दूर करते हैं नष्ट करते हैं **(यः)** जो **(महामतगोतेजा)** महान् आगम दिव्य ध्वनि और तेज (ज्ञान) वाले हैं **(स्तुते)** सतुति करने पर मानव **(कृती)** अनश्वर कीर्ति वाला–तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर महान् पुण्यवान हो जाता है इसलिए ऐसा **(मत्वा)** जानकर **(सदा)** निरन्तर **(मल्लिं)** मल्लिनाथ भगवान् को **(नत्वा)** नमस्कार करके **(इतः)** प्राप्त हो अर्थात् उनके निकटवर्ती हो **(स्तुत)** उनकी स्तुति करो।

मुनिसुव्रत-जिन-स्तुतिः

ग्लानं चैनश्च नः स्येन! हानहीन! घनं जिन।
अनन्तानशन ज्ञानस्थानस्थाऽऽनत—नन्दन ॥९१॥

अन्वयार्थ—(इन!) हे स्वामिन् **(हानहीन!)** हे क्षयरहित (अविनाशी) **(जिन!)** हे कर्मशत्रुओं को जीतने वाले परमात्मा **(अनन्त!)** अपरिमित गुणों के धारक! **(अनशन!)** अविनाशी वा निराहारी **(ज्ञानस्थानस्थ!)** केवलज्ञानरूपी धाम में स्थित **(आनतनन्दन!)** नमस्कार करने वालों की वृद्धि करने वाले वा आनन्दित करने वाले उत्तर श्लोक में मुनिसुव्रत का ग्रहण होने से इस श्लोक में भी मुनिसुव्रत का ग्रहण करना है अतः हे मुनिसुव्रतनाथ भगवन्! **(नः)** हमारे (स्स्तुति करने वालों के) **(ग्लानं)** ग्लानि को **(च)** और **(घनं)** अनादिकाल से आत्मप्रदेशों में स्थित घोर **(ऐनः)** पापों को **(स्य)** दूर करो नाश करो एक 'च' पादपूर्ण अर्थ में है।

पावनाजितगोतेजो वर नानाव्रताक्षते।
नानाश्चर्य सुवीतागो जिनार्य मुनिसुव्रत ॥९२॥

अन्वयार्थ—(पावन!) हे परम पवित्र **(अजितगोतेजः!)** अप्रतिहत है वाणी और ज्ञान जिसका–सम्बोधन में हे अप्रतिहतवाणी और ज्ञान वाले प्रभो! **(वर!)** हे सर्वश्रेष्ठ **(नानाव्रत)** छद्मस्थ अवस्था में अनेक व्रत अनुष्ठान करने वाले **(अक्षते!)** हे अक्षय! **(नानाश्चर्य!)** नाना प्रकार के आश्चर्य (अतिशय ऋद्धयः प्रातिहार्य) के धारक **(सुवीतागः!)** भली प्रकार जिसके अपराध नष्ट हो गये हैं वह हे सुनष्ट अपराध! **(जिन!)** हे जिनेन्द्रदेव **(आर्य!)** हे स्वामिन्! **(मुनिसुव्रत!)** हे बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ भगवन् **(नः)** हमारे **(ग्लानं)** ग्लान को **(च)** और **(एनः)** पाप कर्मों को **(स्य)** दूर करो मेरी विभाव भाव रूप पाप परिणति का नाश करो।

नमि-जिन-स्तुतिः

नमेमान नमामेनमानमाननमानमा-
मनामोनु नुमोनामनमनोमम नो मन ॥९३॥

अन्वयार्थ–(नमे!) नमिनाथ **(अमान!)** हे परिमेय! **(अमम!)** हे निर्मोही **(अनामनमनः!)** हे बिना इच्छा दूसरों को नमस्कार नहीं कराने वाले–हे वीतराग! अथवा–**(नामनमनः!)** नमनशील है चित्त जिससे उसका सम्बोधन हे नामनमनः जिसको देखकर मन स्वयमेव झुक जाता है अथवा–जिसके निमित्त को पाकर चित्त स्तुतियुक्त हो जाता है **(आनमाननमानं)** आन–प्राणियों को **(माननं)** प्रबोधक है **(नानं)** ज्ञान जिसका हे सर्व जीवों को प्रबोध करने वाले ज्ञान के धारक **(इनं)** परमात्मा को **(आमनामः)** मन में चिन्तन करता हूँ **(नमाम)** नमस्कार करता हूँ **(अनु)** पश्चात् **(नुमः)** नमस्कार करता हूँ आपकी स्तुति करता हूँ **(नः)** मेरा **(मनः)** ध्यान रखो।

न मे माननमामेन मानमाननमानमा–
मनामो नु नु मोनामनमनोम मनोमन ॥९४॥

अन्वयार्थ–(आनमामनामः आनमा) भक्तिपूर्वक नमस्कार करने वालों के **(अमनं)** रोगों के **(अमः)** नाश करने वाले **(आनमामनामः)** नमस्कार करने वाले भक्तों के रोगों के नाश करने वाले **(मोनामनमनः)** मा–लक्ष्मी ऊन–रहित आम रोग **(नाम)** नाश करने वाले–**(मोनामनमनः)** ज्ञानादि लक्ष्मी से रहित अज्ञानी जनों के सांसारिक मानसिक व अज्ञानमय रोगों के नाशक **(अमन!)** सुन्दर **(नमे!)** हे नमिनाथ भगवान् **(ननु)** निश्चय से **(मे)** मेरे **(मनः)** मन को **(अम)** प्राप्त होओ मेरे मन में निवास करो **(मानमा)** ज्ञानादि गुणों के नाशक **(आमेन)** रोगों ने (कर्मों ने) **(नु)** वास्तव में **(मे)** मेरे **(माननं)** पूजा प्रतिष्ठा स्वतंत्रता **(न)** नष्ट की है **(अननमा)** ज्ञानादि गुणों के घातक कर्मों से रहित हो जाऊँ।

नर्दयाभर्त्तवागोद्य द्य गोवार्त्तभयार्दन।
तमिता नयजेतानुनुताजेय नतामित ॥९५॥

अन्वयार्थ–(नः!) हे पूज्य पुरुष! **(हे दयाभ!)** दया (करुणा) ही है आभा (कान्ति या रूप) जिसका ऐसे हे दयाभ! **(ऋतवागोद्य)** सत्य (अनेकान्तमय) वचन का है उद्यम प्रयत्न जिसका या स्याद्वाद के द्वारा ही है अनुमेय जिसका ऐसे हे स्याद्वाद वाणीमय भगवन् **(गोवार्त्तभयार्दन!)** वचनमात्र से भय के विनाशक! **(अनुनुत!)** हे पूजनीय! **(अजेय)** हे अपराजित! **(नतामित!)** चरणों में झुके हैं अपरिमित इन्द्र जिसके **(नयजेता)** नय के द्वारा सबको जीतने वाले नेमिनाथ भगवान् तुम मेरे **(तमिताः)** दुःखों का **(द्य)** खण्डन करो–मेरे दुःखों का नाश करो इसमें में वा नः शब्द नहीं होते हुए भी ऊपर से ग्रहण किया जाता है।

हतभीः स्वय मेध्याशु शं ते दातः श्रिया तनु।
नुतया श्रित दान्तेश शुद्ध्यामेय स्वभीत ह ॥९६॥

अन्वयार्थ–(स्वय!) शोभनीय पुण्यशाली! **(मेध्य!)** हे पवित्रात्मा! **(दातः)** हे दानशील! **(नुतया)** पूजित **(श्रिया)** लक्ष्मी के द्वारा **(श्रित!)** सेवनीय **(दान्तेश!)** हे इन्द्रियों को वश में करने वालों के स्वामी (मुनीश) **(शुद्ध्या)** केवलज्ञान के द्वारा **(अमेय)** जानने योग्य **(स्वभीत!)** भलीप्रकार निर्भय **(हतभीः)** भयरहित प्रभुवर तुम मुझको **(ह)** स्फुटार्थ **(ते)** तेरे **(शं)** सुख को **(आशु)** शीघ्र **(तनु)** प्रदान करो।

नेमि-जिन-स्तुतिः

मानोनानामनूनानां मुनीनां मानिनामिनम्।
मनूनामनुनौमीमं नेमिनामानमानमन् ॥९७॥

अन्वयार्थ–(मानोनानां) अहंकार से रहित **(अनूनानां)** अनून–सम्पूर्ण चारित्र के धारी **(मानिनां)** पूजित **(मुनिनां)** साधुओं के एवं **(मनूनां)** ज्ञानियों के **(इनं)** स्वामी **(इमं)** इस **(नेमिनामानं)** नेमिनाथ भगवान् को **(आनमन्)** मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हुआ **(अनुनौमि)** स्तुति करता हूँ नमस्कार करता हूँ।

तनुतात्सद्यशोमेय शमेवार्य्यवरो गुरु।
रुगुरो वर्य्य वामेश यमेशोद्यत्सतानुत ॥९८॥

अन्वयार्थ–(सद्यशः!) हे शोभनीय यश के धारक! **(अमेय!)** अल्पज्ञानियों के अगोचर! **(रुगुरो)** 'रु' दीप्ति–गुरु–महान्–अत्यन्त तेजस्वी महान् कान्ति के धारक **(वर्य्य!)** हे प्रधान **(वामेश!)** हे इन्द्र अहमिन्द्र आदि प्रधान पुरुषों के स्वामी! **(यमेश!)** हे यमधारियों में प्रधान! **(उद्यत्सता)** महान् बड़े–बड़े पंडितों के द्वारा **(नु)** हे स्तुत नमस्कृत **(आर्य्यवरः)** आर्य्य पुरुषों में श्रेष्ठ प्रभुवर मुझे **(गुरु)** महान **(शं)** सुख **(एव)** ही **(तनुतात्)** प्रदान करो हे नेमिनाथ भगवान्! मुझे सुख प्रदान करो।

पार्श्व-जिन-स्तुतिः

जयतस्तव पार्श्वस्य श्रीमद्भर्तुः पदद्वयम्।
क्षयं दुस्तरपापस्य क्षमं कर्तुं ददज्जयम् ॥९९॥

अन्वयार्थ–(जयतः) कर्मशत्रुओं को जीतने वाले **(श्रीमत्भर्त्तुः)** लक्ष्मी के स्वामी **(तव)** तुझ **(पार्श्वस्य)** पार्श्वनाथ भगवान् के **(पदद्वयं)** दोनों चरण **(जयं)** जय को **(ददत्)** देने वाले **(दुस्तरपापस्य)** दुस्तर पापों का **(क्षयं)** क्षय **(कर्त्तुं)** करने में **(क्षमं)** समर्थ है।

तमोत्तु ममतातीत ममोत्तममतामृत।
ततामितमते तातमतातीतमृतेमित ॥१००॥

अन्वयार्थ—(ममतातीत!) हे ममता रहित! **(उत्तममतामृत!)** उत्तम स्याद्वादमय आगम रूपी अमृत वाले **(ततामितमते!)** विशाल और अपरिमित ज्ञान के धारक **(तातमत!)** सबके तात **(अतितमृते!)** हे मरण से रहित! **(अमित!)** अपरिमित गुणों के धारी पार्श्वनाथ भगवान्! आपके दोनों चरण कमल मुझे अविनाशी ज्ञान प्रदान करें **(मम)** मेरे **(तमः)** अज्ञान अन्धकार का **(अत्तु)** नाश करें।

स्वचित्तपटयालिख्य जिनं चारु भजत्ययम्।
शुचिरूपतया मुख्यमिनं पुरुनिजश्रियम् ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(अयं) ये संसारी प्राणी **(शुचिरूपतया)** अति शुद्ध भावों से वा अतिशुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के लिए **(पुरुनिजश्रियं)** महान् निज लक्ष्मी वाले **(मुख्यं)** प्रधान **(जिनं)** कर्मशत्रुओं को जीतने वाले **(इनं)** पार्श्वप्रभु को **(स्वचित्तपटे)** स्वकीय मानस पटल पर **(आलिख्य)** लिखकर **(चारु)** भली प्रकार से **(भजति)** आराधना करते हैं।

वर्धमान-जिन-स्तुतिः

धीमत्सुवन्द्यमान्याय कामोद्वामितवित्तृषे।
श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे ॥१०२॥

अन्वयार्थ—(धीमत्सुवन्द्यमान्याय) बुद्धिमानों के द्वारा वन्दनीय पूजनीय **(कामोद्वामित - वित्तृषे)** अत्यन्त रूप से निराकृत की है ज्ञान की तृष्णा को जिसने **(नमितविद्विषे)** झुकाया है शत्रुओं को चरणों में जिसने ऐसे **(श्रीमते)** लक्ष्मीवान् **(वर्धमानाय)** वर्द्धमान भगवान् के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

वामदेव क्षमाजेय धामोद्यमितविज्जुषे।
श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्वषे ॥१०३॥

अन्वयार्थ—(वामदेव!) चक्रवर्ती इन्द्र धरणेन्द्र आदि प्रधान पुरुषों के स्वामी! **(क्षमाजेय!)** क्षमागुण से अजेय अर्थात् अजेय क्षमागुण के धारी **(नमोन!)** आप लक्ष्मी से रहित नहीं हो **(धामोद्यमितविज्जुषे)** तेज से उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त अर्थात् उत्कृष्ट केवलज्ञान को प्राप्त **(मितविद्विषे)** परिमित ज्ञान की तृष्णा के विनाशक **(श्रीमते)** अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी के धारक नमोन! उत्कृष्ट श्री से सम्पन्न **(वर्द्धमानाय)** वर्द्धमान के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

समस्तवस्तुमानाय तमोघ्नेमितवित्विषे।
श्रीमतेवर्धमानाय नमोन मितविद्विषे ॥१०४॥

अन्वयार्थ–(श्रीमते) लक्ष्मीवान् वा–श्रीम! श्री–केवलज्ञानरूप लक्ष्मी का अनुभव करने वाले! **(नमोन)** ज्ञानरूपी लक्ष्मी से परिपूर्ण! **(समस्तवस्तुमानाय)** त्रिलोकस्थ समस्त वस्तु के ज्ञाता (जानने वाले) **(तमोघ्ने)** अज्ञान वा मोह रूप अन्धकार का नाश करने वाले **(अमित–वित्विषे)** अपरिमित एवं विशिष्ट कान्ति के धारक–सर्वांग सुन्दर शरीर वाले अथवा **(वित्विट्)** अपरिमित है केवलज्ञान जिसका **(अवर्धमानाय)** अविच्छिन्न केवलज्ञान से सम्पन्न **(नमोन!)** लोकत्रयरूप पृथ्वी से युक्त **(मितविद्विषे)** ज्ञान के द्वारा नष्ट कर दिये द्विट् शत्रु जिन्होंने अर्थात् अन्तरंग बहिरंग शत्रुओं के विनाशक **(ते)** तुझ वर्द्धमान भगवान् के लिए नमस्कार हो।

प्रज्ञायां तन्वृतं गत्वा स्वालोकं गोर्विदास्यते।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥१०५॥

अन्वयार्थ–(प्रज्ञायां) बुद्धि में **(तनु)** थोड़ी सी **(ऋतं)** सत्य को **(गत्वा)** जान करके **(स्वालोकं)** आत्मज्ञान को **(गो:)** सारी पृथ्वी का **(विदा)** ज्ञाता **(अस्यते)** जानते हैं परन्तु भगवन्! **(यज्ज्ञानान्तर्गतं)** जिसके ज्ञान के अन्तर्गत **(भूत्वा)** होकर **(त्रैलोक्यं)** तीन लोक **(गोष्पदायते)** गाय के खुर में स्थित जल के समान आचरण करते हैं।

को विदो भवतोपीड्य: सुरानतनुतान्तरम्।
शं सते साध्वसंसारं स्वमुद्यच्छन्नपीडितम् ॥१०६॥

अन्वयार्थ–(भवत:) आप से अन्य **(क:)** कौन **(ईट्)** स्वामी है सामर्थ्यशाली है **(य:)** जो **(सुरान्)** देवों को **(अपि)** भी **(विद:)** ज्ञान **(अतनुत)** दे सकता हो विस्तरित करता है **(सते)** सज्जनों के लिए **(आन्तरं)** आन्तरिक **(असंसारं)** संसाररहित **(अपीडितं)** अबाधित अविच्छिन्न **(स्वमुत्)** विनष्ट राग वाला **(साधु)** प्रशंसनीय **(शं)** सुख **(यच्छत्)** देता हो।

कोविदो भवतोपीड्य: सुरानत नुतान्तरम्।
शंसते साध्वसं सारं स्वमुद्यच्छन्नपीडितम् ॥१०७॥

अन्वयार्थ–(सुरानत) हे देवों के द्वारा पूजनीय प्रभो **(कोविद:)** ज्ञानी पंडितजन **(ईडितं)** पूजनीय प्रभु की **(अपि)** भी **(नुतान्तरं)** स्तुतिविशेष से **(शंसते)** स्तुति करते हैं पूजा करते हैं वह प्राणी **(साध्वसं)** शीघ्र ही **(सारं)** सारभूत **(स्वं)** अपनी आत्मा को **(उद्यच्छन्)** धारण करता हुआ अपने आपका अनुभव करता हुआ **(भवत:)** संसार से **(अपीड्य:)** पीड़ा रहित हो जाता है इसलिए भगवन् मैं महान् महान् स्तोत्र से आपकी स्तुति करता हूँ पूजा करता हूँ।

अभीत्यावर्द्ध मानेनः श्रेयोरुगुरुसंजयन्।
अभीत्या वर्धमानेन श्रेयोरुगुरु संजयन् ॥१०८॥

अन्वयार्थ—(वर्द्धमान!) हे वर्द्धमान भगवन्! **(इन!)** हे स्वामिन् **(ऋद्ध!)** हे ज्ञानादिगुणों से वृद्धि को प्राप्त **(अनेन!)** हे अपाप (पापरहित अवस्था को प्राप्त) **(श्रेय!)** हे परमपूज्य! **(उरुगुः)** आप दिव्य वाणी के धारक हैं **(अतः)** इसलिए **(अभीत्य)** मेरे चित्त में आकर **(अभीत्या)** दया करके **(जयन्)** कर्म शत्रुओं को जीतने वाले आप **(रुगुरु)** कान्ति में महान् **(श्रेयः)** सुख में **(संजयन्)** लीन प्रभो! **(मा)** मेरी **(अव)** रक्षा करो।

नानानन्तनुतान्त तान्तितनिनुन्नुन्नान्त नुन्नानृत,
नूतीनेन नितान्ततानितनुते नेतोन्नतानां ततः।
नुन्नातीतितनून्नतिं नितनुतान्नीतिं निनूतातनु—
न्तान्तानीतिततान्नुतानन नतान्नो नूतनैनोत्तु नो ॥१०९॥

अन्वयार्थ—(नानानन्तनुतान्त!) अनेक प्रकार के भव्य जीवों के द्वारा अप्रमित स्तुतियों से स्तुत है अनन्त धर्म जिसके ऐसे हे नाना अनन्त नुतान् प्रभो **(तान्तितनिनुत्!)** हे **(तान्तित)** दुःखों के **(निनुत्)** नाश करने वाले! **(नुन्नान्त!)** नष्ट हो गया है अन्त ऐसे अन्य का नाश करने वाले अर्थात् अविनाशी! **(नुन्नानृत!)** नष्ट कर दिया है अनृत (असत्य) को जिन्होंने—अर्थात् हे एकान्तवादरूप वस्तु के असत्य रूप के विनाशक! **(नूतीनेन)** नमस्कार करने वालों के स्वामी गणधरादि महापुरुषों के स्वामी! **(नितान्ततानितनुते!)** अति रूप से विस्तृत की गई है कीर्ति जिनकी—अर्थात् गणधरादि महापुरुषों ने जिसकी कीर्त्ति का विस्तार किया है उनके शासन का प्रचार कर जिनके उज्ज्वल यश को प्रस्तारित किया है उसका सम्बोधन है नितान्त तानितनुते! तुम **(उन्नतानां)** उन्नत गणधरादि महापुरुषों के **(नेता)** नायक हैं **(ततः)** इसलिए **(निनूत)** हे परम पूज्य! नूतानन! हे प्रशंसनीय मुख वाले वा स्तुत्य है मुख जिसका ऐसे हे भगवन् **(नून्नातीति तनून्नतिं)** जिससे शरीर की वृद्धि—शरीर की परम्परा का विनाश हो ऐसी **(अतनुं)** महान् **(नीतिं)** बुद्धि **(नितनुतात्)** वितरित करें देवें **(तान्तान्)** संसार दुःखों से दुःखी **(ईतिततान्)** मानसिक—शारीरिक व्याधियों से व्याप्त! **(नुतानन)** स्तुति को प्राप्त मुख **(नतान्)** आपके चरणों में झुके हुए **(नः)** हम संसारी प्राणियों के **(नूतनैनः)** नूतन पापों को **(अत्तु)** भक्षण करो—मेरे कर्मों के आस्त्रव को रोका और **(नो नितनुतात्)** पुरातन कर्मों का नाम न रहे।

वंदारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसिगोप्राभव ,
वर्द्धिष्णो विलसद्गुणार्णव जगन्निर्वाणहेतो शिव।

वंदीभूतसमस्तदेव वरद प्राज्ञैकदक्षस्तव,
वंदे त्वावनतो वरं भवभिदं वर्यैकवंद्याभव ॥११०॥

अन्वयार्थ–(वन्दारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसिगोप्राभव!) हे वन्दना करने वालों के प्रचुर संसार के भय का नाश करने वाली वाणी के प्रभाव वा माहात्म्य वाले **(विलसद्गुणार्णव!)** शोभायमान या प्रशंसनीय ज्ञानादि गुणों के समुद्र! **(जगन्निर्वाणहेतो!)** हे भव्य जीवों के निर्वाण के कारणभूत! अर्थात् हे परमात्मन्! **(वन्दीभूतसमस्तदेव!)** वन्दना करते हैं सारे जगत् के देव जिसकी– हे सारे संसारी प्राणियों के द्वारा वन्दनीय स्तुत्य! **(वरद!)** हे इष्ट वस्तु के दायक! **(वर्द्धिष्णो)** हे वर्द्धनशील! **(शिव!)** हे परम कल्याणकारी! **(प्राज्ञैकदक्षस्तव!)** श्रेष्ठ ज्ञानियों में प्रधान दक्ष (चतुर) पुरुषों के द्वारा स्तुत्य! **(वर्य!)** हे श्रेष्ठ! **(एकवंद्य!)** हे अद्वितीय वंदनीय **(अभव!)** हे संसार परिभ्रमण से रहित! भगवन्! **(भवभिदं)** भव (संसार) के छेदक **(वरं)** श्रेष्ठ **(त्वा)** तुमको **(अवनतः)** नतमस्तक होकर **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

नष्टाज्ञान मलोन शासनगुरो नम्रंजनं पानिन
नष्टग्लान सुमान पावन रिपूनप्यालुनन् भासन।
नत्येकेन रुजोन सज्जनपते नन्दन्ननन्तावन
नन्तृन् हानविहीनधामनयनो नः स्तात्पुनन् सज्जिन ॥१११॥

अन्वयार्थ–(नष्टाज्ञान!) हे अज्ञानहीन अर्थात् जिसके अज्ञान नष्ट हो गया है **(मलोन!)** हे कर्ममलहीन! **(शासनगुरो!)** अप्रतिहत स्याद्वादमय जैनशासन के स्वामी! **(इन!)** हे स्वामिन् **(नष्टग्लान!)** हे नष्टमूर्च्छादिभाव वाले! मूर्च्छादिक परिग्रह से रहित **(सुमान!)** हे प्रशंसनीय ज्ञान के धारक! **(पावन!)** हे परम पवित्र **(भासन!)** हे शोभमान प्रकाशमान! **(नत्येकेन!)** नमस्कार करने वाले का प्रधान (अद्वितीय) स्वामी **(रुजोन!)** हे रोगरहित प्रभो! **(सज्जनपते)** हे सज्जनों के अधिपति **(अनन्त!)** हे अविनाशी **(अवन!)** हे रक्षक! **(सज्जिन!)** हे शोभन जिन! **(नम्रं)** नमस्कार करने वाले **(जनं)** मानव जनों की–भव्य लोकों की **(पान्)** रक्षा करते हुए **(रिपून्)** आन्तरिक रागद्वेषादि शत्रुओं को **(अपि)** भी **(आलुनन्)** खण्डन करते हुए **(नेतृन्)** स्तुति करने वालों को **(नन्तृन्)** धन–धान्य ऋद्धि–सिद्धियों से सम्पन्न करते हुए **(नः)** मुझ समन्तभद्र को **(पुनन्)** पवित्र करते हुए आप **(हानविहीनधामनयनः)** क्षयरहित केवलज्ञान लोचन वाले आप **(स्तात्)** चिरकाल तक जयवन्त रहें।

रम्यापारगुणारजस्सुरवैररर्च्याक्षर श्रीधर
रत्यूनारतिदूर भासुर सुगीरर्य्योत्तरर्द्धीश्वर।

रक्तान् क्रूरकठोरदुर्द्धररुजोरक्षन् शरण्याजर
रक्षाधीर सुधीर विद्वर गुरो रक्तं चिरं मा स्थिर ॥११२॥

अन्वयार्थ–(रम्य!) हे रमणीय **(अपार गुण)** हे अनन्त गुणों के धारक **(अरजः)** हे ज्ञानावरणादि कर्मरज के समूह से रहित **(सुरवरैः)** इन्द्रों के द्वारा **(अर्च्य)** पूजनीय भगवन् **(अक्षर!)** हे अविनाशी **(श्रीधर!)** हे समवसरणरूप बहिरंग एवं अन्तरंग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी के धारक **(रत्यून)** हे रति रहित! **(अरतिदूर)** हे द्वेष से दूर रहने वाले **(भासुर)** हे देदीप्यमान **(सुगीः)** उत्तम वाणी के धारक **(अर्य!)** हे स्वामिन् **(उत्तरर्द्धीश्वर!)** उत्कृष्ट ऋद्धियों के स्वामी **(शरण्य!)** हे शरणदाता **(अजर)** हे जराहीन **(आधीर)** हे आधि–मानसिक पीड़ा के नाशक! **(सुधीर!)** अक्षोभ **(विद्वर!)** हे विद्वानों में श्रेष्ठ **(गुरो)** हे स्वामिन्! हे गुरुवर्य **(स्थिर!)** हे स्थिर–नित्य **(क्रूरकठोरदुर्द्धररजः)** क्रूर कठोर दुर्द्धर रोगों से पीड़ित **(रक्तान्)** भक्तों की **(रक्षन्)** रक्षा करते हुए भगवन् **(चिरं)** चिरकाल के स्नेही **(मा)** मुझ **(रक्तं)** भक्त (समन्तभद्र) की **(रक्ष)** रक्षा करो।

प्रज्ञा सा स्मरतीति या तव शिरस्तद्यन्नतं ते पदे
जन्मादः सफलं परं भवभिदी यत्राश्रिते ते पदे।
मांगल्यं च स यो रतस्तव मते गीः सैव या त्वा स्तुते
ते ज्ञा ये प्रणता जनाः क्रमयुगे देवाधिदेवस्य ते ॥११३॥

अन्वयार्थ–प्रभो **(प्रभा)** बुद्धि **(सा)** वही है **(या)** जो **(इति)** अतिशय रूप से **(तव)** तेरा **(स्मरति)** स्मरण करती है यहाँ स्मरण धातु के साथ द्वितीया विभक्ति में षष्ठी का प्रयोग है ''स्मृत्यर्थदयेशां कर्मणीति ता भवति'' **(शिरः)** मस्तक **(तत्)** वह **(एव)** ही है **(यत्)** जो **(ते)** तेरे **(पदे)** चरणयुगल में **(नतं)** नत है आपके चरणों में झुकता है **(अदः)** वह **(एव)** ही **(जन्म)** जन्म **(परं)** श्रेष्ठ और **(सफलं)** सफल है **(यत्र)** जिस जन्म में **(भवभिदी)** भव को नाश करने वाले **(ते)** तेरे **(पदे)** पद में **(आश्रिते)** आश्रित है **(च)** और **(सः)** वही मानव **(मांगल्यं)** परम पवित्र है **(यः)** जो **(तव)** तेरे **(मते)** मत में **(रतः)** लीन है **(सा)** वह **(एव)** ही **(गीः)** वाणी है **(या)** जो **(त्वा)** तेरी **(स्तुते)** स्तुति करते हैं **(ते)** वे **(जनाः)** मानव **(ज्ञाः)** पंडित–ज्ञानी हैं **(ये)** जो **(ते)** तुझ **(देवाधिदेवस्य)** देवाधिदेव के **(क्रमयुगे)** चरण युगल में **(प्रणताः)** झुके रहते हैं तेरे चरणों में प्रकर्षरूप से रतः लीन हैं।

सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्च्चनं चापि ते
हस्तावंजलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि संप्रेक्षते।

सुस्तुत्यां व्यसनं शिरो नतिपरं सेवेदृशी येन ते,
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती तेनैव तेजःपते ॥११४॥

अन्वयार्थ–(तेजःपते!) हे केवलज्ञानरूपी तेज के अधिपति! **(मम)** मेरी **(सुश्रद्धा)** रुचि आस्था **(ते)** तेरे **(मते)** मन में (तेरे द्वारा कथित जिनधर्म में) है **(स्मृतिः)** मेरे मन में स्मरण (चिन्तन) **(अपि)** भी **(त्वयि)** आप में ही है **(अर्चनं)** पूजन भी **(त्वयि)** आप में मैं पूजा भी निरन्तर आपकी ही करता हूँ **(च अपि)** और **(मम)** मेरे **(हस्तौ)** दोनों हाथ **(ते)** तेरे **(अञ्जलये)** अंजुलि के लिए है, तुझको जोड़ने के लिए है **(कर्णाः)** मेरे कान **(तव)** आपकी **(कथाश्रुतिरतः)** कथा को सुनने के लिए रत है **(मम)** मेरे **(अक्षि)** आँख (नेत्र) **(त्वयि)** तुझको **(संप्रेक्षते)** देखने में लीन है **(मम)** मेरा **(व्यसनं)** मन की तत्परता–लीनता **(ते)** आपकी **(सुस्तुत्यां)** स्तुति में **(मम)** मेरा **(शिरः)** मस्तक **(नतिपरं)** नति में तत्पर है तुझको नमस्कार में तत्पर है **(ते)** तेरी **(ईदृशी)** ऐसी **(सेवा)** सेवा है **(येन)** जिससे **(अहं)** मैं **(एव)** ही **(तेजस्वी)** तेजस्वी हूँ **(सुजनः)** सुजन हूँ **(तेन)** इसलिए **(अहं)** मैं **(एव)** ही **(सुकृती)** पुण्यवान हूँ।

जन्मारण्यशिखी स्तवः स्मृतिरपि क्लेशाम्बुधेर्नौः पदे।
भक्तानां परमौ निधी प्रतिकृतिः सर्वार्थसिद्धिः परा।
वन्दीभूतवतोपि नोन्नतिहतिर्नन्तुश्च येषां मुदा।
दातारो जयिनो भवन्तु वरदा देवेश्वरास्ते सदा ॥११५॥

अन्वयार्थ–(येषां) जिन महापुरुषों का **(स्तवः)** स्तवन **(जन्मारण्यशिखी)** जन्म संसाररूपी अटवी को भस्म करने के लिए अग्नि के समान है **(स्मृतिः)** उनका स्मरण **(अपि)** भी **(क्लेशाम्बुधेः)** क्लेशरूपी समुद्र को पार करने के लिए **(नौः)** नौका के समान है **(पदे)** उनके दोनों चरण **(भक्तानां)** रत (लीन) भक्तों के लिए **(परमौ)** परम उत्कृष्ट **(निधी)** खजाना **(च)** और उनकी **(प्रतिकृतिः)** प्रतिबिम्ब **(परा)** उत्कृष्ट **(सर्वार्थसिद्धिः)** सर्वकार्यों की सिद्धि करने वाली है जिन्हें **(मुदा)** हर्षपूर्वक **(नन्तुः)** नमस्कार करने वाले **(वन्दीभूतवतः)** नग्नाचार्य रूप से मंगल पाठ करने वाले मुझ समन्तभद्र की **(अपि)** भी **(उन्नतिहतिः)** उन्नति की हति में कारण **(न)** नहीं **(ते)** वे **(देवेश्वरा)** देवों के देव वीतराग प्रभु **(दातारः)** दानशील अक्षय निधि को देने वाले **(जयिनः)** स्वकीय विभाव भावों पर विजय प्राप्त करने वाले **(सदा)** निरन्तर **(वरदाः)** सर्व प्राणियों के मनोरथ पूर्ण करने वाले–इच्छित फल को देने वाले **(भवन्तु)** होवें।

गत्वैकस्तुतमेव वासमधुना तं येच्युतं स्वीशते,
यन्नत्यैति सुशर्म पूर्णमधिकां शान्तिं व्रजित्वाध्वना।

यद्भक्त्या शमिताकृशाघमरुजं तिष्ठेज्जनः स्वालये-
ये सद्भोगकदायतीव यजते ते मे जिनाः सुश्रिये ॥११६॥

अन्वयार्थ–(ये) जो **(अधुना)** इस समय **(एकस्तुतं)** परम पूज्य **(अच्युतं)** अविनाशी **(तं)** उस **(वासं)** मोक्षस्थान को **(एव)** ही **(गत्वा)** प्राप्त करके **(स्वीशते)** परम ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं कर रहे हैं **(यन्नत्या)** जिसको नमस्कार करने से **(पूर्णं)** पूर्णरूप से **(सुशर्म)** अनन्त सुख को **(एति)** प्राप्त होता है **(यद्भक्त्या)** जिसकी भक्ति से यह आत्मा **(अधिकां)** अधिक **(शांतिं)** शांति को **(व्रजित्वा)** प्राप्त होकर **(अध्वना)** सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप मार्ग से **(जनः)** संसारी प्राणी **(यद् भक्त्या)** जिनकी भक्ति से **(शमिताकृशाघं)** पापों का नाशकर कृशकर **(अरुजं)** रोगरहित होकर **(स्वालये)** अपने स्थान में **(तिष्ठेत्)** रहते हैं **(ये)** जो **(यजते)** अपने पूजक भक्तों के लिए **(अतीव)** अति उत्कृष्ट **(सद्भोगकदाः)** समीचीन भोगों–सांसारिक सुखों को देने वाले हैं **(ते)** वे **(जिनाः)** अरिहंत परमेष्ठी **(मे)** मुझ समन्तभद्र के लिए **(सुश्रिये)** शोभन लक्ष्मी (मोक्षलक्ष्मी) के लिए (भवन्तु) होवें 'भवन्तु' क्रिया का यहाँ अध्याहार किया गया है व्याकरण में 'अस्' और 'भू' धातु की क्रिया का अध्याहार किया जाता है, ऊपर से ग्रहण किया जाता है।

❑ ❑ ❑

देवागमस्तोत्र–आप्तमीमांसा

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

अन्वयार्थ–(देवागम-नभोयान-चामरादि-विभूतयः) देवों का आगमन आकाश में गमन चँवर आदि विभूतियाँ **(मायाविषु)** मायावियों में **(अपि)** भी **(दृश्यन्ते)** देखी जाती हैं **(अतः)** इसलिये **(त्वं)** आप **(नो)** हमारे लिये **(महान्)** पूज्य **(न)** नहीं **(असि)** हो।

भावार्थ–हे भगवन्! देवों का आगमन, आकाश में गमनादि और चँवर आदि विभूतियाँ आप में पायी जाती हैं, इस कारण आप हमारे स्तुति करने योग्य नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ये विभूतियाँ तो मायावी पुरुषों में भी देखी जाती हैं।

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः॥२॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! आपमें जो **(एषः)** यह **(विग्रहादि महोदयः)** शरीर आदि का अतिशय **(अध्यात्मं)** अन्तरंग और **(बहिः)** बहिरंग **(अपि)** भी **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(दिव्यः)** दिव्य–मनोहर **(सत्यः)** सत्य–वास्तविक है, किन्तु वह **(रागादिमत्सु)** रागादि युक्त **(दिवौकस्सु)** देवों में **(अपि)** भी है।

भावार्थ–हे भगवन्! आप में शरीर आदि का जो अंतरंग और बहिरंग अतिशय पाया जाता है। वह यद्यपि दिव्य और सत्य है, किन्तु रागादियुक्त देवों में भी उक्त प्रकार का अतिशय पाया जाता है अतः उक्त कारणों से भी आप स्तुत्य नहीं हो सकते हैं।

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः ॥३॥

अन्वयार्थ–(तीर्थकृत्समयानां) तीर्थ प्रवर्तकों में–तीर्थंकरों में **(च)** और आगमों में **(परस्परविरोधतः)** आपस में विरोध होने से **(सर्वेषां)** सभी के यहाँ **(आप्तता)** सर्वज्ञता **(नास्ति)** नहीं है **(कश्चिदेव)** कोई एक ही **(गुरुः)** गुरु **(भवेत्)** हो सकता है।

भावार्थ–अपने–अपने तीर्थों का प्रवर्तन करने वाले कपिल, सुगत आदि तीर्थंकरों में और आगमों में परस्पर विरोध पाये जाने से सभी तीर्थंकरों में आप्तत्व संभव नहीं है। अतः उनमें से कोई एक ही गुरु–आप्त हो सकता है।

दोषावरणयोर्हानि - र्निश्शेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय: ॥४॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(स्वहेतुभ्य:)** अपने कारणों से **(बहि:)** बहिरंग मल **(अन्त:)** अंतरंग **(मलक्षय:)** मल का नाश हो जाता है **(तथा)** उसी प्रकार **(क्वचित्)** किसी पुरुष विशेष में **(अतिशायनात्)** अतिशायन होने से **(दोषावरणयो:)** दोष और आवरणों का **(निश्शेषा)** पूर्ण रूप से **(हानि:)** अभाव (**अस्ति)** है।

भावार्थ—किसी पुरुष विशेष में दोष और आवरण की पूर्ण हानि हो जाती है क्योंकि दोष और आवरण की हानि में अतिशय देखा जाता है। जैसे खान से निकाले हुए सोने में कीट आदि बहिरंगमल और कालिमा आदि अंतरंग मल रहता है, किन्तु अग्नि में पुटपाक आदि हेतुओं के द्वारा सुवर्ण में दोनों प्रकार के मलों का अत्यंत नाश हो जाता है।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्था: प्रत्यक्षा: कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थिति: ॥५॥

अन्वयार्थ—(अनुमेयत्वत:) अनुमेय होने से/अनुमान का विषय होने से **(सूक्ष्मान्तरितदूरार्था:)** सूक्ष्म, अंतरित एवं दूरवर्ती पदार्थ **(कस्यचिद्)** किसी के **(प्रत्यक्षा:)** प्रत्यक्ष है **(यथा)** जैसे **(अग्न्यादि:)** अग्नि आदि **(इति)** इस प्रकार **(सर्वज्ञसंस्थिति:)** सर्वज्ञ की भले प्रकार से सिद्धि होती है।

भावार्थ—देश, काल और स्वभाव से विप्रकृष्ट पदार्थ किसी न किसी के प्रत्यक्ष होते हैं, क्योंकि उनको हम अनुमान से जानते हैं। जो पदार्थ अनुमान से जाने जाते हैं, उन्हें कोई न कोई प्रत्यक्ष भी जानता है जैसे अग्नि आदि, इस प्रकार धर्मादि समस्त पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ की सिद्धि होती है।

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥६॥

अन्वयार्थ—(**स:)** वह (**निर्दोष:)** निर्दोष **(एव त्वं)** आप ही **(असि)** हो, क्योंकि **(युक्ति - शास्त्राविरोधिवाक्)** युक्ति और शास्त्र से आपके वचन विरोध रहित हैं **(अविरोध:)** अविरोध का कारण यह है कि **(यत्)** जो **(ते)** आपका **(इष्टं)** इष्ट है, वह **(प्रसिद्धेन)** प्रत्यक्ष से **(न बाध्यते)** बाधित-खंडित नहीं होता है।

भावार्थ—हे भगवान्! पहले जिसे सामान्य से वीतराग तथा सर्वज्ञ सिद्ध किया गया है, वह आप (अर्हन्त) ही हैं। आपके निर्दोषपने में प्रमाण यह है कि आपके वचन युक्ति और आगम से

अविरोधी हैं। अविरोध का कारण यह है कि आपके इष्ट तत्त्व मोक्षादि में किसी प्रमाण से बाधा नहीं है।

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम् ।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥७॥

अन्वयार्थ—(त्वन्मतामृतबाह्यानां) आपके मतरूपी अमृत से बहिर्भूत **(सर्वथैकान्त-वादिनाम्)** सर्वथा एकान्तवादी **(आप्ताभिमानदग्धानां)** जो आप्तपने के अभिमान से जल रहे हैं **(स्वेष्टं)** उनका अपना इष्टतत्त्व **(दृष्टेन)** प्रत्यक्ष से **(बाध्यते)** बाधित है।

भावार्थ—जिन्होंने आपके मतरूपी अमृत का स्वाद नहीं लिया है, जो सर्वथा एकान्तवादी हैं और हम आप्त हैं जो इस प्रकार के अभिमान से जल रहे हैं उनका जो इष्ट तत्त्व है, उसमें प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधा आती है।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥८॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे नाथ **(स्वपरवैरिषु एकान्तग्रहरक्तेषु)** स्व और पर के शत्रु ऐसे एकान्त वादियों के यहाँ पर **(कुशलाकुशलं कर्म)** शुभ-अशुभ कर्म **(च)** और **(परलोकः)** पर लोक आदि **(क्वचित्)** कुछ भी **(न)** सिद्ध नहीं होता है।

भावार्थ—हे भगवान्, जो वस्तु के अनंत धर्मों में से किसी एक ही धर्म को मानते हैं ऐसे एकान्तग्रह रक्त नर अपने भी शत्रु हैं और दूसरे के भी शत्रु हैं। उनके यहाँ पुण्यकर्म एवं पापकर्म तथा परलोक आदि कुछ भी नहीं बन सकता है।

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात् ।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥९॥

अन्वयार्थ— (अतावकं) जो आपको नहीं मानते हैं उनके यहाँ पर **(पदार्थानां)** पदार्थों का **(भावैकान्ते)** एकान्त से अस्तित्व है ऐसा स्वीकार करने पर **(अभावानां)** चारों प्रकार के अभावों का **(अपह्नवात्)** लोप हो जाने से वस्तु तत्त्व **(सर्वात्मकम्)** सब रूप **(अनादि)** अनादि **(अन्तं)** अनंत **(अस्वरूपं)** स्वरूप रहित हो जायेगा।

भावार्थ—हे भगवन्! आपसे भिन्न मतावलम्बियों के यहाँ, सभी पदार्थों का सद्भाव ही है, ऐसा भावैकान्त मानने पर पदार्थों के अन्योन्याभाव आदि चार प्रकार के अभाव का निराकरण होने से सब पदार्थ सब रूप हो जायेंगे। इसी प्रकार सब पदार्थ अनादि, अनंत और स्वरूप रहित भी हो जायेंगे।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे॥
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(प्रागभावस्य) प्राग् अभाव के **(निह्नवे)** लोप करने पर **(कार्यद्रव्यं)** कार्य द्रव्य **(अनादि स्यात्)** अनादि हो जावेगा **(च)** और **(प्रध्वंसस्य)** प्रध्वंस **(धर्मस्य)** धर्म के **(प्रच्यवे)** अभाव मानने पर **(अनन्ततां)** अनन्तपने को **(व्रजेत्)** प्राप्त होगा।

भावार्थ–प्रागभाव के निराकरण करने पर घट आदि कार्य रूप द्रव्य अनादि हो जायेगा और प्रध्वंसाभाव के निराकरण करने पर कार्य द्रव्य अनन्तता को अर्थात् शाश्वतपने को प्राप्त होगा।

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा ॥११॥

अन्वयार्थ–(अन्यापोह व्यतिक्रमे) अन्योन्याभाव का लोप करने पर **(तदेकं)** वह एक इष्ट तत्त्व **(सर्वात्मकं स्यात्)** सब रूप हो जायेगा और **(अन्यत्र समवाये)** अत्यन्ताभाव के नहीं मानने पर **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(व्यपदिश्येत न)** व्यपदेश नहीं हो सकेगा।

भावार्थ–अन्यापोह के व्यतिक्रम करने पर अर्थात् अन्योन्याभाव के नहीं मानने पर किसी का जो एक इष्ट तत्त्व है वह सब रूप हो जायेगा तथा अन्यन्ताभाव के अभाव में किसी भी इष्ट तत्त्व का किसी प्रकार से व्यपदेश नहीं हो सकेगा।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम् ।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥१२॥

अन्वयार्थ–(भावापह्नववादिनाम्) भाव अर्थात् पदार्थ का सर्वथा लोप करने वालों के यहाँ **(अभावैकान्तपक्षेऽपि)** अभाव एकान्त के पक्ष को स्वीकार करने पर भी **(बोधवाक्यं)** ज्ञान और वचन **(प्रमाणं)** प्रमाण **(न)** नहीं होगे तब **(केन)** किससे **(साधनदूषणं)** साधन और दूषण दिया जा सकता है।

भावार्थ–भाव का लोप करने वाले अभावैकान्तवादियों के मत में भी इष्टतत्त्व की सिद्धि नहीं हो सकती है। वहाँ न बोध प्रमाण है और न वाक्य तथा प्रमाण के अभाव में स्वमत की सिद्धि और परमत का खंडन किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्यमिति युज्यते ॥१३॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(उभयैकात्म्यं)** उभय का एकान्त अर्थात् सर्वथा भावाभाव **(न)** नहीं बनता **(विरोधात्)** विरोध होने से

(अवाच्यतैकान्तेऽपि) अवक्तव्यता का एकान्त स्वीकार करने पर भी **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इति)** इस प्राकर **(उक्तिः)** कथन **(न युज्यते)** किया नहीं जा सकता।

भावार्थ—स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ भाव और अभाव का निरपेक्ष अस्तित्व नहीं बन सकता है, क्योंकि दोनों के सर्वथा एकात्म्य मानने में विरोध आता है। अवाच्यतैकान्त भी नहीं बन सकता है, क्योंकि अवाच्यतैकान्त में भी यह अवाच्य है ऐसे वाक्य का प्रयोग नहीं बन सकता।

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥

अन्वयार्थ—**(ते)** हे नाथ आपका **(तत्)** वह वस्तु तत्त्व **(कथंचित्)** किसी अपेक्षा से **(सत्)** सत् **(एव)** ही है **(कथंचित्)** किसी अपेक्षा से **(असदेव)** असत् ही है **(तथा)** इसी प्रकार **(उभयं)** उभय अर्थात् सत् असत् **(अवाच्यं च)** और अवक्तव्य भी **(इष्टं)** इष्ट है **(नययोगात्)** नय विवक्षा से **(न सर्वथा)** सर्वथा नहीं अर्थात् एकान्त से नहीं।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव! आपके अनेकान्त शासन में वस्तु कथंचित सत् ही है, कथंचित् असत् ही है। इसी प्रकार अपेक्षा भेद से वस्तु उभयरूप भी है और अवाच्य भी है। नय की अपेक्षा से ये सब रूप बन जाते हैं। सर्वथा अर्थात् एकान्तवाद में नहीं बनते।

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥

अन्वयार्थ—**(स्वरूपादिचतुष्टयात्)** स्वरूपादि चतुष्टय से **(सर्वं)** समस्त वस्तु **(सदेव)** सत् ही और **(विपर्यासात्)** पररूपादि चतुष्टय से **(असदेव)** असत् ही **(कः)** कौन **(न इच्छेत्)** स्वीकार नहीं करेगा **(न चेत्)** यदि स्वीकार नहीं करता है तो **(न व्यवतिष्ठते)** व्यवस्था नहीं बनती है।

भावार्थ—स्वरूपादि चतुष्टय की अपेक्षा से सब पदार्थों को सत् कौन नहीं मानेगा? और पररूपादि चतुष्टय की अपेक्षा से असत् कौन नहीं मानेगा? यदि ऐसा कोई नहीं मानता है तो वस्तु की सही व्यवस्था नहीं बनेगी।

क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः ॥१६॥

अन्वयार्थ—**(क्रमार्पितद्वयात्)** दोनों धर्मों की क्रम से विवक्षा होने से वस्तु **(द्वैतं)** द्वैत अर्थात् उभयरूप है **(सह)** एक साथ **(अशक्तितः)** दोनों धर्मों के कहने की शक्ति न होने से **(अवाच्यं)**

अवक्तव्य है **(अवक्तव्योत्तरा:)** अवक्तव्य है उत्तर में जिसके ऐसे **(शेषा:)** शेष **(त्रयो)**तीन **(भङ्गा:)** भंग **(स्वहेतुत:)** अपने-अपने कारणों से बन जाते हैं।

भावार्थ—दोनों धर्मों की क्रम से विवक्षा होने से वस्तु उभयरूप है और एक साथ विवक्षा होने से कह न सकने से वस्तु अवाच्य है। इसी प्रकार स्यादस्ति अवक्तव्य आदि तीन भंग भी अपने-अपने कारणों से बन जाते हैं।

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक - धर्मिणि।
विशेषणत्वात्साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥१७॥

अन्वयार्थ-(यथा) जैसे **(साधर्म्यं)** साधर्म्य **(भेदविवक्षया)** भेद विवक्षा-वैधर्म्य के साथ अविनाभाव को लिए रहता है, उसी प्रकार **(विशेषण-त्वात्)** विशेषण होने से **(एकधर्मिणि)** एक धर्मी में **(अस्तित्वं)** अस्तित्व धर्म **(प्रतिषेध्येन)** प्रतिषेध्य के साथ अर्थात् नास्तित्व के साथ **(अविनाभावी)** अविनाभाव सम्बन्ध को लिए है।

भावार्थ—एक धर्मी में अस्तित्व धर्म अपने नास्तित्व धर्म के साथ अविनाभावी है, क्योंकि वह विशेषण है। जैसे-हेतु में विशेषण होने से साधर्म्य वैधर्म्य का अविनाभावी होता है।

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥१८॥

अन्वयार्थ—(विशेषणत्वात्) विशेषण होने से **(नास्तित्वं)** नास्तित्व **(एकधर्मिणि)** एक धर्मी में **(प्रतिषेध्येन)** अस्तित्व के साथ **(अविनाभावी)** अविनाभाव सम्बन्ध को लिए है। **(यथा)** जैसे **(वैधर्म्यं)** वैधर्म्य **(अभेदविवक्षया)** अभेद विवक्षा-साधर्म्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखता है।

भावार्थ—एक धर्मी में नास्तित्व धर्म अपने प्रतिषेध्य अस्तित्व धर्म के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखता है, क्योंकि वह विशेषण है। जैसे-हेतु में वैधर्म्य साधर्म्य का अविनाभावी है।

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचर:।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥१९॥

अन्वयार्थ-(शब्दगोचर:) शब्द का विषय **(विशेष्य:)** विशेष्य **(विधेयप्रतिषेध्यत्मा)** विधि एवं निषेधरूप है **(यथा)** जैसे **(साध्यधर्मो)** साध्य का धर्म **(अपेक्षया)** अपेक्षा से **(हेतु:)** हेतु **(अहेतुश्च)** और अहेतु **(अपि)** भी है।

भावार्थ—शब्द का विषय होने से विशेष्य विधि और निषेध रूप होता है। जैसे साध्य का धर्म अपेक्षा भेद से हेतु और अहेतु रूप होता है।

शेषभङ्गाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः।
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र तव शासने ॥२०॥

अन्वयार्थ–(यथोक्तनययोगतः) यथोक्त नय की विवक्षा से **(शेषभङ्गाश्च)** शेष भंग भी **(नेतव्या)** जान लेना चाहिए **(मुनीन्द्र)** हे नाथ **(तव शासने)** आपके अनेकान्त रूप शासन में **(कश्चिद्)** किसी भी प्रकार का **(विरोधः)** विरोध **(नास्ति)** नहीं है।

भावार्थ–अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्ति-नास्ति अवक्तव्य ये जो शेष भंग है, वह यथोक्त नय के अनुसार लगा लेना चाहिए। हे भगवन् आपके शासन में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है।

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत् ।
नेति चेन्न यथाकार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः ॥२१॥

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार **(विधिनिषेधाभ्यां)** विधि और निषेध के द्वारा जो वस्तु **(अनवस्थितं)** अवस्थित नहीं है, वह **(अर्थकृत् न)** अर्थक्रियाकारी नहीं है **(चेत्)** यदि **(इति)** इस प्रकार नहीं माना जाये तो **(यथा)** जैसे **(कार्यं)** कार्य **(बहिरन्तरुपाधिभिः)** बहिरंग और अंतरंग कारणों के द्वारा **(न)** नहीं होगा।

भावार्थ–इस प्रकार विधि और निषेध के द्वारा जो वस्तु अवस्थित नहीं है, वह अर्थक्रियाकारी भी नहीं होती है। यदि ऐसा नहीं माना जाए तो बाह्य और अंतरंग कारणों से कार्य का निष्पन्न होना जो माना गया है, वह नहीं बनेगा।

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्मणः।
अङ्गित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता ॥२२॥

अन्वयार्थ–(अनन्तधर्मणः) अनंत धर्म से युक्त **(धर्मिणः)** धर्मी के **(धर्मे धर्मे)** प्रत्येक धर्म **(अर्थः)** अर्थ **(अन्य एव)** भिन्न ही है **(अन्यतम अन्तस्य)** किसी एक धर्म के **(अंगित्वे)** अंगी-प्रधान होने पर **(शेषान्तानां)** शेष धर्म **(तदङ्गता)** उस समय अंगता-गौण हो जाते हैं।

भावार्थ–अनंत धर्म वाले धर्मी के प्रत्येक धर्म का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है और एक धर्म के प्रधान होने पर शेष धर्मों की प्रतीति गौण रूप से होती है।

एकानेकविकल्पादावुत्तरत्राऽपि योजयेत् ।
प्रक्रियां भङ्गिनीमेनां नयैर्नयविशारदः ॥२३॥

अन्वयार्थ–(नयविशारदः) नयों की योजना लगाने में कुशल को **(उत्तरत्र)** उत्तरवर्ती **(एकानेक-विकल्पादौ)** एक अनेक आदि धर्मों में **(अपि)** भी **(नयैः)** नयों के साथ **(एनां)** इस **(भंगिनीम्)**

सप्तभंगी **(प्रक्रियां)** प्रक्रिया को **(योजयेत्)** लगा लेना चाहिये।

भावार्थ—नय विशारदों को एक अनेक आदि धर्मों में भी सप्तभंग वाली उक्त प्रक्रिया की नय के अनुसार योजना कर लेना चाहिए।

॥ इति प्रथम परिच्छेद ॥

अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि) अद्वैत एकान्त के पक्ष में भी **(कारकाणां)** कारकों का **(क्रियायाश्च)** और क्रियाओं का **(दृष्टो)** प्रत्यक्ष सिद्ध **(भेदो)** भेद **(विरुध्यते)** विरोध रूप दिखाई देता है **(एकं)** जो एक रूप होता है **(स्वस्मात्)** अपने से **(न जायते)** उत्पन्न नहीं होता है।

भावार्थ—अद्वैतैकान्त पक्ष में भी कारकों और क्रियाओं में जो प्रत्यक्ष सिद्ध भेद है, उसमें विरोध आता है, क्योंकि एक वस्तु स्वयं अपने से ही उत्पन्न नहीं हो सकती है।

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्याऽविद्याद्वयं न स्यात् बन्धमोक्षद्वयं तथा ॥२५॥

अन्वयार्थ—अद्वैतैकान्त पक्ष में **(कर्मद्वैतं)** दो कर्म **(फलद्वैतं)** दो फल **(च)** और **(लोकद्वैतं)** दो लोक **(नो भवेत्)** नहीं बनते है **(तथा)** उसी प्रकार **(विद्याविद्याद्वयं)** विद्या और अविद्या ये दोनों **(बन्धमोक्ष-द्वयं)** बंध और मोक्ष ये दोनों **(न स्यात्)** नहीं बनेंगे।

भावार्थ—अद्वैतैकान्त पक्ष में शुभ-अशुभ कर्म, पुण्य-पापरूप फल, इहलोक-परलोक, ज्ञान-अज्ञान तथा बन्ध-मोक्ष इनमें से एक का भी द्वैत सिद्ध नहीं होता।

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चैद्द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि **(हेतोः)** हेतु से **(अद्वैतसिद्धिः)** अद्वैत की अर्थात् एकत्व की सिद्धि मानी जाये तो **(हेतुसाध्ययोः)** हेतु और साध्य का **(द्वैतं स्यात्)** द्वैत सिद्ध होता है **(चेत्)** यदि **(हेतुना विना)** हेतु के बिना **(सिद्धिः)** सिद्धि मानी जाये तो **(वाङ्मात्रतः)** वचन मात्र से अर्थात् कथन मात्र से **(द्वैतं)** द्वैत **(किम् न)** क्यों नहीं होगा अर्थात् द्वैत की सिद्धि हो जायेगी।

भावार्थ—यदि हेतु से अद्वैत की सिद्धि मानी जाये तो हेतु और साध्य का द्वैत सिद्ध होता है। हेतु के बिना अद्वैत की सिद्धि मानी जाये तो वचन मात्र से द्वैत की सिद्धि ही क्यों न मान ली जाये।

अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
सञ्ज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(हेतुना) हेतु के बिना **(अहेतुः)** अहेतु के **(इव)** समान **(द्वैतात् विना)** द्वैत के बिना **(अद्वैतं न)** अद्वैत नहीं बनता है **(प्रतिषेध्यात् ऋते)** प्रतिषेध्य के बिना **(क्वचित्)** कहीं पर भी **(संज्ञिनः)** संज्ञी का **(प्रतिषेधः)** प्रतिषेध **(न)** नहीं होगा।

भावार्थ–द्वैत के बिना अद्वैत नहीं होता है, जैसे हेतु के बिना अहेतु नहीं होता है, क्योंकि किसी नाम वाली वस्तु का निषेध निषिध्य वस्तु के बिना कहीं भी नहीं होता।

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौगुणः ॥२८॥

अन्वयार्थ–(पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि) पृथक्त्वैकान्त पक्ष में **(पृथक्त्वात्)** पृथक्त्व गुण से **(तौ)** दोनों द्रव्य, गुण आदि यदि **(अपृथक्)** अपृथक् हैं **(तु)** तो (स्वमत से विरोध होता है और) **(स्यात्)** यदि **(पृथक्त्वे)** द्रव्यादि पृथक्त्व गुण से पृथक् हैं तो **(पृथक्त्वं न)** पृथक्त्व गुण नहीं हो सकता है **(हि)** क्योंकि **(असौगुणः)** पृथक्त्व गुण **(अनेकस्थो)** अनेक पदार्थों में रहता है।

भावार्थ–पृथक्त्वैकान्त पक्ष में पृथक्त्व गुण से द्रव्य, गुण आदि यदि अपृथक् हैं तो स्वमत से विरोध होता है और यदि द्रव्यादि पृथक्त्व गुण से पृथक् हैं तो पृथक्त्व गुण ही नहीं हो सकता है, क्योंकि पृथक्त्व गुण अनेक पदार्थों में रहता है।

सन्तानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिह्नवे ॥२९॥

अन्वयार्थ–(एकत्वनिह्नवे) एकत्व का लोप करने पर **(निरङ्कुशः)** बाधाओं से रहित **(संतानः)** संतान **(समुदायश्च)** और समुदाय **(साध्यर्म्यं)** साधर्म्य **(च)**और **(प्रेत्यभावश्च)** परलोकादि **(तत्सर्वं)** ये सब **(न स्यात्)** नहीं हो सकते।

भावार्थ–यदि एकत्व का सर्वथा लोप किया जाए तो जो संतान, समुदाय और साधर्म्य तथा प्रेत्यभाव आदि जो निर्बाधरूप से माने गए हैं वे सब नहीं बनेंगे अर्थात् उन सभी का अभाव हो जायेगा।

सदात्मना च भिन्नं चेत् ज्ञानं ज्ञेयाद्द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥३०॥

अन्वयार्थ–(सदात्मना) सत्स्वरूप की अपेक्षा से **(ज्ञानं)** ज्ञान को **(चेत्)** यदि **(ज्ञेयात्)** ज्ञेय से **(भिन्नं)** भिन्न माना जाये तो **(द्विधा च)** ज्ञान और ज्ञेय दोनों **(अपि)** भी **(असत्)** अवस्तु हो जायेंगे **(ते)** हे नाथ आपसे **(द्विषाम्)** द्वेष रखने वालों के यहाँ **(ज्ञानाभावे)** ज्ञान के अभाव में **(बहिरन्तश्च)** बहिरंग और अंतरंग **(ज्ञेयं)** ज्ञेय **(कथं)** कैसे बनेगा?

भावार्थ—यदि सत् स्वरूप से भी ज्ञान को ज्ञेय से पृथक् माना जाए तो ज्ञान और ज्ञेय दोनों का अभाव हो जायेगा क्योंकि ज्ञान के अभाव में बाह्य तथा अंतरंग किसी भी ज्ञेय का अस्तित्व आपसे द्वेष रखने वालों के यहाँ कैसे बन सकता है ?

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः ॥३१॥

अन्वयार्थ–**(अन्येषां)** दूसरों के यहाँ **(गिरः)** वचन–शब्द **(सामान्यार्थाः)** सामान्य को ही विषय करते हैं, उन वचनों के द्वारा **(विशेषः)** विशेष **(न)** नहीं **(अभिलप्यते)** कहा जाता है **(तेषां)** उनके यहाँ से **(सामान्याभावतः)** सामान्य का अभाव होने से **(सकलाः)** सभी **(गिरः)** वचन **(मृषा एव)** असत्य ही होंगे।

भावार्थ—दूसरों के यहाँ वचन सामान्य अर्थ को कहने वाले कहे गये हैं, क्योंकि उनके द्वारा विशेष का कथन नहीं किया जाता। (विशेष के अभाव में)सामान्य का अभाव होने से उनके यहाँ संपूर्ण वचन मिथ्या ही ठहरते हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥३२॥

अन्वयार्थ–**(स्याद्वादन्यायविद्विषां)** स्याद्वायन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं)** उभय का एकान्त अर्थात् पृथक्त्व एवं अपृथक्त्व का एकान्त **(न)** नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त में **(अवाच्यमिति)** अवाच्य इस प्रकार **(उक्तिः)** कथन **(अपि)** भी **(न युज्यते)** घटित नहीं होता।

भावार्थ—स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ उभय का एकान्त नहीं बनता क्योंकि विरोध आता है। अवाच्यतैकान्त को स्वीकार करने पर अवाच्य यह कथन भी नहीं बन सकता।

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तुद्वयहेतुतः ।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा ॥३३॥

अन्वयार्थ— (अनपेक्षे) परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हुए **(पृथक्त्वैक्ये)** पृथक्त्व एवं एकत्व अर्थात् अपृथक्त्व ही **(अवस्तु)** अवस्तु रूप हैं, किन्तु **(द्वयहेतुतः)** दो हेतुओं से परस्पर सापेक्ष **(तदेवैक्यं पृथक्त्वं च)** वे दोनों ही पृथक्त्व और एकत्व (उसी प्रकार वस्तु को प्राप्त होते हैं) **(यथा)** जैसे **(स्वभेदैः)** अपने भेदों की अपेक्षा से **(साधनं)** साधन वस्तुरूप होता है।

भावार्थ—यदि पृथक्त्व और एकत्व ये दोनों धर्म परस्पर निरपेक्ष हैं तो वे अवस्तु रूप हैं, किन्तु दो प्रकार के हेतुओं से परस्पर सापेक्ष वे ही पृथक्त्व और एकत्व धर्म उसी प्रकार वस्तुत्व को

प्राप्त हैं, जिस प्रकार अपने भेदों के द्वारा साधन।

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथक् द्रव्यादिभेदतः ।
भेदाभेदविवक्षायामसाधारण - हेतुवत् ॥३४॥

अन्वयार्थ–(भेदाभेदविवक्षायां) भेद और अभेद की विवक्षा में **(असाधारणहेतुवत्)** असाधारण–असामान्य हेतु की तरह **(सत्सामान्यात्)** सत्ता सामान्य की अपेक्षा से **(तु)** तो **(सर्वैक्यं)** सभी पदार्थों में एकता है **(द्रव्यादिभेदतः)** द्रव्यादि पदार्थों के भेदों की अपेक्षा से **(पृथक्)** भिन्नता है।

भावार्थ—सत्ता सामान्य की अपेक्षा से सब पदार्थ एक रूप है और द्रव्य आदि के भेद से अनेक रूप है। जैसे असाधारण हेतु भेद की विवक्षा से अनेक रूप और अभेद की विवक्षा से एक रूप होता है।

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि।
सतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः ॥३५॥

अन्वयार्थ–(अत्र) यहाँ **(अनंतधर्मिणि)** अनंत धर्मात्मक जीवादि **(विशेष्ये)** विशेष्य में **(सतः विशेषणस्य)** सत् स्वरूप विशेषण की ही **(विवक्षा)** विवक्षा **(च)** और **(अविवक्षा च)** अविवक्षा की जाती है **(तदर्थिभिः)** उस विशेषण की इच्छा करने वाले **(तैः)** उन प्रतिपत्ताओं के द्वारा **(असतः)** असत् की **(न)** नहीं।

भावार्थ—विवक्षा और अविवक्षा करने वाले व्यक्ति अनंत धर्म वाली वस्तु में विद्यमान विशेषण की ही विवक्षा और अविवक्षा करते हैं, अविद्यमान की नहीं।

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥३६॥

अन्वयार्थ–(प्रमाणगोचरौ) प्रमाण के विषय होने के कारण **(भेदाभेदौ)** भेद और अभेद **(संतौ)** वास्तविक हैं **(संवृती न)** काल्पनिक नहीं **(ते)** आपके अनेकान्त शासन में **(गुणमुख्यविवक्षया)** गौण मुख्य की विवक्षा से **(एकत्र)** एक साथ **(तौ)** वे भेद, अभेद **(अविरुद्धौ)** विरुद्ध नहीं पड़ते हैं।

भावार्थ—हे भगवन्! आपके मत में भेद और अभेद प्रमाण के विषय होने से वास्तविक हैं, काल्पनिक नहीं। वे दोनों एक वस्तु में गौण और मुख्य की विवक्षा को लिये हुए बिना विरोध के रह जाते हैं।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद ॥

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ।।३७।।

अन्वयार्थ–(नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि) नित्य एकान्त पक्ष में भी **(विक्रिया)** परिणमन रूप क्रिया **(न उपपद्यते)** उत्पन्न नहीं होती है जब **(प्रागेव)** पहले से ही **(कारकाभावः)** कारकों का अभाव है तो **(क्व प्रमाणं)** प्रमाण कैसे और **(क्व तत्फलं)** प्रमाण का फल भी कैसे बनेगा अर्थात् नहीं बनेगा।

भावार्थ–यदि नित्यत्व एकान्त का पक्ष अंगीकार किया जाये तो पदार्थों में विक्रिया उत्पन्न नहीं हो सकती। जब पहले ही कारकों का अभाव हो जाता है, तब प्रमाण और प्रमाण का फल ये दोनों कैसे बन सकते हैं।

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् ।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः ।।३८।।

अन्वयार्थ–जैसे **(चेत्)** यदि **(इन्द्रियार्थवत्)** इन्द्रियों के द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार **(प्रमाणकारकैः)** प्रमाण और कारकों के द्वारा **(व्यक्तं)** व्यक्त पदार्थों की **(व्यक्तं)** अभिव्यक्ति होती है तो **(ते च नित्ये)** प्रमाण और कारकों को नित्य मानने पर **(साधोः)** हे नाथ **(ते शासनात्)** आपके शासन से **(बहिः)** बाहर **(किं विकार्यं)** क्या विकार्य बन सकता है अर्थात् नहीं।

भावार्थ–यदि जैसे कि इंद्रियों के द्वारा अर्थ अभिव्यक्त होता है उसी प्रकार महदादि व्यक्त पदार्थ प्रमाण और कारकों के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं तो प्रमाण और कारक दोनों के सर्वथा नित्य होने से अनेकान्त शासन से बाहर किसी भी प्रकार की विक्रिया पदार्थों में नहीं बन सकती।

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति ।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ।।३९।।

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(कार्यं)** कार्य को **(सर्वथा सत्)** एकान्त से सत्स्वरूप माना जाये तो **(पुवंत्)** पुरुष तत्त्व की तरह **(उत्पत्तुं)** उत्पत्ति के योग्य **(न अर्हति)** नहीं ठहरता है और यदि **(परिणाम-प्रक्लृप्तिश्च)** परिणमन की परिकल्पना की जाये तो **(नित्यत्वैकान्तबाधिनी)** नित्यत्वैकान्त को खंडित करने वाली है।

भावार्थ–यदि कार्य सर्वथा सत् है तो पुरुष (आत्मा) के समान उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और यदि उत्पत्ति न मानकर कार्य में परिणाम की कल्पना की जाये तो नित्यत्वैकांत में बाधा आती है।

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥४०॥

अन्वयार्थ–(येषां) जिनके **(त्वं)** आप **(नायकः)** नायक **(न असि)** नहीं हो **(तेषां)** उनके मत में **(पुण्यपापक्रिया)** पुण्य और पाप की क्रिया **(न स्यात्)** नहीं होगी **(प्रेत्यभावः)** परलोक गमन **(फलं)** सुख–दुःखादि फल **(कुतः)** कैसे होंगे **(च)** तथा **(बन्धमोक्षौ)** बंध और मोक्ष उनके यहाँ **(न)** नहीं बनते हैं।

भावार्थ–हे भगवन्! जिनके आप नायक नहीं हैं उन एकान्तवादियों के मत में पुण्य पाप की क्रिया, परलोक गमन, सुख दुःख आदि फल, बंध और मोक्ष ये सब नहीं बन सकते हैं।

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः ।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम् ॥४१॥

अन्वयार्थ–(क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि) क्षणिक एकान्त पक्ष में भी **(प्रेत्यभावादि असंभवः)** परलोकादि संभव नहीं हैं। **(प्रत्यभिज्ञाद्यभावात्)** प्रत्यभिज्ञान आदि के अभाव होने से **(न कार्यारम्भः)** कार्य का आरंभ नहीं हो सकता कार्य के अभाव में **(फलं कुतः)** पुण्य पाप रूप फल भी कैसे बनेगा?

भावार्थ–क्षणिक एकांत के पक्ष में प्रेत्यभाव आदि नहीं बन सकते क्योंकि प्रत्यभिज्ञान आदि ज्ञानों का अभाव होने से कार्य का आरंभ नहीं हो सकेगा और कार्य के आरंभ न होने पर उसका फल भी कैसे बनेगा ?

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामोभून्माऽश्वासः कार्यजन्मनि ॥४२॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(कार्यं)** कार्य को **(सर्वथा)** एकान्त से **(असत्)** असत् माना जाय तो **(तत्)** वह कार्य (**खपुष्पवत्**) आकाश के पुष्प की तरह **(माजनि)** उत्पन्न नहीं हो सकता **(उपादाननियामो)** उपादान कारण का नियम भी **(माभूत्)** नहीं बनेगा और **(कार्यजन्मनि)** कार्य की उत्पत्ति में **(आश्वासः)** विश्वास **(मा)** [नहीं होगा]।

भावार्थ–यदि कार्य सर्वथा असत् है तो आकाश पुष्प की तरह उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। यदि असत् का उत्पाद माना जाये तो कार्य की उत्पत्ति में उपादान कारण का नियम नहीं रहता और कार्य की उत्पत्ति का कोई विश्वास भी नहीं रहता है।

न हेतुफल – भावादिरन्यभावादनन्वयात् ।
सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक् ॥४३॥

अन्वयार्थ—क्षणिक एकान्त पक्ष में **(अनन्वयात्)** अन्वय न होने से **(हेतुफलभावादि: न)** हेतुभाव एवं फलभाव आदि नहीं बनते **(सन्तानान्तरवत्)** क्योंकि अन्य संतान की तरह **(अन्यभावात्)** अन्य भाव होता है और **(तद्वत:)** संतानवान् से **(पृथक्)** पृथक् **(एक:)** कोई एक **(संतान: न)** संतान नहीं है।

भावार्थ—क्षणिक एकान्तपक्ष में अन्वय के अभाव में कार्य-कारण भाव आदि नहीं बन सकते हैं, क्योंकि अन्वय न होने से कार्य संतानान्तर के समान सर्वथा पृथक् है और संतानियों से पृथक् कोई एक संतान भी नहीं होती है।

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम् ।
मुख्यार्थः संवृतिर्नस्याद् विना मुख्यान्न संवृतिः ॥४४॥

अन्वयार्थ—(अन्येषु) अन्यों में **(अनन्यशब्द:)** अनन्य इस प्रकार जो शाब्दिक व्यवहार होता है वह **(संवृति:)** संवृति से है **(अयं)** यह संवृति **(मृषा)** असत्य **(कथं न)** कैसे नहीं होगी, क्योंकि **(मुख्यार्थ:)** मुख्य अर्थ **(संवृति: न स्याद्)** काल्पनिक नहीं होता और **(मुख्यात् विना न संवृति:)** मुख्य के बिना कल्पना नहीं होती।

भावार्थ—पृथक्-पृथक् क्षणों में अनन्य शब्द का जो व्यवहार है वह संवृति से है और संवृति होने से वह मिथ्या क्यों नहीं है क्योंकि मुख्य अर्थ संवृति स्वरूप नहीं होता है और मुख्य अर्थ के बिना संवृति नहीं हो सकती।

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्ययोगतः ।
तत्त्वान्यत्वमवाच्यं चेत्तयोः सन्तानतद्वतोः ॥४५॥

अन्वयार्थ—(सर्वान्तेषु) समस्त धर्मों में **(चतुष्कोटेर्विकल्पस्य)** चार कोटि रूप विकल्प के **(उक्त्ययोगत:)** कहने का अभाव होने से **(तयो: संतानतद्वतो:)** उन संतान और संतानी के **(तत्त्वान्यत्वं अवाच्यं)** एकत्व और अनेकत्व धर्म अवाच्य है **(चेत्)** यदि ऐसा कहते हो तो।

भावार्थ—यदि बौद्धों की ओर से यह कहा जाये कि चूँकि समस्त धर्मों में चार कोटि रूप विकल्प बनता नहीं है अत: संतान और संतानियों में एकत्व और अन्यत्व ये दोनों धर्म अवाच्य हैं तो आचार्य इसका स्पष्टीकरण आगे की कारिका में करते हैं।

अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्पोऽपि न कथ्यताम्।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥४६॥

अन्वयार्थ—(अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्प:) चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है यह **(अपि)** भी **(न कथ्यताम्)** नहीं कहना चाहिए **(असर्वान्तं)** जो समस्त धर्मों से रहित है **(अविशेष्य-**

विशेषणं) वह विशेषण विशेष्यभाव से रहित होता हुआ **(अवस्तु स्यात्)** अवस्तुरूप ठहरता है।

भावार्थ—बौद्धों को वस्तु में सत् आदि चार प्रकार के विकल्पों को अवक्तव्य भी नहीं कहना चाहिए। जो सर्व धर्मों से रहित है, वह अवस्तु है क्योंकि उनके विशेष्य-विशेषण भाव नहीं बन सकता है।

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधः सञ्ज्ञिनः सतः।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः ॥४७॥

अन्वयार्थ—(सतः संज्ञिनः) सत्ता से युक्त संज्ञी पदार्थ का ही **(द्रव्याद्यन्तरभावेन)** अन्य द्रव्य आदि की अपेक्षा से **(निषेधः)** अभाव किया जाता है **(असद्भेदो भावस्तु)** असत्‌रूप वस्तु तो **(विधिनिषेधयोः)** विधि और निषेध का **(स्थानं न)** स्थान नहीं होती।

भावार्थ—जो संज्ञी सत् (विधि) स्वरूप होता है, उसी का परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से निषेध होता है। जो सर्वथा असत् है वह विधि और निषेध का स्थान नहीं हो सकता है।

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात् सर्वान्तैः परिवर्जितम् ।
वस्त्वेवावस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात् ॥४८॥

अन्वयार्थ—(सर्वान्तैः) समस्त धर्मों से **(परिवर्जितं)** रहित **(अवस्तु)** अवस्तु **(अनभिलाप्यं)** कथन रहित **(स्यात्)** हो क्योंकि **(प्रक्रियायाः)** प्रक्रिया के **(विपर्ययात्)** विपर्यय से **(वस्तु)** वस्तु **(एव)** ही **(अवस्तुतां)** अवस्तुपने को **(याति)** प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ—जो सर्वधर्मों से रहित है, वह अवस्तु है और जो अवस्तु है वह अनभिलाप्य है क्योंकि प्रक्रिया के विपरीत हो जाने से वस्तु ही अवस्तुपने को प्राप्त हो जाती है।

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥४९॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि **(सर्वान्ताः)** समस्त धर्म **(अवक्तव्याः)** अवक्तव्य हैं तो **(तेषां)** उनका **(पुनः वचनं किम्)** कथन क्यों किया जाता है **(चेत्)** यदि उनका कथन **(संवृतिः)** संवृति रूप है तो **(परमार्थविपर्ययात्)** परमार्थ से विपरीत होने से **(एषा)** यह संवृति **(मृषा एव)** असत्य ही है।

भावार्थ—यदि बौद्धों के अनुसार सभी धर्म अवक्तव्य हैं तो उनका कथन क्यों किया जाता है? यदि उनका कथन संवृति से किया जाता है तो परमार्थ से विपरीत होने के कारण यह संवृति मिथ्या ही है।

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः ।
आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटम् ॥५०॥

अन्वयार्थ—(अशक्यत्वात्) क्या अशक्य होने से **(किमभावात्)** क्या अभाव होने से **(किमबोधतः)** क्या ज्ञान न होने के कारण **(अवाच्यं)** तत्त्व अवाच्य है **(आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात्)** आदि और अन्त के दो पक्ष तो बनते नहीं **(व्याजेन किं)** छल करने से क्या **(स्फुटं)** स्पष्ट रूप से **(उच्यताम्)** कहिए (कि तत्त्व का सर्वथा अभाव है)।

भावार्थ—तत्त्व अवाच्य क्यों है? क्या अशक्य होने से अवाच्य है? या अभाव होने से अवाच्य है? या ज्ञान न होने से अवाच्य है? पहला और अंत का विकल्प तो ठीक नहीं है। यदि अभाव होने से तत्त्व अवाच्य है तो उस प्रकार के बहाने से क्या लाभ है? स्पष्ट कहिये कि वस्तु तत्त्व का सर्वथा अभाव है।

हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥५१॥

अन्वयार्थ—क्षणिक एकान्त मानने पर **(चित्तं)** जो चित्त **(अनभिसन्धातृ)** हिंसा के अभिप्राय से रहित है **(हिनस्ति)** वह तो हिंसा करता है **(अभिसंधिमत्)** जो हिंसा के अभिप्राय से युक्त है **(न हिनस्ति)** वह हिंसा नहीं करता है **(तद्द्वयापेतं)** उक्त दोनों से रहित तीसरा **(बध्यते)** बंध को प्राप्त होता है **(बद्धं)** बंधा हुआ चित्त **(न मुच्यते)** मुक्त नहीं होता है।

भावार्थ—हिंसा करने का जिसका अभिप्राय नहीं है वह हिंसा करता है और जिसका हिंसा करने का अभिप्राय है, वह हिंसा नहीं करता है। जिसने हिंसा का न अभिप्राय किया और न हिंसा की वह चित्त बंध को प्राप्त होता है और जिसका चित्त बंध हुआ उसकी मुक्ति नहीं होती।

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
चित्तसन्ततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः ॥५२॥

अन्वयार्थ—(नाशस्य) नाश के **(अहेतुकत्वात्)** अहेतुक मानने से **(हिंसाहेतुः)** हिंसा के कारण अर्थात् हिंसा करने वाला **(हिंसकः न)** हिंसक नहीं होगा **(च)** और **(चित्तसंततिनाशः)** चित्त संतति के नाशरूप जो **(मोक्षः)** मोक्ष है वह भी **(अष्टांगहेतुकः न)** अष्टांग हेतुक नहीं हो सकता।

भावार्थ—जब विनाश का कोई कारण नहीं होता तब हिंसक, हिंसा का कारण नहीं ठहरता और चित्त संतति के नाशरूप मोक्ष भी अष्टांग हेतुक जो स्वीकार किया गया है, वह नहीं बनता।

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतुसमागमः।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत् ॥५३॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(विरूपकार्यारम्भाय)** विसदृश कार्य के प्रारंभ के लिए **(हेतुसमागमः)** हेतु का समागम होता है तो **(असौ)** यह हेतु व्यापार **(आश्रयिभ्यां)** अपने आश्रयियों से **(अनन्यः)** अभिन्न ही होगा **(अविशेषात्)** दोनों में कोई भेद न होने से **(अयुक्तवत्)** अपृथक् सिद्ध पदार्थों की तरह।

भावार्थ–यदि विसदृश कार्य की उत्पत्ति के लिए हेतु का समागम होता है तो हेतु का व्यापार अपने आश्रयी नाश और उत्पाद से अभिन्न है, क्योंकि उन दोनों में परस्पर में कोई भेद नहीं है, जैसे अपृथक् सिद्ध पदार्थों का कारण अपने आश्रयियों से भिन्न नहीं होता है।

स्कन्धाः सन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत् ॥५४॥

अन्वयार्थ–(संवृतित्वात्) काल्पनिक होने से **(स्कन्धाः संततय च)** स्कन्ध संततियाँ **(असंस्कृताः एव)** अपरमार्थभूत ही हैं **(खरविषाणवत्)** खरविषाण की तरह **(तेषां)** उनमें अर्थात् स्कन्ध संततियों में **(स्थित्युत्पत्तिव्ययाः)** स्थिति, उत्पत्ति और व्यय **(न स्युः)** नहीं हो सकते।

भावार्थ–स्कन्धों की संततियाँ भी बौद्धों के यहाँ संवृतिरूप–काल्पनिक होने से अपरमार्थभूत हैं। उन स्कन्ध संततियों में खरविषाण के समान स्थिति, उत्पत्ति और व्यय नहीं हो सकते हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥५५॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं न)** नित्यत्वैकान्त एवं अनित्यत्वैकान्त नहीं बनते हैं **(अवाच्य-तैकान्तेऽपि)** अवाच्यता के एकान्त में भी **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इति उक्तिः)** यह वचन **(न युज्यते)** युक्त नहीं है।

भावार्थ–स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ नित्यत्व, अनित्यत्व रूप उभयैकात्म्य नहीं बन सकता क्योंकि निरपेक्ष उभयैकात्म्य में विरोध है तथा यदि तत्त्व को सर्वथा अवाच्य रूप ही स्वीकार करें तो भी तत्त्व अवाच्य है, यह कथन भी युक्त नहीं हो सकता है।

नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥५६॥

अन्वयार्थ–हे नाथ **(ते)** आपके शासन में **(प्रत्यभिज्ञानात्)** प्रत्यभिज्ञान का विषय होने से

(तत्) वह वस्तु तत्त्व **(नित्यं)** नित्य है **(तत्)** वह प्रत्यभिज्ञान **(अकस्मात् न)** निर्विषयक नहीं है **(अविच्छिदा)** अविच्छेद रूप से अनुभव में आता है **(कालभेदात्)** काल का भेद होने से **(क्षणिकम्)** वस्तु क्षणिक है। सर्वथा नित्य और सर्वथा क्षणिक तत्त्व में **(बुद्ध्यसंचरदोषतः)** बुद्धि संचरण नहीं होने से दोष आयेगा।

भावार्थ—हे भगवन्! आपके अनेकान्त मत में प्रत्यभिज्ञान का विषय होने के कारण तत्त्व कथंचित् नित्य है। प्रत्यभिज्ञान का सद्भाव बिना किसी कारण के नहीं होता है क्योंकि अविच्छेद रूप से वह अनुभव में आता है। काल भेद होने से तत्त्व कथंचित् क्षणिक भी है। सर्वथा नित्य और सर्वथा क्षणिक तत्त्व में बुद्धि का संचार नहीं होने से दोष आयेगा।

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥५७॥

अन्वयार्थ—(ते) आपके अनेकांत शासन में पदार्थ **(सामान्यात्मना)** सामान्यरूप से **(न उदेति)** उत्पन्न नहीं होता है **(न व्येति)** नष्ट भी नहीं होता है **(व्यक्तं अन्वयात्)** क्योंकि अन्वय स्पष्टरूप से देखा जाता है **(विशेषात्)** विशेष की अपेक्षा से **(व्येति)** नष्ट होता है **(उदेति)** उत्पन्न होता है **(सह एकत्र)** एक साथ एक वस्तु में **(उदयादि सत्)** उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों का होना सत् कहलाता है।

भावार्थ—हे भगवन्! आपके शासन में वस्तु सामान्य की अपेक्षा से न उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है, क्योंकि सब पर्यायों में उसका अन्वय पाया जाता है तथा विशेष की अपेक्षा से वस्तु नष्ट और उत्पन्न होती है। एक साथ एक वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का होना सत् कहलाता है।

कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥५८॥

अन्वयार्थ—(हेतोः क्षयः) हेतु का क्षय **(नियमात्)** नियम से **(कार्योत्पादः)** कार्य का उत्पाद **(लक्षणात् पृथक्)** उत्पाद और विनाश ये दोनों अपने-अपने लक्षण से भिन्न हैं **(जात्यादि अवस्थानात् न तौ)** जााति आदि के अवस्थान से वे दोनों भिन्न नहीं हैं **(अनपेक्षाः)** अपेक्षा से रहित उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प की तरह अवस्तु हैं।

भावार्थ—हेतु के क्षय होने का नाम ही कार्य का उत्पाद है क्योंकि दोनों के साथ हेतु का नियम है। उत्पाद और विनाश लक्षण की अपेक्षा से पृथक्-पृथक् है और जाति आदि के अवस्थान के कारण उनमें कोई भेद नहीं है। परस्पर निरपेक्ष उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आकाश पुष्प के समान अवस्तु हैं।

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥५९॥

अन्वयार्थ–(घटमौलिसुवर्णार्थी) घट, मुकुट और सुवर्ण के अर्थी **(अयं जनः)** ये व्यक्ति **(नाशोत्पादस्थितिषु)** नाश, उत्पाद और स्थिति में **(शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं)** शोक, प्रमोद और माध्यस्थपने को **(याति)** प्राप्त होते हैं **(सहेतुकं)** और यह सब कारण सहित हैं।

भावार्थ– घट का इच्छुक मनुष्य, मुकुट का इच्छुक मनुष्य और केवल सुवर्ण का इच्छुक मनुष्य क्रमशः घट के नाश होने पर शोक को, मुकुट के उत्पन्न होने पर हर्ष को और दोनों ही अवस्थाओं में सुवर्ण की स्थिति होने से माध्यस्थभाव को प्राप्त होता है, यह सब सहेतुक होता है।

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥६०॥

अन्वयार्थ–(पयोव्रतः) दूध खाने के व्रत वाला **(दधि न अत्ति)** दही नहीं खाता **(दधिव्रतः)** दही खाने के व्रत वाला **(पयः न अत्ति)** दूध नहीं खाता **(अगोरसव्रतो)** अगोरसव्रती **(उभे न)** दूध, दही दोनों नहीं खाता **(तस्मात्)** इसलिये **(तत्त्वं)** तत्त्व **(त्रयात्मकम्)** उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है।

भावार्थ–जिसके दूध खाने का व्रत है वह दधि नहीं खाता है, जिसके दधि खाने का व्रत है वह दूध नहीं खाता और गोरस नहीं खाने का व्रत है वह दोनों नहीं खाता है इसलिए वस्तु तत्त्व तीन रूप है।

॥ इति तृतीय परिच्छेदः ॥

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यताऽपि च ।
सामान्यतद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥६१॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(एकान्तेन)** एकान्त से **(कार्यकारणनानात्वं)** कार्यकारण में भिन्नता **(गुणगुण्यन्यता अपि च)** गुण-गुणी में भिन्नता **(सामान्यतद्वदन्यत्वं च)** सामान्य और सामान्यवान् में भिन्नता **(इष्यते)** मानते हो तो।

भावार्थ–यदि नैयायिक-वैशेषिक कार्य-कारण में, गुण-गुणी में और सामान्य-सामान्यवान में सर्वथा भेद मानते हैं तो (ठीक नहीं है)।

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥६२॥

अन्वयार्थ–(भागाभावात्) निरंश होने से **(एकस्य)** एक की **(अनेकवृत्तिः)** अनेक में

वृत्ति **(न)** नहीं होगी [यदि वृत्ति मान ली जावेगी तो] **(बहूनि वा)** अनेकता माननी पड़ेगी (**भागित्वात् वा)** भाग हो जाने से **(अस्य एकत्वं न**) इसके एकपना नहीं हो सकता अतः **(अनार्हते)** जो अर्हत्मत को नहीं मानते उनके यहाँ पर **(वृत्तेः)** वृत्ति को मानने पर **(दोषः)** दोष आते हैं।

भावार्थ—एक की अनेकों में वृत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि उसके भाग (अंश) नहीं होते हैं और यदि एक के अनेक भाग हैं तो भागवाला होने के कारण वह एक नहीं हो सकता है। इस प्रकार अर्हत्मत से विपरीत अनार्हतमत में अनेक दोष आते हैं।

देशकालविशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धवत्।
समानदेशता न स्यात् मूर्त्तकारणकार्ययोः ॥६३॥

अन्वयार्थ—(देशकालविशेषेऽपि) देश और काल की अपेक्षा से भी अवयव-अवयवी आदि में भेद मानने पर **(युतसिद्धवत्)** पृथक् सिद्ध पदार्थों की तरह **(वृत्तिः स्यात्)** वृत्ति होगी **(मूर्तकारणकार्ययोः)** मूर्तकारण और कार्य में **(समानदेशता)** एक देशपना **(न स्यात्)** नहीं बनेगा।

भावार्थ—यदि कार्य-कारण आदि एक-दूसरे से सर्वथा पृथक् हैं तो देश और काल की अपेक्षा से भी उनमें भेद मानना पड़ेगा और तब युत-सिद्ध के समान उनमें भी वृत्ति माननी होगी और मूर्तिक कारण और कार्य में जो समान देशता देखी जाती है, वह नहीं बन सकेगी।

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स सम्बन्धो न युक्तः समवायिभिः ॥६४॥

अन्वयार्थ—यदि **(आश्रयाश्रयिभावात्)** आश्रय, आश्रयिभाव होने से **(समवायिनां)** समवायियों के **(स्वातंत्र्यं न इति)** स्वतंत्रता नहीं है [ऐसा वैशेषिक कहें] तो **(समवायिभिः)** समवायियों के साथ **(अयुक्तः स सम्बन्ध)** वह सम्बन्ध अयुक्त है **(न युक्तः)** अतः घटित ही नहीं होता।

भावार्थ—यदि ऐसा कहा जाये कि समवायियों में आश्रयाश्रयीभाव होने के कारण स्वतंत्रता नहीं है। जिससे देश व काल की अपेक्षा भेद होने पर भी वृत्ति नहीं बनती तो यह कहना ठीक नहीं है। जो स्वयं असम्बद्ध है वह एक का दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसे करा सकता है?

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः।
अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः ॥६५॥

अन्वयार्थ—जिस प्रकार **(सामान्यं)** सामान्य **(आश्रयमंतरेण)** आश्रय के बिना **(न स्यात्)** नहीं रहता है **(समवायः अपि च)** उसी प्रकार समवाय भी आश्रय के बिना नहीं रहता है

(एकैकत्र) ये दोनों प्रत्येक नित्य पदार्थ में **(समाप्तितः)** पूर्णरूप से रहते हैं **(नाशोत्पादिषु)** नाश और उत्पन्न होने वाले पदार्थों में **(कः विधिः)** सामान्य और समवाय की व्यवस्था कैसे बनेगी?

भावार्थ—सामान्य समवाय अपने-अपने आश्रयभूत प्रत्येक नित्य व्यक्तियों में पूर्णरूप से रहते हैं और जब आश्रय के बिना उनका सद्भाव नहीं रहता है। तब नष्ट और उत्पन्न होने वाले पदार्थों में उनके रहने की व्यवस्था कैसे बन सकती है।

सर्वथाऽनभिसम्बन्धः सामान्यसमवाययोः ।
ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥६६॥

अन्वयार्थ—(सामान्यसमवाययोः) सामान्य और समवाय का **(सर्वथा)** किसी भी प्रकार से **(अनभिसम्बंधः)** सम्बन्ध नहीं है **(ताभ्यां)** सामान्य और समवाय के साथ (**अर्थः**) पदार्थ **(न संबद्धः)** सम्बन्ध को प्राप्त नहीं होता इसलिए **(तानि त्रीणि)** वे तीनों **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प की तरह असत् ठहरते हैं।

भावार्थ—सामान्य और समवाय का परस्पर में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। सामान्य और समवाय के साथ पदार्थ का भी सम्बन्ध नहीं है। अतः सामान्य, समवाय और पदार्थ ये तीनों ही आकाशपुष्प के समान अवस्तु हैं।

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा ॥६७॥

अन्वयार्थ—(अणूनां) परमाणुओं का **(अनन्यतैकान्ते)** अनन्यता का एकान्त मानने पर **(संघाते अपि)** समुदाय रूप अवस्था में भी **(विभागवत्)** विभक्त पदार्थों की तरह **(असंहतत्वं स्यात्)** समुदाय ही नहीं बनेगा **(भूतचतुष्कं)** भूतचतुष्टय **(सा भ्रान्तिः एव)** भ्रान्ति रूप ही ठहरेगा।

भावार्थ—यदि परमाणुओं में अनन्यता का एकान्त माना जाये तो एकान्तरूप में उनके मिलने पर भी विभक्त पदार्थों के समान परस्पर असम्बद्धता रहेगी और ऐसा होने पर भूत चतुष्क भ्रान्तरूप ही ठहरेगा।

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम् ।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न ॥६८॥

अन्वयार्थ—(कार्यभ्रान्तेः) कार्य-भूत चतुष्क की भ्रान्ति से **(अणुभ्रान्तिः)** उसके कारण रूप जो अणु है उनको भी भ्रान्त मानना पड़ेगा **(हि)** क्योंकि **(कारणं)** कारण **(कार्यलिङ्गं)** कार्य द्वारा जाना जाता है **(उभयाभावतः)** दोनों के अभाव हो जाने से **(तत्स्थं)** उनमें रहने वाले

(गुणजातीतरच्च) गुण, जाति और क्रिया आदि **(न)** सिद्ध नहीं होंगे।

भावार्थ—कार्य के भ्रान्त होने से अणु भी भ्रान्त होंगे क्योंकि कार्य के द्वारा कारण का ज्ञान किया जाता है तथा कार्य और कारण दोनों के अभाव में उनमें रहने वाले गुण, जाति आदि का भी अभाव हो जावेगा।

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः ।
द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥६९॥

अन्वयार्थ—(एकत्वे) कार्य और कारण की सर्वथा एकता स्वीकार करने पर **(अन्यतराभावः)** उन दोनों में से किसी एक का अभाव हो जायेगा **(शेषाभावः)** एक का अभाव होने पर शेष का भी अभाव हो जायेगा **(अविनाभुवः)** क्योंकि वह एक-दूसरे के साथ अविनाभावी हैं **(च)** और **(द्वित्वसंख्या)** द्वित्व संख्या मानने पर **(विरोधः)** विरोध होगा **(चेत्)** यदि **(संवृतिः)** कल्पना से मान ली जावे तो **(सा मृषा एव)** वह कल्पना असत्य ही होती है।

भावार्थ—कार्य और कारण को सर्वथा एक मानने पर उनमें से किसी एक का अभाव हो जायेगा और एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होगी ही, क्योंकि उनका परस्पर में अविनाभाव है। द्वित्व संख्या के मानने में भी विरोध होगा तथा संवृति के मिथ्या होने से द्वित्वसंख्या को संवृतिरूप मानना भी ठीक नहीं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७०॥

अन्वयार्थ—(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं न)** अन्यता और अनन्यता दोनों का एकात्म्य संभव नहीं है **(अवाच्यतैकान्ते अपि)** अवाच्यता का एकान्त स्वीकार करने पर भी **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इति)** इस प्रकार **(उक्तिः न युज्यते)** वचन युक्त नहीं होता।

भावार्थ—स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकात्म्य नहीं बन सकता है और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः ।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः ॥७१॥
संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः ।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा ॥७२॥

अन्वयार्थ—(द्रव्यपर्याययो:) द्रव्य और पर्याय इन दोनों में **(ऐक्यं)** एकता है **(तयो:)** इन दोनों की **(अव्यतिरेकत:)** अलग अलग उपलब्धि नहीं होती **(परिणामविशेषात् च)** परिणाम के विशेष से **(शक्तिमच्छक्तिभावत:)** शक्तिमान् और शक्तिभाव से **(च)** और **(संज्ञा-संख्याविशेषात्)** संज्ञा तथा संख्या की विशेषता से **(स्वलक्षणविशेषत:)** अपने लक्षणों की भिन्नता से **(च)** और **(प्रयोजनादिभेदात्)** और प्रयोजन आदि के भेद से **(तन्नानात्वं)** उन दोनों में अनेकता भी है **(न सर्वथा)** किन्तु सर्वथा एकान्त नहीं है।

भावार्थ—द्रव्य और पर्याय में कथंचित् ऐक्य (अभेदपना) है, क्योंकि उन दोनों में अव्यतिरेकपना पाया जाता है। द्रव्य और पर्याय में कथंचित् नानापना भी है, क्योंकि उन दोनों में परिणाम का भेद है, शक्तिमान् और शक्तिभाव का भेद है, संज्ञा का भेद है, संख्या का भेद है, स्वलक्षण का भेद है और प्रयोजन का भेद है किन्तु यह भेद कथंचित् है सर्वथा नहीं।

॥ इति चतुर्थ परिच्छेद:॥

यद्यापेक्षिकसिद्धि: स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥७३॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि धर्म और धर्मी की सिद्धि **(आपेक्षिक सिद्धि: स्यात्)** सर्वथा अपेक्षाकृत ही मानी जाये तो **(द्वयं न व्यवतिष्ठते)** दोनों की सिद्धि नहीं हो सकती **(अनापेक्षिकसिद्धौ च)** और सर्वथा अनापेक्षिक सिद्धि मानने पर **(सामान्यविशेषता न)** सामान्य और विशेष भाव नहीं बन सकता है।

भावार्थ—यदि धर्म-धर्मी कार्य-कारणादिरूप पदार्थों की सिद्धि आपेक्षिक-सर्वथा एक-दूसरे की अपेक्षा रखने वाली होती है तो दोनों की सिद्धि नहीं हो सकती है और अनापेक्षिक सिद्धि किसी की अपेक्षा न रखने वाली मानने पर उनमें सामान्य विशेष भाव नहीं बन सकता है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७४॥

अन्वयार्थ—(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं न)** उभय अर्थात् अपेक्षा एवं अनपेक्षा का उभय एकान्त नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता का एकान्त स्वीकार करने पर **(अवाच्यं इति उक्ति:)** अवाच्य है यह उक्ति भी **(न युज्यते)** घटित नहीं होती है।

भावार्थ—स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभय का एकान्त नहीं बन सकता है और अवाच्यतैकान्त पक्ष में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता

है।

धर्मधर्म्यविनाभावः सिद्ध्यत्यन्योऽन्यवीक्षया।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥७५॥

अन्वयार्थ–(धर्मधर्म्यविनाभावः) धर्म और धर्मी का अविनाभाव **(अन्योन्यवीक्षया)** परस्पर की अपेक्षा से **(सिद्ध्यति)** सिद्ध होता है **(न स्वरूपम्)** इनका स्वरूप नहीं **(हि)** क्योंकि **(कारकज्ञापकांगवत्)** कारक और ज्ञापक के अंगों की तरह **(एतत् स्वतः)** यह स्वयं सिद्ध होता है।

भावार्थ–धर्म और धर्मी का अविनाभाव ही परस्पर की अपेक्षा से सिद्ध होता हैं, इनका स्वरूप नहीं, क्योंकि स्वरूप तो कारक और ज्ञापक के अंगों की तरह स्वतः सिद्ध होता है।

॥ इति पंचम परिच्छेदः॥

सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥७६॥

अन्वयार्थ–(हेतुतः) हेतु से **(सर्वं सिद्धं)** सभी पदार्थ सिद्ध होते हैं **(चेत्)** यदि ऐसा एकान्त माना जाये तो **(प्रत्यक्षादितो गतिः न)** प्रत्यक्षादि प्रमाण से किसी भी तत्त्व की सिद्धि नहीं होगी, **(आगमात्)** आगम से ही **(सर्वं सिद्धं)** सभी पदार्थ सिद्ध होते हैं **(चेत्)** यदि ऐसा एकान्त स्वीकार किया जावे तो **(विरुद्धार्थमतानि अपि)** परस्पर विरुद्ध अर्थ का कथन करने वाले मत भी सिद्ध हो जायेंगे।

भावार्थ–यदि हेतु से सब पदार्थों की सिद्धि होती है तो प्रत्यक्ष आदि से पदार्थों का ज्ञान नहीं होना चाहिए, और यदि आगम से सब पदार्थों की सिद्धि होती है तो परस्पर विरुद्ध अर्थ के प्रतिपादक मत भी सिद्ध हो जायेंगे।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७७॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं)** उभय अर्थात् हेतुवाद एवं आगमवाद **(न)** नहीं बनता है **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यमिति)** अवाच्य है इस प्रकार**(उक्तिः अपि)** उक्ति भी **(न युज्यते)** बनती नहीं है।

भावार्थ–स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकान्त नहीं

बन सकता है और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम् ।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात् साध्यमागमसाधितम् ॥७८॥

अन्वयार्थ–(वक्तरि अनाप्ते) वक्ता के आप्त न होने पर **(हेतोः)** हेतु के द्वारा **(यत् साध्यं)** जो साध्य होता है **(तत् हेतुसाधितम्)** वह हेतु साधित कहलाता है **(वक्तरि आप्ते)** वक्ता के आप्त होने पर **(तद्वाक्यात्)** उसके वाक्य से जो **(साध्यं)** साध्य होता है **(आगमसाधितम्)** वह आगम साधित कहलाता है।

भावार्थ–वक्ता के अनाप्त होने पर जो हेतु से सिद्ध किया जाता है वह हेतु साधित है और वक्ता के आप्त होने पर जो उसके वचनों से सिद्ध होता है वह आगमसाधित कहा जाता है।

॥ इति षष्ठ परिच्छेदः॥

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाखिलम्।
प्रमाणाभासमेवातस्तत्प्रमाणादृते कथम् ॥७९॥

अन्वयार्थ–(अंतरङ्गार्थतैकान्ते) एकान्त से अन्तरंगरूप पदार्थ की सत्ता को स्वीकार करने पर **(अखिलं)** संपूर्ण **(बुद्धिवाक्यं)** बुद्धि, वाक्य **(मृषा)** असत्य ठहरते हैं **(अतः प्रमाणाभासमेव)** इसलिये इन वाक्यों में प्रमाणाभासता ही आती है **(तत्)** वह प्रमाणाभासता **(प्रमाणाद्)** प्रमाण के **(ऋते)** बिना **(कथम्)** कैसे हो सकता है ?

भावार्थ–एकान्त से अन्तरंग पदार्थ की सत्ता को स्वीकार किया जाये तो सब बुद्धि और वाक्य मिथ्या हो जावेंगे और मिथ्या होने से वे प्रमाणाभास ही होंगे किन्तु प्रमाण के बिना प्रमाणाभास कैसे बन सकता है?

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः ॥८०॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(साध्यसाधनविज्ञप्तेः)** साध्य साधन की विज्ञप्ति **(विज्ञप्तिमात्रता)** विज्ञान मात्र ही स्वीकृत की जावे तो **(प्रतिज्ञाहेतुदोषतः)** प्रतिज्ञा एवं हेतु के दोष से **(न साध्यं)** साध्य नहीं बन सकता **(न च हेतुः)** और हेतु भी नहीं बन सकता **(च)** और च शब्द से दृष्टान्त भी नहीं बन सकता।

भावार्थ–साध्य और साधन के ज्ञान को यदि विज्ञानमात्र ही माना जाये तो प्रतिज्ञादोष और हेतु दोष के कारण न कोई साध्य सिद्ध होगा, न हेतु और न दृष्टान्त बन सकता है।

बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभासनिह्नवात्।
सर्वेषां कार्यसिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥८१॥

अन्वयार्थ–(बहिरङ्गार्थतैकान्ते) बहिरंगरूप पदार्थ घट,पट आदि ही एकान्त से वास्तविक हैं तो **(प्रमाणाभासनिह्नवात्)** प्रमाणाभास का लोप होने से **(सर्वेषां विरुद्धार्थाभिधायिनाम्)** समस्त विरुद्धअर्थ का कथन करने वालों के यहाँ **(कार्यसिद्धिः)** कार्य सिद्धि **(स्यात्)** हो जायेगी।

भावार्थ–केवल बहिरंग अर्थ के सद्भाव को ही एकान्त से मानने पर प्रमाणाभास का निह्नव हो जाने से विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाले सब लोगों के कार्य की सिद्धि हो जायेगी।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥८२॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं)** उभय अर्थात् अन्तरंगार्थ एवं बहिरंगार्थ का एकान्त **(न)** नहीं बनता है **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यमिति)** अवाच्य है इस प्रकार **(उक्तिः अपि)** उक्ति भी **(न युज्यते)** नहीं बनती है।

भावार्थ–स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकान्त नहीं बन सकता है और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः।
बहिः प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥८३॥

अन्वयार्थ–हे वीरनाथ! **(ते)** आपके शासन में **(भावप्रमेयापेक्षायां)** भावरूप प्रमेय की अपेक्षा में **(प्रमाणाभासनिह्नवः)** प्रमाणाभास का लोप बन जाता है **(बहिःप्रमेयापेक्षायां)** बहिरंग प्रमेय की अपेक्षा की जाती है तो **(प्रमाणं)** प्रमाणता **(तन्निभं च)** और प्रमाणाभासता बन जाती है।

भावार्थ–हे भगवन्! आपके मत में भाव (ज्ञान) को प्रमेय मानने की अपेक्षा से कोई ज्ञान प्रमाणाभास नहीं है और बाह्य अर्थ को प्रमेय मानने की अपेक्षा से ज्ञान प्रमाण और प्रमाणाभास दोनों होता है।

जीवशब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत्।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत् ॥८४॥

अन्वयार्थ– (जीवशब्दः) जीव शब्द **(सबाह्यार्थः)** बाह्य अर्थ से युक्त है **(हेतुशब्दवत्)** हेतु शब्द की तरह **(संज्ञात्वात्)** संज्ञा होने से **(प्रमोक्तिवत्)** प्रमा शब्द की तरह **(मायादि-**

भ्रान्तिसंज्ञाश्च) माया आदि भ्रान्ति शब्द **(स्वैः मायाद्यैः)** अपने मायादि अर्थ से युक्त होते हैं।

भावार्थ—जीवशब्द बाह्य अर्थ सहित है क्योंकि वह हेतु शब्द की तरह संज्ञा शब्द है। जिस प्रकार प्रमा शब्द का बाह्य अर्थ पाया जाता है, उसी प्रकार माया आदि भ्रान्ति की संज्ञाएँ भी अपने मायादि अर्थ से सहित होती हैं।

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचिकाः।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः ॥८५॥

अन्वयार्थ—(तास्तिस्रः बुद्धिशब्दार्थसंज्ञाः) बुद्धि, शब्द एवं अर्थ ये तीनों संज्ञाएँ **(बुद्ध्यादि-वाचिकाः तुल्या)** बुद्धि, शब्द और अर्थ की समान वाचक हैं **(तत्प्रतिबिम्बकाः)** इन संज्ञाओं के प्रतिबिम्बक **(बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयः)** बुद्धि, शब्द एवं अर्थ रूप बोध हैं वे भी बुद्धि, शब्द एवं अर्थ को जानने वाले होने के समान हैं।

भावार्थ—बुद्धि संज्ञा, शब्द संज्ञा और अर्थ संज्ञा ये तीनों संज्ञाएँ क्रमशः बुद्धि, शब्द और अर्थ की समानरूप से वाचक हैं और इन संज्ञाओं के प्रतिबिम्ब स्वरूप बुद्धि आदि का बोध भी समान रूप से होता है।

वक्तृश्रोतृप्रमातृणां बोधवाक्यप्रमाः पृथक्।
भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥८६॥

अन्वयार्थ—(वक्तृश्रोतृप्रमातृणां) वक्ता,श्रोता और प्रमाता के **(बोधवाक्यप्रमाः पृथक्)** वाक्य, बोध और प्रमा ये भिन्न-भिन्न हैं **(भ्रान्तौ एव)** वाक्य, बोध एवं प्रमा को भ्रान्ति स्वरूप मानने पर, **(प्रमाभ्रान्तौ)** प्रमाण में भ्रान्ति रूपता आने पर **(तादृशेतरौ)** प्रमाण, अप्रमाण रूप **(बाह्यार्थौ)** इष्टानिष्ट बाह्य पदार्थ भी भ्रान्त ही होंगे।

भावार्थ—वक्ता, श्रोता और प्रमाता को जो बोध, वाक्य और प्रमा होते हैं वे सब पृथक्-पृथक् हैं। वाक्य, बोध एवं प्रमा को भ्रान्तिस्वरूप मानने पर प्रमाण के भ्रान्त होने पर प्रमाण और अप्रमाणरूप इष्ट-अनिष्ट बाह्य अर्थ भी भ्रान्त ही होंगे।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं बाह्यार्थे सति नासति।
सत्यानृतव्यवस्थैवं युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥८७॥

अन्वयार्थ—(बाह्यार्थे सति) बाह्यार्थ के होने पर **(बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं)** बुद्धि एवं शब्द में प्रमाणता आती है **(असति न)** नहीं होने पर नहीं **(एवं)** इसी प्रकार **(अर्थाप्त्यनाप्तिषु)** अर्थ की प्राप्ति और अप्राप्ति के निमित्त को लेकर **(सत्यानृतव्यवस्था युज्यते)** सत्य और असत्य की व्यवस्था बनती है।

भावार्थ—बुद्धि और शब्द में प्रमाणता बाह्य अर्थ के होने पर होती है, बाह्य अर्थ के अभाव में नहीं। अर्थ की प्राप्ति होने पर सत्य की व्यवस्था और प्राप्त न होने पर असत्य की व्यवस्था की जाती है।

॥ इति सप्तम परिच्छेद:॥

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम्।
दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥८८॥

अन्वयार्थ—(दैवादेव) दैव अर्थात् भाग्य से ही **(अर्थसिद्धिः चेत्)** अर्थ की सिद्धि होती है ऐसा एकान्त स्वीकार करने पर **(पौरुषतः)** पुरुषार्थ से **(दैवं)** भाग्य **(कथं)** कैसे होगा **(दैवतः चेत्)** यदि दैव से दैव की सिद्धि मानी जाये तो **(अनिर्मोक्षः)** मोक्ष के अभाव का प्रसंग आयेगा और **(पौरुषं निष्फलं भवेत्)** पुरुषार्थ भी निष्फल हो जायेगा।

भावार्थ—यदि दैव से ही अर्थ की सिद्धि होती है तो पुरुषार्थ से दैव की सिद्धि कैसे होगी? और दैव से ही दैव की सिद्धि मानने पर कभी भी मोक्ष नहीं होगा। तब मोक्ष प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना निष्फल होगा।

पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥८९॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि **(पौरुषात् एव सिद्धिः)** पुरुषार्थ से ही अर्थ की सिद्धि होती है ऐसा माना जाये तो **(दैवतः पौरुषं कथं)** दैव से जो पुरुषार्थ की सिद्धि होती हुई दिखाई देती है, वह कैसे होगी? **(पौरुषात् चेत्)** यदि पुरुषार्थ से ही पुरुषार्थ की सिद्धि मानी जाये तो **(सर्वप्राणिषु)** सर्व प्राणियों में **(पौरुषं)** पुरुषार्थ **(अमोघं स्यात्)** सफल होने का प्रसंग प्राप्त होगा।

भावार्थ—यदि पुरुषार्थ से ही अर्थ की सिद्धि होती है तो दैव से पुरुषार्थ की सिद्धि कैसे होगी? और पुरुषार्थ से ही सिद्धि मानने पर सभी प्राणियों का पुरुषार्थ सफल होना चाहिए।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥९०॥

अन्वयार्थ—(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं न)** भाग्य और पुरुषार्थ के निरपेक्षता रूप उभय एकान्त नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इत्यपि)** इस प्रकार **(उक्तिः न युज्यते)** कथन भी नहीं बन सकता।

भावार्थ—स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ भाग्य और पुरुषार्थ का उभयैकात्म्य नहीं बनता है क्योंकि विरोध आता है और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥९१॥

अन्वयार्थ—(अबुद्धिपूर्वापेक्षायां) अबुद्धिपूर्वक हुए कार्य की अपेक्षा में **(इष्टानिष्टं)** इष्ट-अनिष्ट कार्य **(स्वदैवतः)** अपने दैव से हुए हैं ऐसा माना जाता है **(बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायां)** बुद्धिपूर्वक जो कार्य किये जाते हैं इस अपेक्षा में **(इष्टानिष्टं)** इष्ट-अनिष्ट जो कार्य होते हैं **(स्वपौरुषात्)** अपने पुरुषार्थ से हुए हैं, ऐसा माना जाता है।

भावार्थ—किसी को अबुद्धिपूर्वक जो इष्ट और अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति होती हैं, वह अपने भाग्य से होती है और बुद्धिपूर्वक जो इष्ट और अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है वह अपने पुरुषार्थ से होती है।

॥ इति अष्टम परिच्छेद:॥

पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः ॥९२॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि **(परे)** दूसरे प्राणी में **(दुःखात्)** दुःख उत्पन्न करने से **(पापं)** पाप का बंध **(सुखतः)** सुख उत्पन्न करने से **(पुण्यं)** पुण्य का बंध **(ध्रुवं)** नियम से माना जाये तो **(अचेतनाकषायौ च)** अचेतन पदार्थ और कषाय रहित जीव के भी **(निमित्ततः)** सुख-दुःख का निमित्त होने से **(बध्येयातां)** बंध मानने का प्रसंग प्राप्त होगा।

भावार्थ—यदि दूसरों को दुःख देने से पाप का बंध और सुख देने से पुण्य का बंध नियम से होता है तो दूसरों के सुख और दुःख में निमित्त होने से अचेतन पदार्थ और कषाय से रहित जीवों को भी कर्म बंध होना चाहिए।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्ततः ॥९३॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि **(स्वतः)** अपने आप में **(दुःखात्)** दुःख उत्पन्न करने से **(पुण्यं)** पुण्य का बंध **(सुखतः च)** और सुख उत्पन्न करने से **(पापं)** पाप का बंध **(ध्रुवं)** नियम से माना जाये तो **(निमित्ततः)** पुण्य, पाप के निमित्त होने से **(वीतरागः)** वीतराग और **(विद्वान् मुनिः)** विद्वान् मुनिजन **(ताभ्यां)** पुण्य, पाप दोनों से **(युंज्यात्)** बंधे हुए मानना चाहिए।

भावार्थ–यदि अपने को दुःख देने से पुण्य का बंध और सुख देने से पाप का बंध होता है, तो वीतराग और विद्वान् मुनि को भी कर्मबंध होना चाहिए क्योंकि वे भी अपने सुख और दुख में निमित्त होते हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥९४॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषाम्) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं न)** उभय एकान्त भी नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त में **(अवाच्यमिति)** अवाच्य है इस प्रकार **(अपि)** भी **(उक्तिः)** कथन **(न युज्यते)** युक्त नहीं होता है।

भावार्थ–स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण पुण्य-पापरूप उभय एकान्त नहीं बन सकता है और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापास्त्रवौ युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः ॥९५॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(स्वपरस्थं)** अपने और दूसरे में स्थित **(सुखासुखम्)** सुख दुःख **(विशुद्धि-संक्लेशाङ्गं)** विशुद्धि और संक्लेश के अंग हैं तो **(पुण्यपापास्त्रवौ)** पुण्य, पाप का आस्त्रव **(युक्तौ)** युक्त है **(न चेत्)** यदि नहीं हैं तो **(अर्हतः तव)** हे अर्हन्त आपके मत में **(व्यर्थः)** निष्फल है।

भावार्थ–यदि अपने और दूसरों में होने वाला सुख, दुःख विशुद्धि का अंग है, तो पुण्य का आस्त्रव होता है और यदि संक्लेश का अंग है तो पाप का आस्त्रव होता है। हे भगवन्, आपके मत में अपने और दूसरे में स्थित सुख और दुःख विशुद्धि और संक्लेश के कारण नहीं है तो पुण्य और पाप का आस्त्रव व्यर्थ है।

॥ इति नवम् परिच्छेदः॥

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥९६॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(अज्ञानात्)** अज्ञान से **(बंधः)** बंध **(ध्रुवः)** नियम से होता है तो **(ज्ञेयानंत्यात्)** ज्ञेय पदार्थ अनंत होने से **(न केवली)** कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता **(ज्ञानस्तोकात्)** और यदि अल्पज्ञान से **(विमोक्षः चेत्)** मोक्ष होता है ऐसा स्वीकार किया जाये तो **(बहुतः**

अज्ञानात्) बहुत से अज्ञान से **(अन्यथा)** मुक्ति की प्राप्ति न होकर बंध ही प्राप्त होगा।

भावार्थ—यदि अज्ञान से नियम से बंध होता है तो ज्ञेय पदार्थ अनंत होने से कोई भी केवली नहीं हो सकता है और यदि अल्प ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है तो बहुत अज्ञान से बंध की प्राप्ति भी होगी।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥९७॥

अन्वयार्थ—(स्याद्वादन्यायविद्विषाम्) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं न)** उभय का एकान्त भी नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यम्)** अवक्तव्य **(इत्यपि)** इस प्रकार भी **(उक्तिःन युज्यते)** कथन घटित नहीं हो सकता है।

भावार्थ—स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकान्त नहीं बन सकता है। अवाच्यता के एकान्त को भी अंगीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अवाच्यैकान्त में अवाच्य यह शब्द भी प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है।

अज्ञानान्मोहिनो बन्धो नाज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥९८॥

अन्वयार्थ—(मोहिनः) मोह युक्त जीव के **(अज्ञानात्)** अज्ञान से **(बन्धः)** कर्म बंध होता है, **(वीतमोहतः)** मोह रहित के **(अज्ञानात् न)** अज्ञान से कर्म बंध नहीं होता है **(अमोहात्)** मोह रहित **(ज्ञानस्तोकात्)** अल्प ज्ञान से **(मोक्षः स्यात्)** मुक्ति प्राप्त होती है **(मोहिनः)** मोही जीव के **(अन्यथा)** अल्प ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

भावार्थ—मोह सहित अज्ञान से बंध होता है और मोह रहित अज्ञान से बंध नहीं होता है। इसी प्रकार मोह रहित अल्पज्ञान से मोक्ष होता है, किन्तु मोह सहित अल्पज्ञान से मोक्ष नहीं होता है।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्मस्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः ॥९९॥

अन्वयार्थ—(कामादिप्रभवः) कामादि के उत्पाद रूप जो भाव संसार है, वह **(चित्रः)** विचित्र है, वह **(कर्मबन्धानुरूपतः)** कर्म बंध के अनुसार होता है **(तच्च कर्म)** और वह कर्म बंध **(स्वहेतुभ्यः)** अपने-अपने कारणों से होता है **(ते जीवाः)** वे जीव **(शुद्ध्यशुद्धितः)** शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

भावार्थ—इच्छा और नाना प्रकार के कार्यों की उत्पत्ति कर्मबंध के अनुसार होती है और उस कर्म की उत्पत्ति अपने हेतुओं से होती है। जिन्हें कर्मबंध होता है वे जीव शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः ॥१००॥

अन्वयार्थ—**(पाक्यापाक्यशक्तिवत्)** पाक्य एवं अपाक्य शक्ति की तरह **(पुनः ते शुद्ध्यशुद्धी शक्ती)** शुद्धि और अशुद्धि ये दो प्रकार की शक्ति होती हैं **(तयोः व्यक्ती)** उन दोनों की अभिव्यक्ति **(साद्यनादी)** सादि और अनादि है **(स्वभावः)** वस्तु का यह स्वभाव **(अतर्कगोचरः)** तर्क का विषय नहीं है।

भावार्थ—पकने योग्य और न पकने योग्य शक्ति की तरह शुद्धि और अशुद्धि ये दो शक्तियाँ हैं। शुद्धि की व्यक्ति सादि और अशुद्धि की व्यक्ति अनादि है और यह वस्तु का स्वभाव है जो तर्क का विषय नहीं होता है।

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥१०१॥

अन्वयार्थ—हे नाथ! **(ते)** आपके मत में **(तत्त्वज्ञानं प्रमाणम्)** तत्त्वज्ञान प्रमाण है **(युगपत्सर्वभासनम्)** एक साथ सब पदार्थों का अवभासनरूप **(च)** और **(क्रमभावि)** क्रम से होने वाला **(यत् ज्ञानं)** जो तत्त्वज्ञान है। वह **(स्याद्वादनयसंस्कृतं)** स्याद्वाद एवं नय से संस्कारित है।

भावार्थ—हे भगवन्! आपके मत में तत्त्वज्ञान को प्रमाण कहा है। वह तत्त्वज्ञान अक्रमभावी और क्रमभावी के भेद से दो प्रकार का है। जो एक साथ संपूर्ण पदार्थों को जानता है, ऐसा केवलज्ञान अक्रमभावी है तथा जो क्रम से पदार्थों को जानते हैं, ऐसे मति आदि चार ज्ञान क्रमभावी हैं, अक्रमभावी ज्ञान स्याद्वाद रूप होता है किन्तु क्रमभावी ज्ञान स्याद्वाद और नय दोनों रूप होता है।

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः।
पूर्वा वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥१०२॥

अन्वयार्थ—**(आद्यस्य)** आदि का ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान का फल **(उपेक्षा)** उपेक्षा है **(शेषस्य)** शेष अर्थात् मति आदि चार ज्ञानों का फल **(आदानहानधीः)** ग्रहण और त्याग बुद्धि है **(पूर्वा वा)** अथवा पूर्व में कही हुई उपेक्षा भी उनका फल है **(स्वगोचरे वा)** अथवा अपने विषय में **(अज्ञाननाशः)** अज्ञान का नाश होना यह **(सर्वस्य अस्य)** इन सभी ज्ञानों का फल है।

भावार्थ—प्रथम जो केवलज्ञान है, उसका फल उपेक्षा है। अन्य ज्ञानों का फल आदान और हान बुद्धि है। अथवा उपेक्षा भी उनका फल है अपने विषय में अज्ञान का नाश होना सब ज्ञानों का फल है।

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यंप्रतिविशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥१०३॥

अन्वयार्थ—हे नाथ **(तव)** आपके और **(केवलिनामपि)** केवलियों के **(स्यात् निपातः)** स्यात् यह निपात शब्द **(अर्थयोगित्वात्)** अर्थ के साथ संबंधित होने से **(वाक्येषु)** वाक्यों में **(अनेकान्तद्योती)** अनेकान्त का द्योतक **(गम्यं)** गम्य-विवक्षित **(प्रतिविशेषणम्)** अर्थ के प्रति विशेषण माना गया है।

भावार्थ—हे भगवन् आपके मत में स्यात् शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध होने के कारण 'स्यादस्ति पटः' इत्यादि वाक्यों में अनेकांत का द्योतक होता है और गम्य अर्थ का विशेषण होता है। स्यात् शब्द निपात है तथा केवलियों और श्रुतकेवलियों को भी अभिमत है।

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥१०४॥

अन्वयार्थ—**(सर्वथैकान्तत्यागात्)** सर्वथा एकान्त के त्याग से **(स्याद्वादः)** स्याद्वाद होता है **(किंवृत्तचिद्विधिः)** कथंचित् इत्यादि इसके पर्यायवाची शब्द हैं **(सप्तभंगनयापेक्षः)** सप्त भंग और नयों की अपेक्षा वाला है **(हेयादेयविशेषकः)** हेय एवं उपादेय तत्त्व का विशेषक-भेदक है।

भावार्थ—सर्वथा एकान्त के त्याग से ही स्याद्वाद होता है। कथंचित् इत्यादि इसके पर्यायवाची शब्द हैं। सप्तभंग और नयों की यह अपेक्षा वाला एवं हेयोपादेय तत्त्व की विशेष व्यवस्था इसी स्याद्वाद से होती है।

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदःसाक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥१०५॥

अन्वयार्थ—**(सर्वतत्त्वप्रकाशने)** सर्वतत्त्वों का जिनसे प्रकाशन होता है ऐसे **(स्याद्वाद-केवलज्ञाने)** स्याद्वाद और केवलज्ञान में **(साक्षात्)** प्रत्यक्ष **(असाक्षात् च भेदः)** और परोक्षकृत भेद है, **(अन्यतमं हि)** इसके अतिरिक्त ज्ञान **(अवस्तु भवेत्)** अवस्तुरूप हो।

भावार्थ—सर्वतत्त्वों के प्रकाशक स्याद्वाद और केवलज्ञान में प्रत्यक्ष और परोक्षकृत भेद है। जो वस्तु दोनों ज्ञानों में से किसी भी ज्ञान से प्रकाशित नहीं है, वह अवस्तु है।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः ॥१०६॥

अन्वयार्थ—(सधर्मणा एव) सपक्ष के साथ ही **(साधस्य साधर्म्यात्)** साध्य का साधर्म्य से **(अविरोधतः)** बिना किसी विरोध के जो **(स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः)** स्याद्वाद के विषयभूत अर्थ विशेष का व्यंजक होता है वह नय है।

भावार्थ—सपक्ष के साथ ही साध्य का साधर्म्य से बिना किसी विरोध के जो स्याद्वाद के विषयीभूत अर्थ विशेष का व्यंजक होता है, वह नय है।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राट्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा ॥१०७॥

अन्वयार्थ—(अविभ्राट् भावसम्बन्धः) जो अविभ्राट्–अपृथक्भाव सम्बन्ध है **(त्रिकालानां)** और त्रिकालवर्ती **(नयोपनयैकान्तानां)** नयों और उपनयों के एकान्तों का **(समुच्चयः)** समुच्चय है **(द्रव्यमेकमनेकधा)** वही द्रव्य है और वह एक रूप भी तथा अनेक रूप भी है।

भावार्थ—कथंचित् अविष्वक् भाव सम्बन्ध स्वरूप जो त्रिकाल विषयक नयों और उपनयों के एकान्तों का समुच्चय है वही द्रव्य है और वह द्रव्य एक भी है और अनेक भी है।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्याः सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥१०८॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यासमूहो मिथ्या चेत्) यदि मिथ्याभूत एकान्तों का समूह मिथ्या रूप है तो **(मिथ्यैकान्तता नः न अस्ति)** वह मिथ्या एकान्तता हमारे यहाँ नहीं है **(निरपेक्षा नयाः मिथ्याः)** निरपेक्ष नय मिथ्या हैं **(सापेक्षाः)** सापेक्ष नय **(वस्तु)** वस्तु स्वरूप हैं **(तेऽर्थकृत)** वे ही अर्थक्रियाकारी हैं।

भावार्थ—मिथ्याभूत एकान्तों का समुदाय यदि मिथ्या है तो वह मिथ्या एकान्तता हमारे यहाँ नहीं है। निरपेक्ष नय मिथ्या हैं और सापेक्ष नय वस्तुस्वरूप हैं तथा वे ही अर्थ क्रियाकारी हैं।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथान्यथा च सोऽवश्यमविशेष्यत्वमन्यथा ॥१०९॥

अन्वयार्थ—(सः अर्थः) वह अर्थ तत्त्व **(तथा अन्यथा च अवश्यं)** विधि एवं निषेध प्रकार से अवश्य ही समर्थित हुआ है **(विधिना वारणेन वा वाक्येन)** विधि अथवा निषेध वाक्यों के द्वारा, **(नियम्यते)** नियमित किया जाता है **(अन्यथा)** इससे भिन्न मान्यता में **(अविशेष्यत्वं)** कुछ भी विशेषता नहीं आ सकती।

भावार्थ—अर्थ तत्त्व विधि एवं निषेध प्रकार से अवश्य समर्थित हुआ है इसीलिए वह अर्थतत्त्व विधिरूप वाक्य द्वारा अथवा निषेध रूप वाक्य द्वारा नियमित किया जाता है। इससे भिन्न प्रकार की मान्यता में उसमें विशेष्यता नहीं आ सकती है।

तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती।
न सत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथं तत्त्वार्थदेशना ॥११०॥

अन्वयार्थ—**(तदतद्वस्तु)** तत् और अतत् स्वभाव वाली वस्तु है जो **(वाक्)** वचन **(तदेवेति अनुशासती)** विधिस्वरूप का ही प्रतिपादन करता है **(एषा सत्या न)** यह सत्य नहीं है **(मृषावाक्यैः)** मृषा वचनों से **(तत्त्वार्थदेशना कथं)** तत्त्वार्थ देशना कैसे हो सकती है ?

भावार्थ—तत्-अतत् स्वभाववाली वस्तु है और इसी स्वभाववाली वस्तु का प्रतिपादन वाक्य करता है। जब इस प्रकार की व्यवस्था है तब ऐसा कहना कि वचन विधि स्वरूप का ही प्रतिपादन करता है सर्वथा झूठ है। ऐसे मृषा वचनों से तत्त्वार्थ देशना कैसे हो सकती है ?

वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः।
आह च स्वार्थसामान्यं तादृग्वाच्यं खपुष्पवत् ॥१११॥

अन्वयार्थ—**(अन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः)** अन्य वचन के प्रतिपाद्य अर्थ के प्रतिषेध करने में निरंकुश होता हुआ **(स्वार्थसामान्यं च आह)** स्वार्थ सामान्य को कहता है **(वाक्स्वभावः)** यह वचन का स्वभाव है **(तादृग् वाच्यं)** किन्तु सर्वथा निषेधरूप वचन **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प के समान अवस्तु है।

भावार्थ—अन्य वचन के प्रतिपाद्य अर्थ के प्रतिषेध करने में निरंकुश होना और अपने स्वार्थ सामान्य का प्रतिपादन करना यह वचन का स्वभाव है। केवल निषेधमुख से ही वचन अपने अर्थ का प्रतिपादन करता है सो ऐसा कथन ठीक नहीं है। कारण इस प्रकार का वाच्य खपुष्प के समान असत् माना गया है।

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।
अभिप्रेतविशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः ॥११२॥

अन्वयार्थ—**(सामान्यवाग्)** सामान्यवाक् **(विशेषे चेत्)** विशेष का प्रतिपादन करते हैं **(न)** ऐसा मानना ठीक नहीं है **(शब्दार्थो)** अन्यापोहरूप शब्दों का जो अर्थ है **(मृषा हि सा)** वह मिथ्या है **(अभिप्रेतविशेषाप्तेः)** अभिप्रेत अर्थ विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन **(सत्यलांछनः)** सत्य से चिह्नित **(स्यात्कारः)** स्याद्वाद है।

भावार्थ—अस्ति आदि सामान्य वाक्य अन्यापोहरूप विशेष का प्रतिपादन करते हैं, ऐसा

माननना ठीक नहीं है क्योंकि अन्यापोहरूप शब्द का अर्थ नहीं है। अतः अन्यापोह का प्रतिपादन करने वाले वचन मिथ्या है और अभिप्रेत अर्थ विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन स्यात्कार है।

विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधि यत्।
तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः ॥११३॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(विधेयम्)** विधेय है–जिसका विधान किया जाता है **(ईप्सितार्थाङ्गं)** अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का कारण है **(प्रतिषेध्य)** प्रतिषेध्य के साथ **(अविरोधि)** अविरोधी है **(तथैवादेय-हेयत्वं)** उसीप्रकार की वस्तु का आदेय-हेयपना सिद्ध होता है **(इति)** इस प्रकार **(स्याद्वाद-संस्थितिः)** स्याद्वाद की समीचीन सिद्धि होती है ।

भावार्थ–प्रतिषेध्य का अविरोधी जो विधेय है वह अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का कारण है। विधेय को प्रतिषेध्य का अविरोधी होने के कारण ही वस्तु आदेय और हेय है। इस प्रकार से स्याद्वाद की सम्यक्सिद्धि होती है।

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥११४॥

अन्वयार्थ–(हितम्) हित को **(इच्छताम्)** चाहने वालों के लिये **(सम्यक् मिथ्योपदेशार्थ-विशेषप्रतिपत्तये)** सम्यक् और मिथ्या उपदेश में भेदविज्ञान कराने के लिए **(इति)** इस प्रकार **(इयमाप्तमीमांसा)** यह आप्तमीमांसा **(विहिता)** बनायी गई है।

भावार्थ–अपने हित को चाहने वालों के लिए सम्यक् और मिथ्या उपदेश में भेदविज्ञान कराने के लिए यह आप्तमीमांसा बनायी गयी है।

❑ ❑ ❑

कीर्त्या महत्या भुवि वर्द्धमानं त्वां वर्द्धमानं स्तुति-गोचरत्वम्।
निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं विशीर्णदोषाशय-पाश-बन्धम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(भुवि) इस पृथ्वी पर **(विशीर्णदोषाशय-पाश-बन्धं)** दोष और आशय के पाशबन्ध से रहित **(वर्द्धमानं)** ज्ञान से वृद्धिंगत **(महत्या कीर्त्या)** महान् कीर्ति से **(वर्द्धमानं)** बढ़े हुए **(त्वां वीरं)** आप महावीर भगवान् को **(अद्य)** आज **(वयं)** हम सब **(स्तुतिगोचरत्वं)** स्तुति का विषय बनाने के **(निनीषवः स्मः)** अभिलाषी हुए हैं।

याथात्म्यमुल्लङ्घ्य गुणोदयाख्या लोके स्तुतिर्भूरिगुणोदधेस्ते।
अणिष्ठमप्यंशमशक्नुवन्तो वक्तुं जिन त्वां किमिव स्तुयाम ॥२॥

अन्वयार्थ—(याथात्म्यं) यथार्थ का **(उल्लङ्घ्य)** उल्लंघन करके **(गुणोदयाख्या)** गुणों के उदय का कथन करना **(लोके)** लोक में **(स्तुतिः)** स्तुति कहा जाता है। **(भूरिगुणोदधेः)** अनेक गुणों के समुद्र **(जिन)** हे वीर जिनेन्द्र **(ते)** आप **(अणिष्ठं अंशं अपि)** थोड़े भी अंश को **(वक्तुं)** कहने के लिए **(अशक्नुवन्तः)** हम असमर्थ हैं फिर **(किमिव)** किस तरह **(त्वां)** आपकी **(स्तुयाम)** स्तुति करें?

तथापि वैयात्यमुपेत्य भक्त्या स्तोतास्मि ते शक्त्यनुरूपवाक्यः।
इष्टे प्रमेयेऽपि यथास्वशक्ति किन्नोत्सहन्ते पुरुषाः क्रियाभिः ॥३॥

अन्वयार्थ—(तथापि) फिर भी **(वैयात्यं)** धृष्टता को **(उपेत्य)** धारण करके **(भक्त्या)** भक्ति के द्वारा **(शक्त्यनुरूपवाक्यः)** शक्ति के अनुरूप वचनों वाला **(ते)** आपका **(स्तोता अस्मि)** मैं स्तोता हूँ। **(यथास्वशक्ति)** अपनी शक्ति के अनुसार जैसे **(इष्टे प्रमेये अपि)** इष्ट साध्य के होने पर भी **(पुरुषाः)** पुरुष **(क्रियाभिः)** अपनी क्रियाओं प्रयत्नों के द्वारा **(किं न उत्सहन्ते)** क्या उत्साहित नहीं होते हैं।

त्वं शुद्धिशक्त्योरुदयस्य काष्ठां तुलाव्यतीतां जिन शान्तिरूपाम्।
अवापिथ ब्रह्मपथस्य नेता महानितीयत्प्रतिवक्तुमीशाः ॥४॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र भगवान् **(त्वं)** आप **(शुद्धिशक्त्योः)** शुद्धि और शक्ति के **(उदयस्य काष्ठां)** उदय की पराकाष्ठा को **(अवापिथ)** प्राप्त किए हैं **(तुलाव्यतीतां)** वह पराकाष्ठा तुलनारहित है तथा **(शान्तिरूपाम्)** शान्ति स्वरूप है। **(ब्रह्मपथस्य नेता)** आप ब्रह्मापथ के नेता हैं **(महान्)** महान् हैं **(इति)** इस प्रकार **(इयत्)** इतना ही **(प्रतिवक्तुं)** आपके प्रति कहने के लिए

(ईशाः) हम समर्थ हैं।

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥५॥

अन्वयार्थ–(त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेः) आपके शासन की एकाधिपतित्व रूप वैभव में प्रभुता की शक्ति के **(अपवादहेतुः)** अपवाद में कारण **(कलिः कालः वा)** या तो कलिकाल है, **(वा)** या **(श्रोतुः)** श्रोता का **(कलुषाशयः)** कलुष आशय है **(वा)** या **(प्रवक्तुः)** वक्ता के **(वचनानयः)** नय निरपेक्ष वचन हैं।

दयादमत्यागसमाधिनिष्ठं नयप्रमाणप्रकृताञ्जसार्थम्।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥६॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे वीर जिनेन्द्र **(त्वदीयं मतम्)** आपका मत **(अद्वितीयम्)** अद्वितीय है **(दया-दम-त्याग-समाधि-निष्ठम्)** दया, दम, त्याग और समाधि से पूर्ण है **(नय-प्रमाण-प्रकृताञ्जसार्थम्)** नय और प्रमाण से पदार्थों का परमार्थ से जिसमें निश्चय होता है **(अन्यैः अखिलैः प्रवादैः)** अन्य सभी प्रवादियों के द्वारा **(अधृष्यम्)** जो जीता नहीं जा सकता है।

अभेदभेदात्मकमर्थतत्त्वं तव स्वतन्त्रान्यतरत् खपुष्पम्।
अवृत्तिमत्त्वात्समवायवृत्तेः संसर्गहानेः सकलार्थहानिः ॥७॥

अन्वयार्थ–(तव) हे भगवन् आपका **(अर्थतत्त्वम्)** अर्थ तत्त्व **(अभेद-भेदात्मकम्)** अभेद और भेदात्मक है **(स्वतन्त्रान्यतरत्)** दोनों में से एक को स्वीकार करना **(खपुष्पम्)** आकाश पुष्प के समान हैं। उनमें **(अवृत्तिमत्त्वात्)** अवृत्तिमान् **(समवायवृत्तेः)** समवाय की वृत्ति मानने से **(संसर्गहानेः)** संसर्ग की हानि होगी जिससे **(सकलार्थ-हानिः)** समस्त अर्थ की हानि होगी।

भावेषु नित्येषु विकारहानेर्न कारकव्यापृतकार्ययुक्तिः।
न बन्धभोगौ न च तद्विमोक्षः समन्तदोषं मतमन्यदीयम् ॥८॥

अन्वयार्थ–(नित्येषु भावेषु) पदार्थों को नित्य मानने में **(विकारहानेः)** विकार की हानि होने से **(कारक-व्यापृत-कार्ययुक्तिः)** कारकों के व्यापार और कार्य की योजना **(न)** नहीं होती है जिससे **(बन्धभोगौ न)** बंध और भोग नहीं बनेंगे **(तद्विमोक्षः)** और उनसे मुक्ति **(न च)** भी नहीं होगी इसलिए **(अन्यदीयं मतं)** अन्यों का मत **(समन्तदोषं)** समस्त दोषों वाला है।

अहेतुकत्वं प्रथितः स्वभावस्तस्मिन् क्रियाकारकविभ्रमः स्यात्।
आबालसिद्धेर्विविधार्थसिद्धिर्वादान्तरं किं तदसूयतां ते ॥९॥

अन्वयार्थ–यदि नित्य पदार्थों में विकारी होने का **(स्वभावः)** स्वभाव **(अहेतुकत्वं प्रथितः)**

बिना किसी हेतु के प्रसिद्ध है तो **(तस्मिन्)** उसमें **(क्रियाकारक-विभ्रमः)** क्रियाकारक का विभ्रम **(स्यात्)** होगा। यदि **(आबालसिद्धेः)** बाल गोपाल में सिद्धि हो जाने से **(विविधार्थ-सिद्धिः)** अनेक अर्थ की सिद्धि होती है तो **(ते)** आपके **(असूयतां)** विद्वेषियों को **(किं तत् वादान्तरं)** क्या वह वादान्तर नहीं होगा?

येषामवक्तव्यमिहात्मतत्त्वं देहादनन्यत्वपृथक्त्वक्लृप्तेः।
तेषां ज्ञतत्त्वेऽनवधार्यतत्त्वे का बन्धमोक्षस्थितिरप्रमेये ॥१०॥

अन्वयार्थ—(इह) इसलोक में **(आत्मतत्त्वं)** आत्म तत्त्व **(देहात्)** शरीर से **(अनन्यत्व-पृथक्त्वक्लृप्तेः)** अभिन्नत्व और भिन्नत्व की कल्पना से **(येषाम्)** जिनको **(अवक्तव्यम्)** अवक्तव्य है **(तेषाम्)** उनको **(ज्ञतत्त्वे)** आत्म तत्त्व का **(अनवधार्य-तत्त्वे)** स्वरूप अवधारित नहीं होने पर **(अप्रमेये)** ज्ञान का विषय नहीं होने से **(बंध-मोक्ष-स्थितिः)** बंध और मोक्ष की स्थिति **(का)** क्या होगी?

हेतुर्न दृष्टोऽत्र न चाप्यदृष्टो योऽयं प्रवादः क्षणिकात्मवादः।
न ध्वस्तमन्यत्र भवे द्वितीये संतानभिन्ने नहि वासनास्ति ॥११॥

अन्वयार्थ—प्रथम क्षण में **(ध्वस्तम्)** नष्ट हुआ चित्त **(अन्यत्र)** अन्यत्र **(द्वितीये भवे)** दूसरे भव क्षण में **(न)** नहीं रहता **(योऽयं)** जो यह **(क्षणिकात्मवादः)** क्षणिकवाद है वह **(प्रवादः)** प्रलाप मात्र है **(अत्र)** यहां **(न दृष्टः)** न दृष्ट-प्रत्यक्ष **(न चाप्यदृष्टः)** और न अदृष्ट-अनुमान **(हेतुः)** बनता है, क्योंकि **(सन्तानभिन्ने)** सन्तान भिन्न में **(न हि वासनास्ति)** वासना नहीं रहती है।

तथा न तत्कारणकार्यभावा निरन्वयाः केन समानरूपाः।
असत् खपुष्पं नहि हेत्वपेक्षं दृष्टं न सिद्ध्यत्युभयोरसिद्धम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(तथा) उसी प्रकार **(तत्कारणकार्यभावा)** क्षणिकात्मवाद में कारण-कार्य भाव **(न)** नहीं बनता है **(निरन्वयाः)** वहाँ चित्त क्षण निरन्वय होते हैं **(केन समानरूपाः)** इसलिए किससे समान रूप वाले हों? **(असत् खपुष्पम्)** असत् को आकाश पुष्प के समान **(हेत्वपेक्षम्)** हेतु की अपेक्षा **(न हि)** नहीं होती है। **(उभयोः असिद्धम्)** वादी-प्रतिवादी दोनों को हेतु असिद्ध है अतः **(दृष्टम्)** दृष्ट हेतु भी **(न सिध्यति)** सिद्ध नहीं होता है ।

नैवास्ति हेतुः क्षणिकात्मवादे न सन्नसन्वा विभवादकस्मात्।
नाशोदयैकक्षणता च दृष्टा सन्तानभिन्नक्षणयोरभावात् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(क्षणिकात्मवादे) क्षणिक आत्मवाद में **(विभवात् अकस्मात्)** विभव और अकस्मात का प्रसंग आने से **(न सत्)** न सत् **(वा)** और **(न असत्)** न असत् **(हेतुः नैव अस्ति)**

हेतु ही नहीं बनता है तथा **(संतान-भिन्न क्षणयोः अभावात्)** संतान भिन्न क्षणों में **(नाशोदयैकक्षणता च अभावात् दृष्टा)** विनाश और उत्पाद की एक क्षणता का अभाव देखा जाता है।

कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगौ स्यातामसंचेतितकर्म च स्यात्।
आकस्मिकेऽर्थे प्रलयस्वभावे मार्गो न युक्तो वधकश्च न स्यात् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अर्थे प्रलयस्वभावे) पदार्थ का प्रलय स्वभाव **(आकस्मिके)**अचानक मानने पर **(कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगौ)** किए हुए कर्म का विनाश और नहीं किए कर्म का भोग **(स्यातां)** होगा **(असंचेतितकर्म च)** कर्म असंचेतित अविचारित **(स्यात्)** होगा **(मार्गः न युक्तः)** मार्ग उचित नहीं होगा **(बधकः च न स्यात्)** कोई किसी का बध करने वाला नहीं होगा।

न बन्धमोक्षौ क्षणिकैकसंस्थौ न संवृतिः सापि मृषास्वभावा।
मुख्यादृते गौणविधिर्न दृष्टो विभ्रान्तदृष्टिस्तवदृष्टितोऽन्या ॥१५॥

अन्वयार्थ—(क्षणिकैकसंस्थौ) क्षणिक एक चित्त में स्थिति **(बन्धमोक्षौ न)** बन्ध और मोक्ष नहीं बनते **(संवृतिः न)** संवृत्ति से बंध मोक्ष की स्थिति नहीं बनती, क्योंकि **(सापि)** वह संवृति भी **(मृषास्वभावा)** झूठ स्वभाव वाली है। **(मुख्यादृते)** मुख्य के विना **(गौण विधिः)** गौण विधि **(न दृष्टः)** नहीं देखी जाती है। **(तव)** आपकी **(दृष्टितः)** दृष्टि से **(अन्या)** अन्य दृष्टि **(विभ्रान्तदृष्टिः)** भ्रान्त दृष्टि है।

प्रतिक्षणं भङ्गिषु तत्पृथक्त्वान्न मातृघाती स्वपतिः स्वजाया।
दत्तग्रहो नाधिगतस्मृतिर्न न क्त्वार्थसत्यं न कुलं न जातिः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(भङ्गिषु) क्षणभंगुर पदार्थों में **(प्रतिक्षणं)** प्रत्येक क्षण में **(तत्पृथक्त्वात्)** उस पदार्थ की भिन्नता होने से **(मातृघाती)** कोई मातृघाती **(स्वपतिः)** अपना पति **(स्वजाया)** अपनी स्त्री **(न)** नहीं होगी **(दत्तग्रहो न)** दिये हुए धन पुनः ग्रहण करने वाला नहीं होगा **(अधिगतस्मृतिः न)** ग्रहण किये हुए की स्मृति नहीं रहेगी **(क्त्वार्थसत्यं न)** क्त्वा प्रत्यय का जो अर्थ है वह सत्य नहीं होगा **(कुलम् न)** न कोई कुल होगा **(जातिः न)** कोई जाति होगी।

न शास्तृशिष्यादिविधिव्यवस्था विकल्पबुद्धिर्वितथाखिला चेत्।
अतत्त्वतत्त्वादिविकल्पमोहे निमज्जतां वीतविकल्पधीः का ॥१७॥

अन्वयार्थ—(शास्तृ-शिष्यादि-विधि-व्यवस्था) शास्ता शिष्य आदिक स्वरूप की व्यवस्था **(न)** नहीं होगी **(अखिला विकल्पबुद्धिः)** पूरी विकल्प बुद्धि **(चेत्)** यदि **(वितथा)** झूठी है तो **(अतत्त्वतत्त्वादि-विकल्प-मोहे)** अतत्त्व और तत्त्व आदि विकल्पों के मोह में **(निमज्जतां)** पड़े हुए आपकी **(वीतविकल्पधीः)** निर्विकल्प बुद्धि **(का)** कौन-सी है ?

अनर्थिका साधनसाध्यधीश्चेद्विज्ञानमात्रस्य न हेतुसिद्धिः।
अथार्थवत्त्वं व्यभिचारदोषो न योगिगम्यं परवादिसिद्धम् ॥१८॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(साधन-साध्यधीः)** साधन-साध्य की बुद्धि **(अनर्थिका)** निष्प्रयोजनीय है तो **(विज्ञानमात्रस्य)** विज्ञान मात्र की **(हेतुसिद्धिः)** हेतु से सिद्धि **(न)** नहीं हो सकती है **(अथ)** यदि **(अर्थवत्त्वम्)** प्रयोजन सहित है तो **(व्यभिचारदोषः)** व्यभिचार दोष आता है, वह विज्ञान **(योगिगम्यम्)** यदि योगियों के गम्य है तो **(परवादिसिद्धं न)** वह परवादियों को सिद्ध नहीं हो सकता है।

तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पैर्विश्वाभिलापास्पदतामतीतम्।
न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगद्यं सुषुप्त्यवस्थं भवदुक्तिबाह्यम् ॥१९॥

अन्वयार्थ– जो **(तत्त्वम्)** तत्त्व **(सकलैः विकल्पैः)** सभी विकल्पों से **(विशुद्धम्)** शून्य है **(विश्वा-भिलापा-स्पदताम् अतीतम्)** समस्त कथन प्रकारों के आश्रय से रहित है, वह तत्त्व **(स्वस्य वेद्यं न)** स्वयं संवेदन योग्य नहीं है **(न च तत् निगद्यम्)** न ही वह कहने योग्य है **(भवद्-उक्ति-बाह्यम्)** हे भगवन्! आपकी देशना से बाह्य (दूर) **(सुषुप्त्यवस्थम्)** तत्त्व सुषुप्त अवस्था में है।

मूकात्मसंवेद्यवदात्मवेद्यं तन्म्लिष्टभाषाप्रतिमप्रलापम्।
अनङ्गसञ्ज्ञं तदवेद्यमन्यैःस्यात् त्वद्द्विषां वाच्यमवाच्यतत्त्वम् ॥२०॥

अन्वयार्थ–जो **(आत्मवेद्यम्)** आत्म संवेदन **(मूकात्म-संवेद्यवत्)** मूक व्यक्ति के संवेदन की तरह है **(तत्)** वह संवेदन **(म्लिष्टभाषा-प्रतिम-प्रलापम्)** अस्पष्ट भाषा के समान प्रलाप मात्र है।**(अनंगसंज्ञम्)** अंग संज्ञा से रहित **(तत्)** वह संवेदन **(अन्यैः अवेद्यम्)** अन्य से वेदन योग्य नहीं है **(त्वद्द्विषाम्)** आपसे द्वेष रखने वलों के वह **(वाच्यं)** योग्य तत्त्व भी **(अवाच्य तत्त्वं)** अवाच्य है।

अशासदञ्जांसि वचांसि शास्ता शिष्याश्च शिष्टा वचनैर्न ते तैः।
अहो इदं दुर्गतमं तमोऽन्यत् त्वया विना श्रायसमार्य किं तत् ॥२१॥

अन्वयार्थ–(शास्ता) सुगत ने **(अंजांसि वचांसि)** निर्दोष वचन **(अशासत्)** कहे **(च तैः वचनैः)** और उन वचनों के द्वारा **(ते शिष्याः)** वे शिष्य **(शिष्टा न)** शिक्षित नहीं हुये। **(अहो)** आश्चर्य है **(इदं तमः)** यह अंधकार **(अन्यत्)** कोई दूसरा ही **(दुर्गतमम्)** अलंघनीय (दुर्ग) है। **(आर्य!)** हे पूज्य **(त्वया विना)** आपके बिना **(किं तत् श्रायसम्)** क्या वह कल्याणप्रद है ?

प्रत्यक्षबुद्धिः क्रमते न यत्र तल्लिङ्गगम्यं न तदर्थलिङ्गम्।
वाचो न वा तद्विषयेण योगः का तद्गतिः कष्टमशृण्वतां ते ॥२२॥

अन्वयार्थ—(यत्र) जिस विषय में **(प्रत्यक्षबुद्धिः)** प्रत्यक्षज्ञान **(न क्रमते)** कार्य नहीं करता **(तत् लिङ्गगम्यं)** वह पदार्थ किसी हेतु के द्वारा भी जानने योग्य माना जाये तो **(तदर्थ लिङ्गं न)** उस विषय में अर्थ लिङ्ग संभव नहीं है **(वा)** अथवा **(वाचः)** वचनों का **(तद्विषयेण योगः न)** उस विषय के साथ कोई योग नहीं बनता है। **(तत् का गतिः)** उसकी क्या गति? अतः **(ते)** आपके **(अशृण्वताम्)** नहीं सुनने वाले **(कष्टम्)** कष्ट रूप हैं।

रागाद्यविद्यानलदीपनं च विमोक्षविद्यामृतशासनं च।
न भिद्यते संवृतिवादिवाक्यं भवत्प्रतीपं परमार्थशून्यम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(संवृति-वादि-वाक्यम्) संवृतिवादियों के वचन **(रागाद्यविद्यानलदीपनं च)** राग आदि अविद्यारूपी अग्नि को बढ़ाने वाला है **(विमोक्षविद्यामृतशासनं च)** और मोक्ष विद्या का अमृत शासन भी है **(न भिद्यते)** ये दोनों बातें भेद को प्राप्त नहीं है। **(भवत्प्रतीपम्)** हे भगवान् आपके विपरीत **(परमार्थशून्यम्)** परमार्थ शून्य है।

विद्याप्रसूत्यै किल शील्यमाना भवत्यविद्या गुरुणोपदिष्टा।
अहो त्वदीयोक्त्यनभिज्ञमोहो यज्जन्मने यत्तदजन्मने तत् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(गुरुणोपदिष्टा) गुरु के द्वारा कही **(अविद्या)** अविद्या भी **(किल)** निश्चय से **(शील्यमाना)** अभ्यास को प्राप्त हुई **(विद्या-प्रसूत्यै)** विद्या की उत्पत्ति के लिए **(भवति)** होती है **(अहो)** आश्चर्य है कि **(त्वदीयोक्त्यनभिज्ञ-मोहः)** हे वीर भगवान् आपकी उक्ति से अनभिज्ञ मोह **(यत् जन्मने)** जो इस जन्म के लिए था **(यत् तत् अजन्मने तत्)** ठीक वही मोह जन्म से रहित होने के लिए भी है।

अभावमात्रं परमार्थवृत्तेः सा संवृतिः सर्वविशेषशून्या।
तस्या विशेषौ किल बन्धमोक्षौ हेत्वात्मनेति त्वदनाथवाक्यम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(परमार्थवृत्तेः) परमार्थ वृत्ति से **(अभावमात्रम्)** अभाव मात्र तत्त्व है। **(सा)** वह परमार्थवृत्ति **(संवृतिः)** संवृति रूप है **(सर्वविशेषशून्या)** संवृत्ति सभी विशेषों से शून्य है **(तस्याः)** उस संवृत्ति के **(विशेषौ)** विशेष ही **(बंधमोक्षौ)** बंध, मोक्ष **(विशेषौ)** विशेष हैं, वे **(किल)** निश्चय से **(हेत्वात्मना)** हेत्वात्मक हैं **(इति)** इस प्रकार **(त्वदनाथवाक्यम्)** के वचन उनके हैं जिनके आप नाथ नहीं हैं।

व्यतीतसामान्यविशेषभावाद् विश्वाभिलापार्थविकल्पशून्यम्।
खपुष्पवत्स्यादसदेव तत्त्वं प्रबुद्धतत्त्वाद्भवतः परेषाम् ॥२६॥

अन्वयार्थ–(भवतः) आपसे **(प्रबुद्धतत्त्वात्)** प्रबुद्ध तत्त्व से अन्य **(परेषाम्)** दूसरों का **(तत्त्वम्)** तत्त्व **(व्यतीत-सामान्य-विशेष-भावाद्)** सामान्य-विशेष भावों से रहित होने के कारण **(विश्वाभिलापार्थ-विकल्पशून्यम्)** समस्त शब्दार्थ के विकल्पों से शून्य **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प के समान **(असत् एव स्यात्)** असत् ही है।

अतत्स्वभावेऽप्यनयोरुपायाद् गतिर्भवेत्तौ वचनीयगम्यौ।
सम्बन्धिनौ चेन्न विरोधि दृष्टं वाच्यं यथार्थं न च दूषणं तत् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(अतत्स्वभावे अपि) यदि शून्य स्वभाव के होने पर भी **(अनयोः)** इन बंध और मोक्ष दोनों की **(उपायात्)** उपाय से **(गतिः)** गति **(भवेत्)** हो **(तौ)** दोनों **(वचनीयगम्यौ)** वचनीय और गम्य है **(सम्बन्धिनौ)** सम्बन्धी हैं **(चेत् न)** तो यह बात ठीक नहीं है **(विरोधि दृष्टम्)** विरोध देखा जाता है, जो **(यथार्थं)** यथार्थ **(वाच्यं)** वाच्य होता है **(तत्)** वह **(न च दूषणं)** दूषण नहीं है।

उपेयतत्त्वानभिलाप्यतावदुपायतत्त्वानभिलाप्यता स्यात्।
अशेषतत्त्वानभिलाप्यतायां द्विषां भवद्युक्त्यभिलाप्यतायाः ॥२८॥

अन्वयार्थ–(भवद् युक्त्यभिलाप्यतायाः) आपकी युक्ति में अभिलाप्यता के **(द्विषां)** जो द्वेषी हैं उनके मत में **(अशेष-तत्त्वानभिलाप्यतायां)** समस्त तत्त्वों की अनभिलाप्यता हो जाने पर **(उपेय-तत्त्वानभिलाप्यतावत्)** उपेय तत्त्व की अनभिलाप्यता की तरह **(उपायतत्त्वानभि-लाप्यता स्यात्)** उपाय तत्त्व की अनभिलाप्यता हो जाएगी।

अवाच्यमित्यत्र च वाच्यभावादवाच्यमेवेत्ययथाप्रतिज्ञम्।
स्वरूपतश्चेत् पररूपवाचि स्वरूपवाचीति वचो विरुद्धम् ॥२९॥

अन्वयार्थ–(अवाच्यं एव) इस प्रकार तत्त्व अवाच्य ही है, ऐसी मान्यता में **(इति)** ऐसा कहना **(अयथा प्रतिज्ञम्)** प्रतिज्ञा के विरुद्ध है क्योंकि **(अवाच्यं इति अत्र)** अवाच्य इस पद में ही **(च वाच्य भावात्)** वाच्य का भाव है ।**(चेत्)** यदि तत्त्व **(स्वरूपतः)** स्वरूप से अवाच्य है तो भी यह कथन प्रतिज्ञा विरुद्ध है **(पररूपवाचि)** क्योंकि तत्त्व पर रूप से वाच्य है तो **(इति)** इस प्रकार **(स्वरूपवाचीति)** तत्त्व स्वरूप वाची है **(इति)** इस प्रकार के **(वचो विरुद्धम्)** वचन विरुद्ध हैं।

सत्यानृतं वाप्यनृतानृतं वाप्यस्तीह किं वस्त्वतिशायनेन।
युक्तं प्रतिद्वन्द्व्यनुबन्धिमिश्रं न वस्तु तादृक् त्वदृते जिनेदृक् ॥३०॥

अन्वयार्थ—(सत्यानृतं वा अपि) कोई वचन सत्यानृत हैं **(अनृतानृतं वा अपि)** कुछ वचन अनृतानृत हैं **(प्रतिद्वन्द्वि-अनुबन्धिमिश्रं)** ये क्रमशः प्रतिद्वन्द्वी से मिश्र हैं और अनुबन्धि से मिश्र हैं **(इह)** आपके मत में **(वस्तु अतिशायनेन)** वस्तु के अतिशायन से **(ईदृक्)** इस प्रकार के वचन हैं **(जिन)** हे जिन! **(त्वद् ऋते)** आपके बिना अन्य मत में **(किं)** क्या **(युक्तं अस्ति)** वचन युक्त हो सकते है? अर्थात् नहीं हो सकते हैं **(न वस्तु तादृक्)** क्योंकि वस्तु उस प्रकार की नहीं है।

सहक्रमाद्वा विषयाल्पभूरिभेदेऽनृतं भेदि न चात्मभेदात्।
आत्मान्तरं स्याद्भिदुरं समं च स्याच्चानृतात्मानभिलाप्यता च ॥३१॥

अन्वयार्थ—(सहक्रमात् वा) युगपत् और क्रम की अपेक्षा से **(विषयाल्पभूरिभेदे)** विषय के अल्प और अधिक भेद होने पर **(अनृतं)** झूठ **(भेदि)** भेद वाला होता है **(न च आत्मभेदात्)** आत्मभेद से नहीं। **(आत्मान्तरं)** जो अनृत आत्मान्तर है वह **(भिदुरं समं च स्यात्)** भेद स्वभाव और अभेद स्वभाव वाला है **(अनृतात्मा च)** इसके अलावा अनृतात्मा **(अनभिलाप्यता)** अवक्तत्यता को **(स्यात्)** प्राप्त है।

न सच्च नासच्च न दृष्टमेकमात्मान्तरं सर्वनिषेधगम्यम्।
दृष्टं विमिश्रं तदुपाधिभेदात् स्वप्नेऽपि नैतत् त्वदृषेः परेषाम् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(न सत् च) तत्त्व न सर्वथा सत् रूप है **(न असत् च)** न सर्वथा असत् रूप है और **(न)** न **(सर्वनिषेधगम्यम्)** सभी धर्मों का निषेध **(एकम्)** एक **(आत्मान्तरं)** आत्मान्तररूप **(दृष्टं)** देखा गया है। **(तदुपाधिभेदात्)** वह उपाधि के भेद से **(विमिश्रं)** परस्परापेक्ष रूप **(दृष्टं)** देखा गया है **(त्वद् ऋषेः)** आप ऋषि से भिन्न **(परेषां)** दूसरे मत वालों के यहाँ **(एतत्)** यह तत्त्व **(स्वप्ने अपि)** स्वप्न में भी **(न)** नहीं है।

प्रत्यक्षनिर्देशवदप्यसिद्धमकल्पकं ज्ञापयितुं ह्यशक्यम्।
विना च सिद्धेर्न च लक्षणार्थो न तावकद्वेषिणि वीर सत्यम् ॥३३॥

अन्वयार्थ—(प्रत्यक्षनिर्देशवद्) प्रत्यक्ष के द्वारा निर्देश को प्राप्त है **(अकल्पकं)** निर्विकल्प तत्त्व **(अप्यसिद्धं)**भी असिद्ध है, क्योंकि **(ज्ञापयितुं हि अशक्यम्)** उसे तो किसी को ज्ञात कराना ही अशक्य है **(सिद्धेः बिना च)** और प्रत्यक्ष की सिद्धि के बिना **(लक्षणार्थः च न)** लक्षणार्थ नहीं बनता है **(वीर)** हे वीर भगवन् **(तावकद्वेषिणि)** आपसे द्वेष रखने वालों में **(सत्यम् न)** सत्य घटित नहीं होता है।

कालान्तरस्थे क्षणिके ध्रुवे वापृथक् पृथक्त्वावचनीयतायाम्।
विकारहानेर्न च कर्तृकार्ये वृथा श्रमोऽयं जिन विद्विषां ते ॥३४॥

अन्वयार्थ–(कालान्तरस्थे) पदार्थ की कालांतर स्थिति में **(अपृथक् पृथक्त्वाऽवचनीय-तायाम्)** अभिन्न या भिन्न या अनिवर्चनीयता हो जाने पर **(क्षणिके ध्रुवे वा)** क्षणिक एकान्त या नित्य एकान्त में **(विकारहाने:)** विकार का अभाव होने से **(कर्तृकार्ये च न)** कर्त्ता और कार्य नहीं बनते हैं **(जिन)** हे जिन! **(ते)** आपके **(विद्विषां)** द्वेषियों का **(अयम्)** यह **(श्रम:)** परिश्रम **(वृथा)** व्यर्थ है।

मद्याङ्गवद्भूतसमागमे ज्ञ: शक्त्यन्तरव्यक्तिरदैवसृष्टि:।
इत्यात्मशिश्नोदरपुष्टितुष्टैर्निर्ह्रीभयैर्हा मृदव: प्रलब्धा: ॥३५॥

अन्वयार्थ–(मद्यांगवत्) मद्य के अंगों की तरह **(भूतसमागमे)** भूतों का समागम होने पर **(ज्ञ:)** चेतनाशक्ति उत्पन्न होती है **(शक्त्यन्तरव्यक्ति:)** यह अन्य शक्ति की अभिव्यक्ति है **(अदैवसृष्टि:)** यह कोई दैव सृष्टि नहीं है **(इति)** इस प्रकार **(आत्मशिश्नोदरपुष्टितुष्टै:)** अपने शिश्न (लिंग) तथा उदर की पुष्टि में संतुष्ट रहने वाले **(निर्ह्रीभयै:)** निर्लज्ज और निर्भीक लोगों ने **(हा)** हा! खेद है कि **(मृदव:)** भोले प्राणियों को **(प्रलब्धा:)** ठगा है।

दृष्टेऽविशिष्टे जननादिहेतौ विशिष्टता का प्रतिसत्त्वमेषाम्।
स्वभावत: किं न परस्य सिद्धिरतावकानामपि हा प्रपात: ॥३६॥

अन्वयार्थ–(जननादिहेतौ) चैतन्य की या भूतों की उत्पत्ति का कारण **(अविशिष्टे)** सामान्य **(दृष्टे)** देखे जाने पर **(प्रतिसत्त्वं)** प्रत्येक प्राणी में **(का विशिष्टता)** क्या विशेषता बन सकती है? **(स्वभावत:)** यदि विशिष्टता स्वभाव से है तो **(परस्य सिद्धि:)** आत्म तत्त्व की सिद्धि **(किं न)** स्वभाव से क्यों नहीं होवे? **(अतावकानाम्)** जो आपके मत में नहीं ऐसे चार्वाकों का **(अपि)** भी **(हा!)** हाय **(प्रपात:)** पतन हुआ है।

स्वच्छन्दवृत्तेर्जगत: स्वभावादुच्चैरनाचारपथेष्वदोषम्।
निर्घुष्य दीक्षासममुक्तिमानास्त्वदृष्टिबाह्या वत विभ्रमन्ति ॥३७॥

अन्वयार्थ–(जगत:) संसार की **(स्वभावात्)** स्वभाव से **(स्वच्छन्दवृत्ते:)** स्वच्छन्द-वृत्ति होने से **(उच्चै:)** बहुत अधिक **(अनाचारपथेषु)** अनाचार मार्गों में **(अदोषं)** कोई दोष नहीं है, ऐसी **(निर्घुष्य)** घोषणा करके **(दीक्षासममुक्तिमाना:)** दीक्षा के साथ ही मुक्ति मानने वाले **(त्वद्-दृष्टि-बाह्या:)** आपके दर्शन से बाह्य **(विभ्रमन्ति)** संसार भ्रमण करते हैं **(वत)** यह खेद की बात है।

प्रवृत्तिरक्तैः शमतुष्टिरिक्तैरुपेत्य हिंसाभ्युदयाङ्गनिष्ठा।
प्रवृत्तितः शान्तिरपि प्ररूढं तमः परेषां तव सुप्रभातम् ॥३८॥

अन्वयार्थ—(प्रवृत्तिरक्तैः) प्रवृत्ति में लीन रहने वाले, **(शम-तुष्टि-रिक्तैः)** शान्ति, सन्तुष्टि से शून्य लोगों के द्वारा **(उपेत्य)** प्रवृत्ति को अपनाकर **(हिंसा)** हिंसा को **(अभ्युदयाङ्ग-निष्ठा)** अभ्युदय का अंग मानने की निष्ठा है **(प्रवृत्तितः)** प्रवृत्ति से **(शान्तिः)** शान्ति होती है, **(अपि)** यह भी **(परेषां)** दूसरों का **(तमः)** अन्धकार **(प्ररूढं)** प्रचलित है अतः **(तव)** आपका मत **(सुप्रभातं)** सुप्रभात है।

शीर्षोपहारादिभिरात्मदुःखैर्देवान् किलाराध्य सुखाभिगृद्धाः।
सिद्ध्यन्ति दोषापचयानपेक्षा युक्तं च तेषां त्वमृषिर्न येषाम् ॥३९॥

अन्वयार्थ—(आत्म-दुःखैः) आत्मा को दुःख देने वाले **(शीर्षोपहारादिभिः)** सिर का उपहार आदि के द्वारा **(देवान्)** देवों की **(आराध्य)** आराधना करके **(सुखाभिगृद्धाः)** सुख के लोलुपी **(दोषाऽपचयाऽनपेक्षा)** दोषों के विनाश की अपेक्षा नहीं रखने वाले **(सिद्ध्यन्ति)** सिद्धि को प्राप्त करते हैं **(किल)** निश्चित ही **(तेषां च)** यह बात उन्हीं के लिए **(युक्तं)** उचित है **(येषां)** जिनके **(ऋषिः)** गुरु **(त्वं)** आप **(न)** नहीं हैं।

सामान्यनिष्ठा विविधा विशेषाः पदं विशेषान्तरपक्षपाति।
अन्तर्विशेषान्तर्वृत्तितोऽन्यत् समानभावं नयते विशेषम् ॥४०॥

अन्वयार्थ—(विविधाः विशेषाः) अनेक प्रकार के विशेष **(सामान्य-निष्ठाः)** सामान्य में लीन हैं **(पदं)** पद **(विशेषान्तरपक्षपाति)** विशेषान्तर को स्वीकार करने वाला होता है। **(अन्तर्विशेषान्तर्वृत्तितः)** विशेषान्तरों के अन्तर्गत पद की वृत्ति होने से **(अन्यत्)** अन्य पद **(विशेषं)** विशेष को **(समानभावं)** सामान्य रूप में **(नयते)** प्राप्त कराता है।

यदेवकारोपहितं पदं तदस्वार्थतः स्वार्थमवच्छिनत्ति।
पर्यायसामान्यविशेषसर्वं पदार्थहानिश्च विरोधिवत्स्यात् ॥४१॥

अन्वयार्थ—(यत्पदं) जो पद **(एवकारोपहितं)** एवकार से युक्त है **(तद्)** वह **(अस्वार्थतः)** अस्वार्थ से (अजीवत्व से) **(स्वार्थम्)** स्वार्थ को (जीवत्व को) **(अवच्छिनत्ति)** अलग करता है और **(पर्याय-सामान्य-विशेषसर्वं)** पर्याय, सामान्य, विशेष इन सबको भी अलग करता है **(च पदार्थहानिः)** इससे पदार्थ की हानि वैसे ही होती है **(विरोधिवत्)** जैसे विरोधी अजीवत्व की हानि **(स्यात्)** होती है।

अनुक्ततुल्यं यदनेवकारं व्यावृत्त्यभावान्नियमद्वयेऽपि।
पर्यायभावेऽन्यतरप्रयोगस्तत्सर्वमन्यच्युतमात्महीनम् ॥४२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो पद **(अनेवकारं)** एवकार से रहित है वह **(अनुक्त-तुल्यं)** नहीं कहे हुए के समान है **(नियमद्वयेऽपि)** नियम द्वय के होने पर भी **(व्यावृत्यभावात्)** व्यावृत्ति का (प्रतिपक्ष का) अभाव होता है **(पर्यायभावे)** पर्यायभाव के होने पर **(अन्यतरप्रयोग:)** किसी एक पद का प्रयोग हो सकता है **(तत्)** जिससे वह वस्तु **(सर्वं)** सम्पूर्ण ही **(अन्यच्युतं)** अन्य प्रतियोगी से रहित हो जाती है और वह **(आत्महीनम्)** अपने स्वरूप से रहित हो जाती है।

विरोधि चाभेद्यविशेषभावात्तद्द्योतन: स्याद्गुणतो निपात:।
विपाद्यसन्धिश्च तथाङ्गभावादवाच्यता श्रायसलोपहेतु: ॥४३॥

अन्वयार्थ—(च) और सत्ताद्वैतवादियों तथा शून्यवादियों द्वारा प्रथम पंक्ति के अनुसार यदि कहा जाये कि पद **(अभेदि)** अभेदी है **(विरोधि)** तो यह बात विरोधी है क्योंकि **(अविशेषभावात्)** विशेष का अस्तित्व बनता ही नहीं है। **(गुणत:)** गौण रूप से **(तद्द्योतन:)** उस विरोधी धर्म का द्योतक **(स्यात्)** स्यात् शब्द **(निपात:)** निपात सिद्ध है। **(च)** और **(विपाद्यसन्धि:)** विपक्ष धर्मों की सन्धि करने वाला है **(तथांगभावात्)** क्योंकि दोनों में अंगपना है **(अवाच्यता)** अवाच्यता तो **(श्रायसलोपहेतु:)** मोक्ष पथ के लोप का कारण है।

तथा प्रतिज्ञाशयतोऽप्रयोग: सामर्थ्यतो वा प्रतिषेधयुक्ति:।
इति त्वदीया जिननाग दृष्टि: पराऽप्रधृष्या परघर्षिणी च ॥४४॥

अन्वयार्थ—(तथा) उस प्रकार की **(प्रतिज्ञाऽऽशयत:)** प्रतिज्ञा का अभिप्राय होने से **(अप्रयोग:)** प्रयोग नहीं होता है **(वा)** अथवा **(सामर्थ्यत:)** सामर्थ्य से **(प्रतिषेध-युक्ति:)** प्रतिषेध की युक्ति घटित होती है। **(इति)** इस प्रकार **(जिननाग)** हे! जिनश्रेष्ठ! **(त्वदीया दृष्टि:)** आपकी दृष्टि **(पराऽप्रघृष्या)** दूसरों के द्वारा अबाधित **(च)** और **(परघर्षिणी)** दूसरों को तिरस्कृत करने वाली हैं।

विधिर्निषेधोऽनभिलाप्यता च त्रिरेकशस्त्रिर्द्विश एक एव।
त्रयो विकल्पास्तव सप्तधामी स्याच्छब्दनेया: सकलेऽर्थभेदे ॥४५॥

अन्वयार्थ—(विधि:) विधि **(निषेध:)** निषेध **(च)** और **(अनभिलाप्यता)** अवक्तव्यता **(एकश:)** इनके एक-एक करके **(त्रि:)** तीन विकल्प हैं **(द्विश:)** दो-दो करके **(त्रि:)** तीन विकल्प

हैं **(त्रय:)** और तीन का **(एक एव)** एक ही विकल्प है **(तव)** आपके **(सकले)** समस्त **(अर्थभेदे)** अर्थ भेद में **(स्यात्शब्दनेया:)** स्यात् शब्द से ले जाए गये **(अमी)** ये **(सप्तधा)** सात प्रकार के **(विकल्पा:)** विकल्प है।

स्यादित्यपि स्याद्गुणमुख्यकल्पैकान्तो यथोपाधिविशेषभावात्।
तत्त्वं त्वनेकान्तमशेषरूपं द्विधा भवार्थव्यवहारवत्त्वात् ॥४६॥

अन्वयार्थ–(स्यात्) स्यात् **(इत्यपि)** यह शब्द भी **(गुण-मुख्य-कल्पैकान्त:)** गौण और मुख्य स्वभाव के द्वारा कल्पित किए हुए एकान्त को लिये **(स्यात्)** होता है। **(यथोपाधि-विशेषभावात्)** क्योंकि उपाधि के अनुसार विशेष का द्योतक है **(तत्त्वं)** तत्त्व **(तु)** तो **(अशेषरूपं)** पूर्ण रूप से **(अनेकान्तं)** अनेकान्त रूप है **(द्विधा)** वह दो प्रकार का है **(भवार्थ-व्यवहारवत्त्वात्)** एक भवार्थवान् होने से तथा दूसरा व्यवहारवान् होने से।

न द्रव्यपर्यायपृथग्व्यवस्था द्वैयात्म्यमेकार्पणया विरुद्धम्।
धर्मश्च धर्मी च मिथस्त्रिधेमौ न सर्वथा तेऽभिमतौ विरुद्धौ ॥४७॥

अन्वयार्थ–(द्रव्य-पर्याय-पृथग्व्यवस्था) द्रव्य और पर्याय की पृथक् व्यवस्था **(न)** नहीं बनती है **(द्वैयात्म्यं)** सर्वथा द्वैयात्मक तत्त्व है **(एकार्पणया)** एक की मुख्यता से **(विरुद्धं)** विरुद्ध पड़ता है। **(ते)** आपके **(अभिमतौ)** मत में **(च)** और **(धर्म: च धर्मी)** धर्म और धर्मी **(मिथ:)** परस्पर में **(त्रिधा)** तीन प्रकार के माने गये है। **(इमौ)** ये दोनों धर्म और धर्मी **(न सर्वथा विरुद्धौ)** सर्वथा विरुद्ध नहीं हैं।

दृष्टागमाभ्यामविरुद्धमर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं ते।
प्रतिक्षणं स्थित्युदयव्ययात्मतत्त्वव्यवस्थं सदिहार्थरूपम् ॥४८॥

अन्वयार्थ–(दृष्टागमाभ्यां) प्रत्यक्ष और आगम से **(अविरुद्धं)** अविरोध रूप **(अर्थप्ररूपणं)** अर्थ का प्ररूपण **(ते)** आपका **(युक्त्यनुशासनं)** युक्ति से अनुशासन है **(अर्थरूपं)** अर्थ का रूप **(इह)** यहाँ **(प्रतिक्षण)** प्रतिक्षण **(स्थित्युदय-व्ययात्मतत्त्व-व्यवस्थं)** स्थिति, उदय, व्ययरूप तत्त्व व्यवस्था वाला है, क्योंकि वह **(सत्)** सत् है।

नानात्मतामप्रजहत्तदेकमेकात्मतामप्रजहच्च नाना।
अङ्गाङ्गिभावात्तव वस्तु तद्यत् क्रमेण वाग्वाच्यमनन्तरूपम् ॥४९॥

अन्वयार्थ–(तव) आपके शासन में **(वस्तु)** वस्तु **(नानात्मतां)** अनेक रूपता को **(अप्रजहत्)** नहीं छोड़ते हुए **(तद् एकं)** एक रूप होती है **(च)** और **(एकात्मताम्)** एक रूपता को **(अप्रजहत्)** नहीं छोड़ते हुए **(नाना)** अनेक रूप होती है **(अंगांगिभावात्)** अङ्ग-अङ्गी भाव के कारण **(यत्)** जो

वस्तु है **(तत्)** वह वस्तु **(क्रमेण)** क्रम से **(वाग्वाच्यं)** वचनों से कथनीय **(अनंतरूपम्)** और अनंत रूप है।

मिथोऽनपेक्षाः पुरुषार्थहेतुर्नांशा न चांशी पृथगस्ति तेभ्यः।
परस्परेक्षाः पुरुषार्थहेतुर्दृष्टा नयास्तद्वदसिक्रियायाम् ॥५०॥

अन्वयार्थ–(अंशाः) जो धर्म **(मिथोऽनपेक्षाः)** परस्पर में निरपेक्ष हैं वे **(पुरुषार्थहेतुः)** पुरुषार्थ के हेतु **(न)** नहीं हो सकते हैं **(च)** और **(अंशी)** धर्मी **(तेभ्यः)** उन अंशों से **(पृथक् न अस्ति)** अलग नहीं होता है **(तद्वत्)** अंश-अंशी की तरह **(परस्परेक्षाः)** परस्पर में सापेक्ष **(नयाः)** नय **(असिक्रियायाम्)** असि क्रिया में **(पुरुषार्थहेतुः)** पुरुषार्थ के हेतु **(दृष्टाः)** देखे जाते हैं।

एकान्तधर्माभिनिवेशमूला रागादयोऽहंकृतिजा जनानाम्।
एकान्तहानाच्च स यत्तदेव स्वाभाविकत्वाच्च समं मनस्ते ॥५१॥

अन्वयार्थ–(जनानां) लोगों में **(रागादयः)** जो राग आदि होते हैं वे **(एकान्त-धर्माभिनिवेशमूलाः)** एकान्त रूप धर्म के मिथ्या श्रद्धान के मूल कारण से होते हैं **(अहंकृतिजाः)** और अहंकार से उत्पन्न होते हैं **(च)** और **(यत्)** जो **(एकान्तहानात्)** एकान्त की हानि होना है **(स)** वह **(स्वाभाविकत्वात्)** आत्मा का स्वाभाविक रूप है अतः **(ते)** आपके यहाँ **(तदेव)** वह ही **(समं मनः)** मन का समत्व है।

प्रमुच्यते च प्रतिपक्षदूषी जिन त्वदीयैः पटुसिंहनादैः।
एकस्य नानात्मतया ज्ञवृत्तेस्तौ बन्धमोक्षौ स्वमतादबाह्यौ ॥५२॥

अन्वयार्थ–(जिन!) हे जिन! **(प्रतिपक्षदूषी च)** प्रतिपक्ष को दूषित करने वाला **(त्वदीयैः)** आपके **(एकस्य)** एक के **(नानात्मतया)** नानात्मक रूप **(पटुसिंहनादैः)** विवेकपूर्ण सिंहनादों के द्वारा **(प्रमुच्यते)** मुक्त हो जाता है। अतः **(बंधमोक्षौ)** बंध और मोक्ष **(स्वमतात्)** अपने मत से **(अबाह्यौ)** बाह्य नहीं है क्योंकि **(तौ)** वे दोनों **(ज्ञवृत्तेः)** ज्ञवृत्ति हैं।

आत्मान्तराभावसमानता न वागास्पदं स्वाश्रयभेदहीना।
भावस्य सामान्यविशेषवत्त्वादैक्ये तयोरन्यतरन्निरात्म ॥५३॥

अन्वयार्थ–(आत्मान्तराभावसमानता) आत्मान्तर के अभाव रूप समानता **(स्वाश्रय-भेदहीना)** अपने आश्रय रूप भेदों से हीन है। **(न वागास्पदं)** अतः वह वचनगोचर नहीं है **(भावस्य)** पदार्थ **(सामान्यविशेषवत्त्वात्)** सामान्य-विशेषवान् हैं, किन्तु **(तयोः)** दोनों की **(ऐक्ये)** ऐक्य रूपता स्वीकार करने पर **(निरात्म)** एक का अभाव होने पर **(अन्यतरात्)** अन्यतर का भी अभाव होगा।

अमेयमश्लिष्टममेयमेव भेदेऽपि तद्वृत्त्यपवृत्तिभावात्।
वृत्तिश्च कृत्स्नांशविकल्पतो न मानं च नानन्तसमाश्रयस्य ॥५४॥

अन्वयार्थ–(अमेयं) जो अमेय है **(अश्लिष्टं)** अश्लिष्ट है वह सामान्य **(अमेयं)** अप्रमेय **(एव)** ही है **(भेदेऽपि)** भेद मानने पर भी **(तद्वृत्त्यपवृत्तिभावात्)** क्योंकि उस सामान्य में वृत्ति की अपवृत्ति का सद्भाव है। **(वृत्तिः च)** और यदि वृत्ति हो तो वह **(कृत्स्नांशविकल्पतः)** सम्पूर्ण विकल्प रूप से और अंश विकल्प रूप से **(न)** नहीं बनती है। **(अनन्तसमाश्रयस्यच)** और अनन्त के समाश्रय का **(मानं)** कोई प्रमाण **(न)** नहीं है।

नाना सदेकात्मसमाश्रयं चेदन्यत्वमद्विष्ठमनात्मनोः क्व ।
विकल्पशून्यत्वमवस्तुनश्चेत् तस्मिन्नमेये क्व खलु प्रमाणम् ॥५५॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि सामान्य **(नाना-सदेकात्मसमाश्रयं)** नाना सत् और एक आत्मा के समाश्रय वाला है तो वह **(अन्यत्वं)** सामान्य भिन्नत्व रूप है **(अद्विष्ठं)** या अभिन्न रूप है **(अनात्मनोः)** व्यक्ति तथा सामान्य दोनों के अनात्मा होने पर **(क्व)** अन्यत्व कहाँ रहेगा? **(चेत्)** यदि **(अवस्तुनः)** अवस्तु को **(विकल्पशून्यत्वं)** विकल्प शून्यता है **(तस्मिन् अमेये)** तो उस अवस्तु स्वरूप सामान्य के अमेय में **(प्रमाणं)** प्रमाणपना **(क्व खलु)** कहाँ होगा ?

व्यावृत्तिहीनान्वयतो न सिद्ध्येद् विपर्ययेऽप्यद्वितयेऽपि साध्यम्।
अतद्व्युदासाभिनिवेशवादः पराभ्युपेतार्थविरोधवादः ॥५६॥

अन्वयार्थ–(व्यावृत्तिहीनान्वयतः) व्यावृत्ति से रहित अन्वय से **(विपर्यये अपि)** इसके विपरीत अर्थात् अन्वय हीन व्यावृत्ति से भी **(अद्वितये अपि)** अन्वय और व्यावृत्ति दोनों से हीन होने पर भी **(साध्यं)** साध्य की **(न सिध्येत्)** सिद्धि नहीं होती है **(अतद्व्युदासाभिनिवेशवादः)** यदि साध्य को अतद्व्युदास अभिनिवेशवाद के रूप में आश्रित किया जाय तो **(पराभ्युपेतार्थविरोधवादः)** बौद्धों के द्वारा स्वीकृत अर्थ के विरोधवाद का प्रसंग आता है।

अनात्मनानात्मगतेरयुक्तिर्वस्तुन्ययुक्तेर्यदि पक्षसिद्धिः।
अवस्त्वयुक्तेः प्रतिपक्षसिद्धिः न च स्वयं साधनरिक्तसिद्धिः ॥५७॥

अन्वयार्थ–(अनात्मना) अनात्मा के द्वारा **(अनात्मगतेः)** अनात्म साध्य की जो गति ज्ञान है **(अयुक्तिः)** उसमें कोई युक्ति नहीं है **(वस्तुनि)** वस्तु में **(अयुक्तेः)** बिना युक्ति के **(यदि)** यदि **(पक्षसिद्धिः)** पक्ष की सिद्धि मानी जाए तो **(अवस्त्वयुक्तेः)** अवस्तु में अयुक्ति से **(प्रतिपक्षसिद्धिः)** प्रतिपक्ष की द्वैत की सिद्धि भी होगी **(च स्वयं)** और स्वयं **(साधनरिक्तसिद्धिः)** साधन के बिना सिद्धि **(न)** नहीं होती है।

निशायितस्तैः परशुः परघ्नः स्वमूर्ध्नि निर्भेदभयानभिज्ञैः।
वैतण्डिकैर्यैः कुश्रुतिः प्रणीता मुने भवच्छासनदृक्प्रमूढैः ॥५८॥

अन्वयार्थ–(मुने!) हे मुने! **(यैः वैतण्डिकैः)** जिन वैतण्डिकों द्वारा **(कुश्रुतिः)** कुमार्ग का **(प्रणीता)** प्रतिपादन किया गया है **(तैः)** उनके **(भवच्छासन-दृक्-प्रमूढैः)** आपके शासन की दृष्टि से मूढ़ और **(निर्भेदभयानभिज्ञैः)** निर्भेद के भय से अनभिज्ञ जनों के द्वारा **(स्वमूर्ध्नि)** अपने ही सिर पर **(परघ्नः)** पर-घातक **(परशुः)** कुल्हाड़े को **(निशायितः)** मारा है।

भवत्यभावोऽपि च वस्तुधर्मो भावान्तरं भाववदर्हतस्ते।
प्रमीयते च व्यपदिश्यते च वस्तुव्यवस्थाङ्गममेयमन्यत् ॥५९॥

अन्वयार्थ–(ते अर्हतः) आप अर्हन्त भगवान् के मत में **(अभावः अपि)** अभाव भी **(वस्तुधर्मः)** वस्तु का धर्म **(भवति)** है **(च)** और वह **(भाववत्)** भाव की तरह **(भावान्तरं)** भावान्तर होता है **(च प्रमीयते)** वह प्रमाण से जाना जाता है **(व्यपदिश्यते च)** और उसका व्यपदेश भी किया जाता है **(वस्तुव्यवस्थाऽङ्गम्)** वह वस्तु व्यवस्था का अंग है **(अन्यत्)** इससे भिन्न अभाव **(अमेयम्)** प्रमाण गोचर नहीं है।

विशेषसामान्यविषक्तभेदविधिव्यवच्छेदविधायि - वाक्यम्।
अभेदबुद्धेरविशिष्टता स्याद् व्यावृत्तिबुद्धेश्च विशिष्टता ते ॥६०॥

अन्वयार्थ–(विशेष-सामान्य-विषक्त-भेद-विधिव्यवच्छेद-विधायिवाक्यम्) जो वाक्य विशेष और सामान्य रूप भेद को लिये हुए विधि और निषेध को कहने वाला होता है। **(ते)** आपके शासन में **(अभेदबुद्धेः)** अभेद बुद्धि से **(अविशिष्टता)** समानता **(च)** और **(व्यावृत्तिबुद्धेः)** व्यावृत्ति बुद्धि से **(विशिष्टता)** विशिष्टता **(स्यात्)**है।

सर्वान्तवत्तदगुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥६१॥

अन्वयार्थ–(तव) आपका **(इदं)** यह **(तीर्थं)** तीर्थ **(एव)** ही **(सर्वान्तवत्तदगुणमुख्यकल्पं)** सभी धर्मों वाला है और गुण मुख्य की कल्पना को लिये है **(मिथोऽनपेक्षं)** परस्पर में अपेक्षा रहित है **(सर्वान्तशून्यं)** सर्व धर्मों से शून्य है **(सर्वापदाम्)** समस्त आपदाओं को **(अन्तकरं)** अन्त करने वाला **(निरन्तं)** अखण्डनीय है **(च)** और **(सर्वोदयं)** सभी का कल्याण करने वाला है।

कामं द्विषन्नप्युपपत्तिचक्षुः समीक्ष्यतां ते समदृष्टिरिष्टम्।
त्वयि ध्रुवं खण्डितमानशृङ्गो भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः ॥६२॥

अन्वयार्थ–(ते) आपके **(इष्टं)** इष्ट शासन से **(कामं)** यथेष्ट **(द्विषन् अपि)** द्वेष रखता हुआ

भी **(उपपत्तिचक्षुः)** युक्ति की आँख वाला **(समदृष्टिः)** मध्यस्थ दृष्टि से **(समीक्ष्यतां)** परीक्षण करे तो **(त्वयि)** आपके विषय में **(ध्रुवं)** निश्चित ही **(खण्डितमान-शृङ्गः)** मान के शिखर को खण्डित करता हुआ **(अभद्रः अपि)** अभद्र भी **(समन्तभद्रः)** सब ओर से भद्र **(भवति)** हो जाता है।

न रागान्नः स्तोत्रं भवति भवपाशच्छिदि मुनौ
न चान्येषु द्वेषादपगुणकथाभ्यासखलता।
किमु न्यायान्यायप्रकृतगुणदोषज्ञमनसां
हितान्वेषोपायस्तव गुणकथासङ्गगदितः ॥६३॥

अन्वयार्थ—(नः) हमारा **(स्तोत्रं)** स्तोत्र **(भवपाशच्छिदि)** संसार-जाल के छेदक **(मुनौ)** मुनि के प्रति **(रागात् न भवति)** राग से नहीं है **(न च)** और न **(अन्येषु)** दूसरों में **(द्वेषात्)** द्वेष से है। **(अपगुण-कथाभ्यास-खलता)** दुर्गुणों की कथा अभ्यास की दुष्टता है। **(न्यायान्याय-प्रकृत-गुण-दोषज्ञमनसां)** न्याय, अन्याय और प्रकृत गुण-दोषों को जानने का जिनका मन है उनको **(हितान्वेषोपायः)** हितान्वेषण का उपाय **(किमु)** क्या है **(तव)** उनके लिए आपके **(गुण-कथा-सङ्ग-गदितः)** गुणों को कथा के साथ कहा है।

इति स्तुत्यः स्तुत्यैस्त्रिदशमुनिमुख्यैः प्रणिहितैः
स्तुतः शक्त्या श्रेयः पदमधिगतस्त्वं जिन मया।
महावीरो वीरो दुरितपरसेनाभिविजये
विधेया मे भक्तिं पथि भवत एवाप्रतिनिधौ ॥६४॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(स्तुत्यैः)** स्तुति योग्य **(प्रणिहितैः)** एकाग्र मन वाले **(त्रिदश-मुनिमुख्यैः)** देवेन्द्र और मुनीन्द्रों के द्वारा **(स्तुतः)** आप स्तुत हैं **(मया)** मैं भी **(शक्त्या)** शक्ति से आपकी स्तुति करता हूँ **(जिन!)** हे जिन! **(त्वं)** आप **(श्रेयःपदं)** श्रेयः पद को **(अधिगतः)** प्राप्त हुए हैं **(महावीरः)** इसलिए महावीर हैं **(दुरित-पर-सेनाभिविजये)** पाप शत्रु की सेना पर विजय पा लेने से **(वीरः)** आप वीर हैं। **(स्तुत्यः)** आप स्तुति योग्य हैं **(भवतः)** आपके **(अप्रतिनिधौ)** अप्रतिहत **(पथि)** मार्ग में **(एव)** ही **(मे)** मेरी **(भक्तिं)** भक्ति को **(विधेया)** चरितार्थ करो।

❑ ❑ ❑

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

सम्यग्दर्शनाधिकार

मंगलाचरण

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

अन्वयार्थ—(निर्धूतकलिलात्मने) नष्ट कर दिया है पाप को आत्मा से जिन्होंने अर्थात् जो वीतराग हैं अथवा जिनकी आत्मा ने हितोपदेश देकर अन्य जीवों को कर्म कलंक से रहित किया है अर्थात् जो हितोपदेशी हैं और **(यद्विद्या)** जिनका केवलज्ञान **(सालोकानां त्रिलोकानाम्)** अलोक सहित तीनों लोकों के विषय में **(दर्पणायते)** दर्पण के समान आचरण करता है अर्थात् जो सर्वज्ञ हैं ऐसे **(श्रीवर्द्धमानाय)** अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान स्वामी को अथवा अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरंग व समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धि को प्राप्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

अन्वयार्थ—[अहम्] मैं समन्तभद्राचार्य **(कर्मनिबर्हणम्)** कर्मों का विनाश करने वाले **(समीचीनम् धर्मम्)** सच्चे धर्म को **(देशयामि)** कहता हूँ **(यः)** जो **(सत्त्वान्)** जीवों को **(संसारदुःखतः)** संसार के दुःखों से [उद्धृत्य] निकालकर **(उत्तमे सुखे)** स्वर्ग-मोक्ष आदि के श्रेष्ठ सुख में **(धरति)** धरता है/पहुँचाता है।

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥

अन्वयार्थ—(धर्मेश्वराः) धर्म के स्वामी तीर्थंकर देव **(सद्दृष्टि -ज्ञानवृत्तानि)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को **(धर्मम्)** धर्म अर्थात् मोक्षमार्ग **(विदुः)** कहते हैं **(यदीयप्रत्यनीकानि)** जिनके विपरीत—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र **(भवपद्धतिः)** संसार की परिपाटीरूप अधर्म अर्थात् संसार के मार्ग **(भवन्ति)** होते हैं।

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम-तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शन-मस्मयम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(परमार्थानाम्) परमार्थभूत/सच्चे **(आप्तागमतपो-भृताम्)** देव, शास्त्र और गुरु

का **(त्रिमूढापोढम्)** तीन मूढ़ताओं से रहित **(अष्टाङ्गम्)** आठ अंगों से सहित और **(अस्मयम्)** आठ प्रकार के मदों से रहित **(श्रद्धानम्)** श्रद्धान को **(सम्यग्दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन कहा है।

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

अन्वयार्थ–(आप्तेन) आप्त को **(उच्छिन्न-दोषेण)** अठारह दोषों से रहित वीतराग **(सर्वज्ञेन)** सर्वज्ञ और **(आगमेशिना)** आगम का स्वामी–हितोपदेशी **(नियोगेन)** नियम से **(भवितव्यम्)** होना चाहिए **(हि)** क्योंकि **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से **(आप्तता)** आप्तपना/देवपना **(न भवेत्)** नहीं हो सकता।

क्षुत्पिपासा - जरातङ्क - जन्मान्तक - भयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसके **(क्षुत्-पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मयाः)** भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व **(रागद्वेषमोहाः)** राग, द्वेष, मोह **(च)** और चिंता, अरति, निद्रा, आश्चर्य, स्वेद, रोष और खेद ये अठारह दोष **(न)** नहीं हैं **(सः)** वह **(आप्तः)** आप्त/सच्चा देव **(प्रकीर्त्यते)** कहा जाता है।

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

अन्वयार्थ–[सः आप्तः] वह आप्त **(परमेष्ठी)** परमेष्ठी–परम पद में स्थित **(परं-ज्योतिः)** परम ज्योति–केवलज्ञान से सहित **(विरागः)** राग से रहित–रागरूप भावकर्म के नष्ट हो जाने से वीतराग **(विमलः)** विमल–मूल और उत्तर प्रकृतिरूप द्रव्यकर्म के नष्ट हो जाने से **(कृती)** कृतकृत्य **(सर्वज्ञः)** सर्वज्ञ **(अनादिमध्यान्तः)** आदि, मध्य तथा अन्त से रहित **(सार्वः)** सार्व–सर्वहितकर्ता और **(शास्ता)** हितोपदेशक **(उपलाल्यते)** कहा जाता है, ये सब आप्त के नाम हैं।

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

अन्वयार्थ–[सः] वह **(शास्ता)** हितोपदेशक आप्त भगवान् **(रागैः विना)** राग रहित अर्थात् ख्याति, लाभ, पूजा आदि की अभिलाषा के बिना **(अनात्मार्थम्)** अपना प्रयोजन न होने पर भी **(सतः)** सज्जन–भव्यजीवों के **(हितं शास्ति)** हित को कहते हैं अर्थात् धर्म का उपदेश देते हैं

जैसे **(शिल्पिकर-स्पर्शात्)** बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से **(ध्वनन्)** शब्द करता हुआ **(मुरजः)** मृदंग **(किम्)** क्या **(अपेक्षते)** अपेक्षा रखता है? अर्थात् कुछ भी अपेक्षा नहीं रखता।

आप्तोपज्ञ-मनुल्लङ्घ्य - मदृष्टेष्ट-विरोधकं।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(आप्तोपज्ञम्) तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा कहा गया **(अनुल्लङ्घ्यम्)** उल्लंघन से रहित अर्थात् वादी प्रतिवादी से अजेय **(अदृष्टेष्ट-विरोधकम्)** प्रत्यक्ष और अनुमानादि के विरोध से रहित **(तत्त्वोपदेशकृत्)** तत्त्व का उपदेश करने वाला **(सार्वम्)** सबका हितकारी और **(कापथघट्टनम्)** मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला **(शास्त्रम्)** शास्त्र कहा है अर्थात् उसे शास्त्र कहते हैं।

विषयाशा-वशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ—जो **(विषयाशावशातीतः)** विषयों की आशाओं के वश से रहित **(निरारम्भः)** आरम्भों से रहित **(अपरिग्रहः)** परिग्रहों से रहित और **(ज्ञानध्यानतपोरक्तः** (रत्नः)**)** ज्ञान, ध्यान तथा तप में लवलीन हो **(सः)** वह **(तपस्वी)** गुरु **(प्रशस्यते)** प्रशंसनीय है।

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥

अन्वयार्थ—(तत्त्वं) जीवादि सात तत्त्व व देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप **(इदम्)** यह **(एव)** ही है **(ईदृशम्)** ऐसा **(एव)** ही है **(अन्यत्)** अन्य **(न)** नहीं है और **(अन्यथा)** अन्य प्रकार भी **(न च)** नहीं है **(इति)** इस तरह **(सन्मार्गे)** देव, शास्त्र, गुरु के प्रवाहरूप समीचीन मोक्षमार्ग के विषय में **(आयसाम्भोवत्)** लोहे की तलवार आदि की धार पर चढ़े हुए लोहे के पानी के समान **(अकम्पा)** अटल **(रुचिः)** श्रद्धा **(असंशया)** संशय रहित/निःशंकित अंग है।

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥

अन्वयार्थ—(कर्मपरवशे) कर्मों के आधीन **(सान्ते)** अन्तसहित/नश्वर **(दुःखैः)** दुःखों से **(अन्तरितोदये)** मिश्रित/बाधित **(च)** और **(पापबीजे)** पाप के कारणभूत **(सुखे)** इन्द्रियजनित सांसारिक सुख में **(अनास्था)** आस्था नहीं होने रूप **(श्रद्धा)** श्रद्धा **(अनाकाङ्क्षणा)** आकांक्षा रहित/निःकांक्षित अंगरूप **(स्मृता)** मानी गई है।

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥

अन्वयार्थ–(स्वभावतः) स्वभाव से **(अशुचौ)** शुचिता रहित अपवित्र किन्तु **(रत्नत्रय-पवित्रिते)** रत्नत्रय से पवित्र **(काये)** शरीर में **(निर्जुगुप्सा)** ग्लानि रहित **(गुणप्रीतिः)** गुणों में प्रेम होना **(निर्विचिकित्सिता)** ग्लानि रहितपना/निर्विचिकित्सा **(मता)** मानी गई है।

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असंपृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

अन्वयार्थ–(दुःखानां) दुःखों के **(पथि कापथे)** मार्गस्वरूप मिथ्यादर्शनादि-रूप कुमार्ग में और **(कापथस्थे अपि)** कुमार्ग में स्थित जीव में भी **(असम्मतिः)** मानसिक सम्मति से रहित **(अनुत्कीर्तिः)** वाचनिक प्रशंसा से रहित और **(असम्पृक्तिः)** शारीरिक सम्पर्क से रहित है वह **(अमूढा दृष्टिः)** मूढ़ता रहित श्रद्धा/अमूढ़दृष्टि अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ–(स्वयं) स्वभाविकरूप से **(शुद्धस्य मार्गस्य)** शुद्ध/पवित्र रत्नत्रयरूप मार्ग की **(बालाशक्तजनाश्रयां)** अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों के आश्रय से होने वाली **(वाच्यतां)** निन्दा को **(यत्)** जो **(प्रमार्जन्ति)** प्रमार्जित करते हैं–दूर करते हैं **(तत्)** उनके उस निन्दा के दूर करने को अर्थात् प्रमार्जन को **(उपगूहनं)** दोष छिपाने रूप/उपगूहन गुण **(वदन्ति)** कहते हैं।

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥१६॥

अन्वयार्थ–(धर्मवत्सलैः) धर्मस्नेही जनों के द्वारा **(दर्शनात्)** सम्यग्दर्शन से **(वा)** अथवा **(चरणात्)** सम्यक्चारित्र से **(अपि)** भी **(चलताम्)** विचलित होते हुए पुरुषों का **(प्रत्यवस्थापनम्)** फिर से पहले की तरह स्थिर करने को **(प्राज्ञैः)** विद्वानों के द्वारा **(स्थितिकरणम्)** स्व-पर को स्थिर करने रूप/स्थितिकरण अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अन्वयार्थ–(स्वयूथ्यान्प्रति) अपने सहधर्मी बन्धुओं के प्रति **(सद्भाव-सनाथा)** सद्भावनाओं से सहित **(अपेतकैतवा)** मायाचार रहित **(यथायोग्यम्)** उनकी योग्यता के अनुसार **(प्रतिपत्तिः)** पूजा आदर-सत्कार **(वात्सल्यम्)** आपसी सौहार्दरूप/वात्सल्य अंग **(अभिलप्यते)** कहा जाता है।

अज्ञानतिमिर-व्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन-माहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्) अज्ञानरूपी अन्धकार के विस्तार को **(अपाकृत्य)** दूरकर **(यथायथम्)** जैसे-तैसे अपनी शक्ति के अनुसार **(जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः)** जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना **(प्रभावना)** प्रभाव दिखाने रूप/प्रभावना अंग **(स्यात्)** है।

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥१९॥

अन्वयार्थ—(तावत्) क्र म से **[प्रथमे]** पहले (अङ्गे)अंग में **(अञ्जनचौरः)** अञ्जन चोर **(ततः)** तदनन्तर/दूसरे अंग में **(अनन्तमतिः)** अनन्तमति **(स्मृता)** स्मरण की गई है **(तृतीये)** तीसरे अंग में **(उद्दायनः)** उद्दायन नाम का राजा **(अपि)** और **(तुरीये)** चौथे अंग में **(रेवती)** रेवती रानी **(मता)** मानी गयी है।

ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥२०॥

अन्वयार्थ—(ततः अन्यः) उससे भिन्न/पाँचवे अंग में **(जिनेन्द्रभक्तः)** जिनेन्द्रभक्त सेठ **(ततः परः)** उससे आगे/छठवें अंग में **(वारिषेणः)** वारिषेण राजकुमार **(शेषयोः)** शेष दो/सातवें और आठवें अंगमें **(विष्णुः)** विष्णुकुमारमुनि **(च)** और **(वज्रनामा च)** वज्रकुमार नामक मुनि **(लक्ष्यताम्)** प्रसिद्धि को **(गतौ)** प्राप्त हुए।

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अङ्गहीनं) निःशङ्कित आदि अंगों से हीन **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन **(जन्मसन्ततिम्)** संसार की परम्परा को **(छेत्तुम्)** नष्ट करने के लिए **(अलं न)** समर्थ नहीं है **(हि)** क्योंकि **(अक्षरन्यूनः)** एक अक्षर से भी हीन/कम **(मन्त्रः)** मंत्र **(विषवेदनाम्)** विष की पीड़ा को **(न निहन्ति)** नष्ट नहीं करता।

आपगा-सागर-स्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अन्वयार्थ—धर्म समझकर **(आपगासागरस्नानम्)** नदी और समुद्र में स्नान करना **(सिकताश्मनाम्)** बालू और पत्थरों का **(उच्चयः)** ढेर लगाना **(गिरिपातः)** पर्वत से गिरना **(च)** और **(अग्निपातः)** अग्नि में गिरना/ पड़ना **(लोकमूढम्)** लोकमूढ़ता **(निगद्यते)** कही जाती है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसा: ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

अन्वयार्थ–(वरोपलिप्सया) वरदान प्राप्त करने की इच्छा से **(आशावान्)** आशा से युक्त **(रागद्वेषमलीमसा:)** राग-द्वेष से मलिन **(देवता:)** देवताओं को **(यत्)** जो **(उपासीत)** पूजता है वह **(देवतामूढम्)** देवमूढ़ता **(उच्यते)** कही जाती है।

सग्रन्थारम्भ-हिंसानां संसारावर्त-वर्तिनाम्।
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥२४॥

अन्वयार्थ–(सग्रन्थारम्भहिंसानां) परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित **(संसारावर्त-वर्तिनाम् पाषण्डिनाम्)** संसार भंवर/चक्र में कारणभूत कार्यों में लीन साधुओं का **(पुरस्कार:)** आदर-सत्कार/आगे करना/पूजा करना **(पाषण्डि-मोहनम्)** पाषण्डि मूढ़ता/ गुरुमूढ़ता **(ज्ञेयम्)** जानने योग्य है।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपु:।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मया: ॥२५॥

अन्वयार्थ–(ज्ञानम्) ज्ञान **(पूजाम्)** प्रतिष्ठा/पूजा **(कुलम्)** कुल **(जातिम्)** जाति **(बलम्)** बल **(ऋद्धिम्)** धनसम्पत्ति **(तप:)** तप और **(वपु:)** शरीर **(अष्टौ)** इन आठों का **(आश्रित्य)** आश्रय लेकर **(मानित्वम्)** अभिमानिपना होना **(गतस्मया:)** गर्व से रहित गणधर आदि देव **(स्मयम्)** गर्व/मद **(आहु:)** कहते हैं।

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशय:।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अन्वयार्थ–उपर्युक्त **(स्मयेन)** मद से **(गर्विताशय:)** गर्वितचित्त वाला **(य:)** जो पुरुष **(धर्मस्थान्)** रत्नत्रयरूप धर्म में स्थित **(अन्यान्)** अन्य जीवों को **(अत्येति)** तिरस्कृत करता है **(स:)** वह **(आत्मीयं धर्मम्)** अपने धर्म को **(अत्येति)** तिरस्कृत करता है **[यत:]** क्योंकि **(धार्मिकै: विना)** धर्मात्माओं के बिना **(धर्म:)** धर्म **(न)** नहीं होता।

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(यदि) अगर **(पापनिरोध:)** पाप का निरोध है अर्थात् रत्नत्रयरूप धर्म का सद्भाव है तो **(अन्यसम्पदा)** कुल ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पत्ति से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनम्)** मतलब है ? और **(अथ)** यदि **(पापास्त्रव:)** पाप का आस्त्रव अर्थात् मिथ्यादर्शन आदि का सद्भाव **(अस्ति)**

है तो **(अन्यसम्पदा)** संसार बढ़ाने वाले कुल ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पत्ति से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनम्)** मतलब है ?

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥

अन्वयार्थ–(देवाः) सभी तीर्थङ्करदेव **(सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्)** सम्यग्दर्शन से सहित **(मातङ्गदेहजम्)** चाण्डाल के शरीर से उत्पन्न अर्थात् चाण्डाल कुल में पैदा हुए को **(अपि)** भी **(भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसं)** राख के भीतर ढके हुए अंगार के भीतरी प्रकाश के समान **(देवम्)** पूज्य/सम्माननीय **(विदुः)** कहते हैं।

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
काऽपि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

अन्वयार्थ–(धर्मकिल्विषात्) धर्म और पाप से क्र मशः **(श्वा)** कुत्ता **(अपि)** भी **(देवः)** देव और **(देवः)** देव **(अपि)** भी **(श्वा)** कुत्ता **(जायते)** हो जाता है यथार्थ में **(धर्मात्)** धर्म से **(शरीरिणाम्)** जीवों के **(कापि नाम अन्या)** कोई अनिर्वचनीय **(सम्पत्)** सम्पत्ति **(भवेत्)** होती है।

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

अन्वयार्थ–(शुद्धदृष्टयः) शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव **(भयाशा-स्नेह-लोभात्)** भय आशा प्रेम और लोभ से **(कुदेवागम-लिङ्गिनाम्)** कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं की **(विनयम्)** विनय **(च)** और **(प्रणामम्)** प्रणाम को **(एव)** निश्चित ही **(न कुर्य्युः)** न करे।

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

अन्वयार्थ–[यत्] जिस कारण **(ज्ञानचारित्रात्)** ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा से **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन **(साधिमानम्)** श्रेष्ठता या उत्कृष्टता को **(उपाश्नुते)** प्राप्त होता है **[तत्]** उस कारण से **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन को **(मोक्षमार्गे)** मोक्षमार्ग में **(कर्णधारम्)** खेवटिया **(प्रचक्षते)** कहते हैं।

विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

अन्वयार्थ–(बीजाभावे) बीज के अभाव में **(तरोः इव)** वृक्ष की तरह **(सम्यक्त्वे असति)** सम्यग्दर्शन के न होने पर **(विद्यावृत्तस्य)** ज्ञान और चारित्र की **(सम्भूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः)**

उत्पत्ति, स्थिरता, वृद्धि और फल की प्राप्ति **(न सन्ति)** नहीं होती।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

अन्वयार्थ–(निर्मोहः) मोह–मिथ्यात्व से रहित **(गृहस्थः)** गृहस्थ **(मोक्षमार्गस्थः)** मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु **(मोहवान्)** मोह–मिथ्यात्व से सहित **(अनगारः)** मुनि **(नैव)** मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है **(मोहिनः)** मोही मिथ्यादृष्टि **(मुनेः)** मुनि की अपेक्षा **(निर्मोहः)** मोहरहित–सम्यग्दृष्टि **(गृही)** गृहस्थ **(श्रेयान्)** श्रेष्ठ **[अस्ति]** है।

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्-त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

अन्वयार्थ–(तनूभृताम्) प्राणियों के **(त्रैकाल्ये)** तीनों कालों में और **(त्रिजगत्यपि)** तीनों लोकों में भी **(सम्यक्त्वसमम्)** सम्यग्दर्शन के समान **(श्रेयः)** कल्याणरूप **(च)** और **(मिथ्यात्वसमम्)** मिथ्यादर्शन के समान **(अश्रेयः)** अकल्याणरूप **(अन्यत्)** अन्य **(किंचित्)** कुछ भी **(न)** नहीं है।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारक - तिर्यङ् - नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

अन्वयार्थ–(सम्यग्दर्शनशुद्धाः) सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव **(अव्रतिकाः अपि)** व्रत रहित होने पर भी **(नारक-तिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि)** नारक, तिर्यञ्च नपुंसक और स्त्रीपने को **(च)** और **(दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रताम्)** नीचकुल, विकलाङ्गता, अल्पायु और दरिद्रता को **(न व्रजन्ति)** प्राप्त नहीं होते।

ओजस्तेजो - विद्यावीर्ययशोवृद्धि - विजयविभवसनाथाः।
माहाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

अन्वयार्थ–(दर्शनपूताः) सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव **(ओजस्तेजो-विद्या-वीर्य-यशोवृद्धि-विजयविभवसनाथाः)** उत्साह, प्रताप–कान्ति, विद्या–सहजता से सभी कलाओं को ग्रहण करने वाली बुद्धि, विशिष्टबल, विशिष्टख्याति, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि की प्राप्तिरूप वृद्धि, विजय–दूसरे के परास्त या तिरस्कार से अपने गुणों का उत्कर्ष और विभव–धन–धान्य द्रव्य आदि की प्राप्तिरूप सम्पत्ति इन सबसे सहित **(माहाकुलाः)** उच्च कुलों में उत्पन्न **(महार्थाः)** धर्म, अर्थ, काम व मोक्षरूप चारों महान् पुरुषार्थों को करने वाले और **(मानवतिलकाः)** मनुष्यों में प्रधान **(भवन्ति)** होते हैं।

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥३७॥

अन्वयार्थ—(दृष्टिविशिष्टाः) सम्यग्दर्शन से सहित **(जिनेन्द्रभक्ताः)** भगवान् जिनेन्द्र के भक्त पुरुष **(स्वर्गे)** स्वर्ग में **(अमराप्सरसाम्)** देवों और अप्सराओं की **(परिषदि)** सभा में **(अष्टगुणपुष्टितुष्टाः)** अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामरूपित्व इन आठ गुणों की परिपूर्णता से संतुष्ट/प्रसन्न और **(प्रकृष्टशोभाजुष्टाः)** अन्य देवों की अपेक्षा विशेष शोभा/सुन्दरता से सहित होते हुए **(चिरम्)** बहुत काल तक **(रमन्ते)** रमण करते हैं अर्थात् इन्द्र होते हैं।

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अन्वयार्थ—(स्पष्टदृशः) निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव **(नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः) नव निधियाँ**—काल, महाकाल, नैस्सर्प्य, पाण्डुक, पद्म, माणव, पिंग, शंख और सर्वरत्न इन नौ निधियों तथा **चौदह रत्नों—अजीव रत्न**—चक्र, छत्र, दण्ड, तलवार, मणि, चर्म, काकिड़ी व **सजीव रत्न**—सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, सिलावट (शिल्पकार) और पुरोहित इन चौदह रत्नों के स्वामी तथा **(क्षत्रमौलिशेखरचरणाः)** क्षत्रिय राजाओं के मुकुटों सम्बन्धी कलगियों पर जिनके चरण हैं ऐसे अर्थात् मुकुटबद्ध क्षत्रिय राजाओं से सेवित चरण वाले **(सर्वभूमिपतयः)** समस्त छहखण्डों के स्वामी होते हुए **(चक्र म्)** चक्र रत्न को **(वर्तयितुम्)** चलाने के लिए **(प्रभवन्ति)** समर्थ होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती होते हैं।

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥

अन्वयार्थ—(दृष्ट्या) सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से **(सुनिश्चितार्थाः)** जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव **(अमरा-सुरनरपतिभिः)** देवेन्द्रों असुरेन्द्रों व नरेन्द्रों से **(च)** और **(यमधरपतिभिः)** मुनियों के स्वामी गणधरों के द्वारा **(नूतपादाम्भोजाः)** स्तुत चरणकमल वाले **(लोकशरण्याः)** तीनों लोकों के शरणभूत ऐसे **(वृषचक्रधराः)** धर्मचक्र के धारक तीर्थङ्कर **(भवन्ति)** होते हैं।

शिव-मजर - मरुज-मक्षय - मव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्या-विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

अन्वयार्थ—(दर्शनशरणाः) जैनदर्शन की शरण/आश्रय को प्राप्त सम्यग्दृष्टि जीव **(अजरम्)**

बुढ़ापा रहित **(अरुजम्)** रोगरहित **(अक्षयम्)** क्षयरहित **(अव्याबाधम्)**बाधारहित **(विशोक-भयशङ्कम्)** शोक, भय तथा शंका-रहित **(काष्ठागतसुखविद्याविभवम्)** पराकाष्ठा/ अंतिम सीमा को प्राप्त अनन्तसुख और अनन्तज्ञानरूप वैभव वाले **(विमलम्)** द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित निर्मल **(शिवम्)** मोक्ष को **(भजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

वसन्ततिलका छन्द

देवेन्द्रचक्र महिमानममेयमानं
राजेन्द्रचक्र मवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जिनभक्तिः) जिनेन्द्रदेव की भक्ति से सहित **(भव्यः)** सम्यग्दृष्टि पुरुष **(अमेय-मानम्)** अपरिमित पूजा अथवा ज्ञान को **(देवेन्द्रचक्र-महिमानम्)** इन्द्रसमूह की महिमा को **(अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्)** राजाओं के मस्तक से पूजनीय **(राजेन्द्रचक्रम्)** चक्रवर्ती के चक्र रत्न को **(च)** और **(अधरीकृत-सर्वलोकम्)** समस्त लोक को नीचा करने वाले **(धर्मेन्द्र-चक्रम्)** तीर्थंकर के धर्मचक्र को **(लब्ध्वा)** प्राप्तकर **(शिवम्)** मोक्ष को **(उपैति)** प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञानाधिकार

(आर्या छन्द)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **[वस्तुस्वरूपम्]** वस्तु के स्वरूप को **(अन्यूनम्)** न्यूनता रहित **(अनतिरिक्तम्)** अधिकता रहित **(विपरीतात् विना)** विपरीतता रहित **(च)** और **(निःसंदेहं)** संदेह रहित **(याथातथ्यम्)** जैसा का तैसा **(वेद)** जानता है **(तत्)** उसको **(आगमिनः)** आगम के ज्ञाता गणधर आदि देव **(ज्ञानम्)** सम्यग्ज्ञान **(आहुः)** कहते हैं।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

अन्वयार्थ— (समीचीनः बोधः) सम्यक् श्रुतज्ञान **(अर्थाख्यानम्)** परमार्थभूत विषय का प्रतिपादन करने वाला **(पुण्यम्)** पुण्यवर्धक **(चरितम्)** एक पुरुष के आश्रित चरित **(अपि)** और **(पुराणम्)** त्रेशठशलाका पुरुषों से सम्बन्धित पुराण **(बोधि-समाधिनिधानम्)** बोधि/रत्नत्रय और समाधि/धर्म शुक्लध्यान की खानरूप **(प्रथमानुयोगम्)** प्रथमानुयोग को **(बोधति)** जानता है।

लोकालोकविभक्ते-र्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

अन्वयार्थ—(तथा) प्रथमानुयोग की तरह **(मतिः)** मननरूप श्रुतज्ञान **(लोकालोकविभक्तेः)** लोक और अलोक के विभाग **(युगपरिवृत्तेः)** युगों के परिवर्तन **(च)** और **(चतुर्गतीनाम्)** चारों गतियों का स्वरूप **(आदर्शम्)** दर्पण के **(इव)** समान दिखाने वाले **(करणानुयोगम् च)** करणानुयोगरूप शास्त्र को भी **(अवैति)** जानता है।

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्ज्ञानम्) द्रव्यभावरूप सम्यग्ज्ञान **(गृहमेध्यनगाराणां)** गृहस्थ और मुनियों के **(चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्)** चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणभूत **(चरणानुयोग-समयम्)** चरणानुयोग शास्त्र को **(विजानाति)** जानता है।

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

अन्वयार्थ—(द्रव्यानुयोग-दीपः) द्रव्यानुयोगरूपी दीपक **(जीवाजीवसुतत्त्वे)** जीव और अजीवरूप प्रमुख तत्त्वों को **(पुण्यापुण्ये)** पुण्य और पाप को **(च)** और **(बन्धमोक्षौ)** बन्ध और मोक्ष को तथा **(च)** च शब्द से आस्रव, संवर और निर्जरा इन उपयुर्क्त नौ पदार्थों के स्वरूप के कथनरूप **(श्रुतविद्यालोकम्)** श्रुतज्ञानरूप प्रकाश को **(आतनुते)** फैलाता है।

सम्यक्चारित्राधिकार

(आर्या छन्द)

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

अन्वयार्थ—(मोहतिमिरापहरणे) मोहरूपी अन्धकार के दूर होने पर **(दर्शन-लाभात्)** सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से **(अवाप्तसंज्ञानः)** प्राप्त हुआ है सम्यग्ज्ञान जिसे ऐसा **(साधुः)** सज्जन/भव्यजीव **(रागद्वेषनिवृत्त्यै)** रागद्वेष की निवृत्ति के लिए **(चरणम्)** सम्यक्चारित्र को **(प्रतिपद्यते)** प्राप्त होता है।

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

अन्वयार्थ–(रागद्वेषनिवृत्तेः) रागद्वेष की निवृत्ति से **(हिंसादिनिवर्तना)** हिंसादि पापों की निवृत्ति **(कृता भवति)** की गई/स्वयं होती है **[यतः]** क्योंकि **(अनपेक्षितार्थवृत्तिः)** अपेक्षा से रहित आजीविका वाला **(कः पुरुषः)** कौन पुरुष **(नृपतीन्)** राजाओं की **(सेवते)** सेवा करता है? अर्थात् कोई नहीं।

हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

अन्वयार्थ–(संज्ञस्य) सम्यग्ज्ञानी का **(पापप्रणालिकाभ्यः)** पाप के पनाले स्वरूप **(हिंसानृतचौर्य्येभ्यः)** हिंसा झूठ चोरी से **(च)** और **(मैथुनसेवा-परिग्रहाभ्याम्)** कुशील व परिग्रह से **(विरतिः)** विरक्त होना **(चारित्रम्)** चारित्र **[कथ्यते]** कहा जाता है।

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गानाम् ॥५०॥

अन्वयार्थ–(तत्) वह **(चरणम्)** चारित्र **(सकलम्)** सकल/महाव्रत और **(विकलम्)** विकल/अणुव्रतरूप दो प्रकार है उनमें **(सर्वसङ्ग-विरतानाम्)** समस्त परिग्रहों से विरक्त **(अनगाराणाम्)** अनगार/मुनियों के **(सकलम्)** सकलचारित्र और **(ससङ्गानाम्)** घर आदि परिग्रह सहित **(सागाराणाम्)** सागारों/गृहस्थों के **(विकलम्)** विकलचारित्र होता है।

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्य-माख्यातम् ॥५१॥

अन्वयार्थ–(गृहिणाम्) गृहस्थों का **(चरणम्)** चारित्र **(अणुगुणशिक्षाव्रतात्मकम्)** अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतरूप **(त्रेधा)** तीन प्रकार **(तिष्ठति)** होता है **[तत्]** वह **(त्रयम्)** तीनों प्रकार चारित्र **(यथासंख्यम्)** क्र म से **(पञ्च-त्रि-चतुर्भेदम्)** पाँच, तीन और चार भेदरूप **(आख्यातम्)** कहा गया है।

अणुव्रताधिकार

प्राणातिपात - वितथव्याहार - स्तेय - काम - मूर्च्छाभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो, व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

अन्वयार्थ–(प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन **(स्थूलेभ्यः)** स्थूल **(पापेभ्यः)** पापों से **(व्युपरमणम्)** विरत होना **(अणुव्रतम्)** अणुव्रत **(भवति)** होता है।

सङ्कल्पात्कृतकारित-मननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(योगत्रयस्य)** मन, वचन और काय के **(कृतकारित-मननात्)** कृत, कारित और अनुमोदनारूप **(सङ्कल्पात्)** संकल्प से **(चरसत्त्वान्)** त्रस जीवों को **(न हिनस्ति)** नहीं मारता है **(तत्)** उसकी उस क्रिया को **(निपुणाः)** गणधर आदि देव **(स्थूलवधात्)** स्थूलहिंसा से **(विरमणम्)** विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत **(आहुः)** कहते हैं।

छेदनबन्धनपीडन - मतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥५४॥

अन्वयार्थ—(स्थूलवधाद्व्युपरतेः) स्थूलवध से विरत श्रावक के **(छेदन-बन्धन-पीडनम्)** छेदना, बाँधना, पीड़ा देना **(अतिभारारोपणम्)** अधिक भार लादना **(अपि च)** और **(आहार-वारणा)** आहार का रोकना **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(व्यतीचाराः)** अतिचार हैं।

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥५५॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(स्थलूम्)** स्थूल **(अलीकम्)** झूठ को **(न वदति)** न स्वयं बोलता है **(न परान् वादयति)** न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा **(सत्यम् अपि)** सत्य भी न स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है जो **(विपदे)** दूसरों की विपत्ति के लिए हो **(तत्)** उसकी उस क्रिया को **(सन्तः)** सत्पुरुष **(स्थूल-मृषावाद-वैरमणम्)** स्थूल असत्यकथन/झूठ का त्याग अर्थात् सत्य अणुव्रत **(वदन्ति)** कहते हैं।

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥

अन्वयार्थ—(परिवाद-रहोभ्याख्या) मिथ्योपदेश/दोषारोपण, रहोभ्याख्यान/ रहस्योद्घाटन **(पैशून्यम्)** चुगलखोरी **(च)** तथा **(कूटलेखकरणम्)** कूटलेख/झूठे दस्तावेज लिखना **(अपि च)** और **(न्यासापहारिता)** धरोहर को हड़प करने के वचन कहना व धरोहर को हड़प लेना **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(सत्यस्य)** सत्य अणुव्रत के **(व्यतिक्रमाः)** अतिचार **[सन्ति]** हैं।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥५७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(निहितम्)** रखी हुई **(वा)** अथवा **(पतितम्)** गिरी हुई **(वा)** अथवा **(सुविस्मृतम्)** भूली हुई **(वा)** और **(अविसृष्टम्)** बिना दी गई **(परस्वम्)** अन्य की वस्तु को **(न**

हरति) न लेता है **(च)** और **[अन्यस्मै]** दूसरे के लिए **(न दत्ते)** न देता है **(तत्)** उसकी वह क्रिया **(अकृशचौर्यात् उपारमणम्)** स्थूल चोरी से परित्यागरूप अचौर्य अणुव्रत है।

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

अन्वयार्थ–(चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः) चौरप्रयोग–अन्य को चोरी के उपाय बताना या प्रोत्साहन देना, चौरार्थादान–चोरों के द्वारा चुराये गए माल धन को ग्रहण करना, विलोप–राजकीय नियमों को उल्लंघन करना, सदृशसन्मिश्र–अधिक मूल्य की वस्तुओं में उसी के समान कम मूल्य की वस्तुओं को मिलाना **(च)** और **(हीनाधिकविनिमानम्)** हीनाधिक-विनिमान–नापने तौलने के गज/मीटर बाँट आदि को लेने के बड़े व ज्यादा तथा देने के छोटे व कम रखना **[एते]** ये **(पंच)** पाँच **(अस्तेये)** अचौर्य अणुव्रत के **(व्यतीपाताः)** अतिचार **[सन्ति]** हैं।

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदार-निवृत्तिः स्वदार-सन्तोष-नामापि ॥५९॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(पापभीतेः)** पाप के भय से **(परदारान्)** परस्त्रियों के प्रति **(न तु)** न तो **(गच्छति)** स्वयं गमन करता है **(च)** और **(न परान्)** न दूसरों को **(गमयति)** गमन कराता है **(सा)** वह क्रिया **(परदार-निवृत्तिः)** परस्त्री-त्यागरूप **(अपि)** एवम् **(स्वदारसन्तोषनाम)** स्वदारसंतोष नामक ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥

अन्वयार्थ–(अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः) अन्य विवाहाकरण –परिवार को छोड़कर अन्य के बेटे बेटियों का विवाह सम्बन्ध कराना, अनंगक्रीड़ा–काम सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से कामसेवन करना, विटत्व–शरीर से कामुक चेष्टा व वचनों से गालियाँ देना, जारपना स्त्रियों के स्वाँग/वेश बनाना, विपुलतृषा–कामसेवन की तीव्र अभिलाषा रखना **(इत्वरिका-गमनं च)** और इत्वरिकागमनं–व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहाँ आना-जाना और उनसे सम्बन्ध रखना ये **(पञ्च)** पाँच **(अस्मरस्य)** ब्रह्मचर्य अणुव्रत के **(व्यतीचारः)** अतिचार हैं।

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥

अन्वयार्थ–(धनधान्यादिग्रन्थम्) धन-धान्यादि परिग्रहों को **(परिमाय)** परिमित/ सीमित कर **(ततः)** उनसे **(अधिकेषु)** अधिक परिग्रहों में **(निःस्पृहता)** इच्छा रहित होना **(परिमितपरिग्रहः**

च) परिमित परिग्रह **(अपि)** अथवा **(इच्छा-परिमाणनाम)** इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत **(स्यात्)** होता है।

अतिवाहनातिसंग्रह - विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥६२॥

अन्वयार्थ–(अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि) अतिवाहन, अतिसंग्रह, अतिविस्मय, अतिलोभ और अतिभारवहन **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(परिमित-परिग्रहस्य च)** परिग्रह परिमाण अणुव्रत के **(विक्षेपाः)** अतिचार **(लक्ष्यन्ते)** निश्चित किए जाते हैं।

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम्।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अन्वयार्थ–(निरतिक्रमणाः) अतिचार रहित **(पञ्चाणुव्रतनिधयः)** पाँच अणुव्रतरूपी निधियाँ **(सुरलोकम्)** स्वर्गलोक को **(फलन्ति)** फलती/देती हैं **(यत्र)** जिस स्वर्गलोक में **(अवधिः)** अवधिज्ञान **(अष्टगुणाः)** अणिमा आदि आठ गुण/ऋद्धियाँ **(च)** और **(दिव्यशरीरम्)** सप्त धातु रहित सुन्दर वैक्रियिक शरीर **(लभ्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

अन्वयार्थ–अणुव्रत धारियों में **(मातङ्गः)** यमपाल नामक चाण्डाल **(धनदेवः)** धनदेव **(वारिषेणः)** वारिषेण **(ततः परः)** उसके बाद **(नीली)** वणिक्पुत्री नीली **(च)** और **(जयः)** जयकुमार क्र म से अहिंसा आदि अणुव्रतों में **(उत्तमम्)** उत्तम **(पूजातिशयम्)** पूजा के अतिशय को **(सम्प्राप्ताः)** प्राप्त हुए हैं।

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रु-नवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥

अन्वयार्थ– (तथा) उसी प्रकार **(धनश्रीसत्यघोषौ च)** धनश्री और सत्यघोष **(तापसारक्षकौ)** तपस्वी और कोतवाल **(अपि)** और **(श्मश्रुनवनीतः)** श्मश्रुनवनीत **(यथाक्रमम्)** क्रम से हिंसादि पाँच पापों में **(उपाख्येयाः)** उपाख्यान करने के योग्य हैं–दृष्टान्त देने के योग्य हैं।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

अन्वयार्थ–(श्रमणोत्तमाः) मुनियों में उत्तम गणधरादि देव **(मद्य-मांसमधु-त्यागैः सह)** मद्य, माँस और मधु के त्याग के साथ **(अणुव्रत-पञ्चकम्)** पाँच अणुव्रतों को **(गृहिणां)** गृहस्थों के **(अष्टौ)** आठ **(मूलगुणान्)** मूलगुण **(आहुः)** कहते हैं।

गुणव्रताधिकार

(आर्या छन्द)

दिग्व्रतमनर्थदण्ड-व्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

अन्वयार्थ—(आर्याः) तीर्थंकरदेव आदि उत्तम पुरुष **(गुणानाम्)** मूलगुणों की **(अनुबृंहणात्)** वृद्धि करने के कारण से **(दिग्व्रतम्)** दिग्व्रत को **(अनर्थ-दण्ड-व्रतम्)** अनर्थदण्ड व्रत को **(च)** और **(भोगोपभोग-परिमाणम्)** भोगोपभोग-परिमाणव्रत को **(गुणव्रतानि)** गुणव्रत **(आख्यान्ति)** कहते हैं।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रत-मामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥६८॥

अन्वयार्थ—(आमृत्यणुपापविनिवृत्त्यै) मरणपर्यन्त सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए **(दिग्वलयं)** दिशाओं के समूह को **(परिगणितं)** मर्यादा सहित **(कृत्वा)** करके **(अहम्)** मैं **(अतः)** इससे **(बहिः)** बाहर **(न)** नहीं **(यास्यामि)** जाऊँगा **(इति)** इस प्रकार **(सङ्कल्पः)** संकल्प या प्रतिज्ञा **(दिग्व्रतम्)** दिग्व्रत है।

मकराकरसरिदटवी-गिरि-जनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अन्वयार्थ—(दशानाम् दिशाम्) दशों दिशाओं के **(प्रतिसंहारे)** परिमाण/ सीमांकन में **(प्रसिद्धानि)** प्रसिद्ध **(मकराकर-सरिदटवी-गिरि-जनपदयोजनानि** समुद्र, नदी, पहाड़ी-जंगल, पर्वत, शहर और योजनों को **(मर्यादाः)** मर्यादा/ सीमा **(प्राहुः)** कहते हैं।

अवधेर्बहिरणुपाप-प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

अन्वयार्थ—(दिग्व्रतानि) दिग्व्रतों को **(धारयताम्)** धारण करने वाले पुरुषों के **(अणुव्रतानि)** अणुव्रत **(अवधेः)** की हुई मर्यादा के **(बहिः)** बाहर **(अणुपापप्रतिविरतेः)** सूक्ष्म पापों की निवृत्ति हो जाने से **(पञ्चमहाव्रत-परिणातिम्)** पाँच महाव्रतों की समानता को **(प्रपद्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

प्रत्याख्यानतनुत्वान् मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

अन्वयार्थ—(प्रत्याख्यानतनुत्वात्) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से **(मन्दतराः)** अत्यन्त मंद अवस्था को प्राप्त **(सत्त्वेन दुरवधाराः)** जिनका अस्तित्वरूप से

निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे **(चरणमोहपरिणामा:)** चारित्रमोह के परिणाम **(महाव्रताय)** महाव्रत के व्यवहार के लिए **(प्रकल्प्यन्ते)** कल्पना किए जाते हैं/उपचरित होते हैं।

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवच:कायै:।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

अन्वयार्थ—(हिंसादीनाम् पञ्चानाम् पापानाम्) हिंसादिक पाँचों पापों का **(मनोवच:कायै:)** मन, वचन और काय से तथा **(कृतकारितानुमोदै:)** कृत, कारित और अनुमोदना से **(त्याग:)** त्याग करना **(तु)** ही **(महतां)** प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का **(महाव्रतम्)** महाव्रत **[भवति]** होता है।

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाता: क्षेत्रवृद्धि-रवधीनाम्।
विस्मरणं दिग्विरते-रत्याशा: पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अन्वयार्थ—अज्ञान व प्रमाद से **(ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाता:)** ऊपर नीचे तथा दिशाओं-विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना **(क्षेत्रवृद्धि:)** क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना और **(अवधीनाम्)** की हुई सीमाओं/मर्यादाओं का **(विस्मरणम्)** भूल जाना ये **(पञ्च)** पाँच **(दिग्विरते:)** दिग्व्रत के **(अत्याशा:)** अतिचार **(मन्यन्ते)** माने जाते हैं।

अभ्यन्तरं दिगवधे-रपार्थिकेभ्य: सपापयोगेभ्य:।
विरमणमनर्थदण्ड-व्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्य: ॥७४॥

अन्वयार्थ—(व्रतधराग्रण्य:) व्रतधारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थंकरदेव आदि **(दिगवधे:)** दिशाओं की मर्यादा के **(अभ्यन्तरम्)** भीतर **(अपार्थिकेभ्य:)** अर्थ/प्रयोजन रहित **(सपापयोगेभ्य:)** पापबंध के कारण मन, वचन, काय की प्रवृत्तियों से **(विरमणम्)** विरक्त होने को **(अनर्थदण्ड-व्रतम्)** अनर्थदण्डत्याग व्रत **(विदु:)** कहते हैं।

पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दु:श्रुती: पञ्च।
प्राहु:प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधरा: ॥७५॥

अन्वयार्थ—(अदण्डधरा:) मनवचनकाय की दु:प्रवृत्तिरूप दण्ड से रहित गणधरादि देव **(पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दु:श्रुती:)** पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दु:श्रुति और **(प्रमाद-चर्याम्)** प्रमादचर्या इन **(पञ्च)** पाँच को **(अनर्थदण्डान्)** अनर्थदण्ड **(प्राहु:)** कहते हैं।

तिर्यक्क्लेशवणिज्या-हिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्ग: प्रसव: स्मर्त्तव्य: पाप उपदेश: ॥७६॥

अन्वयार्थ—(तिर्यक्क्लेशवणिज्या-हिंसारम्भ-प्रलम्भनादीनाम्) पशुओं को क्लेश पहुँचाने

वाली क्रियाएँ, व्यापार, हिंसा, आरम्भ और छलने आदि की **(कथाप्रसंग:)** कथाओं का प्रसंग **(प्रसव:)** उत्पन्न करना **(पाप: उपदेश:)** पाप सम्बन्धि उपदेश/पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड **(स्मर्त्तव्य:)** स्मरण रखना चाहिए/जानना चाहिए।

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृंखलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधा: ॥७७॥

अन्वयार्थ–(बुधा:) ज्ञानी गणधर आदि देव **(परशु-कृपाण-खनित्र-ज्वलनायुध-शृङ्गि-शृंखलादीनाम्)** फरसा, तलवार, कुदाली-फावड़ा, अग्नि, छुरी कटार आदि हथियार, सींगी या विष और सांकल आदि **(वधहेतूनां)** हिंसा के कारणों के**(दानं)** देने को **(हिंसादानं)** हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड **(ब्रुवन्ति)** कहते हैं।

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादे:।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदा: ॥७८॥

अन्वयार्थ–(जिनशासने) जिनशासन में **(विशदा:)** निपुण पुरुष **(द्वेषात्)** द्वेष से **(वधबन्धच्छेदादे:)** मारने, बाँधने, छेदने आदि का **(च)** और **(रागात्)** राग से **(परकलत्रादे:)** परस्त्री आदि का **(आध्यानम्)** चिन्तन करने को **(अपध्यानम्)** अपध्यान नामक अनर्थदण्ड **(शासति)** कहते हैं।

आरम्भ-सङ्ग-साहस-मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनै: ।
चेत: कलुषयतां श्रुति-रवधीनां दु:श्रुतिर्भवति ॥७९॥

अन्वयार्थ–(आरम्भ-सङ्ग-साहस-मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनै:) आरम्भ, परिग्रह, साहस (कथा में आश्चर्यकारी वीरता), मिथ्यात्व, द्वेष, राग, घमण्ड और विषयभोग से **(चेत: कलुषयताम्)** चित्त को कलुषित/ मलीन करने वाले **(अवधीनाम्)** शास्त्रों का **(श्रुति:)** सुनना **(दु:श्रुति:)** दु:श्रुति नामक अनर्थदण्ड **(भवति)** होता है।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

अन्वयार्थ–(विफलम्) निष्प्रयोजन **(क्षिति-सलिल-दहन-पवनारम्भम्)** पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु का आरम्भ/अपव्यय करने **(वनस्पतिच्छेदम्)** वनस्पति के छेदने **(सरणं)** स्वयं घूमने **(अपि च)** और **(सारणं)** दूसरों के घुमाने इन सबको **(प्रमादचर्यां)** प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड **(प्रभाषन्ते)** कहते हैं।

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्य-मतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरते: ॥८१॥

अन्वयार्थ—(कन्दर्पं) राग की तीव्रता से हँसी करते हुए अशिष्ट वचन कहना **(कौत्कुच्यम्)** शरीर की कुचेष्टा करना **(मौखर्यम्)** व्यर्थ अधिक बकवास करना **(अतिप्रसाधनम्)** भोगोपभोग सामग्री का आवश्यकता से ज्यादा संग्रह करना **(च)** और **(असमीक्ष्य अधिकरणम्)** पूर्वापर विचार किए बिना अधिक कार्य करना ये **(पञ्च)** पाँच **(अनर्थदण्डकृद्विरते:)** अनर्थदण्डव्रत के **(व्यतीतय:)** अतिचार हैं।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

अन्वयार्थ—(रागरतीनाम्) राग से होने वाली विषयों की लालसा के **(तनूकृतये)** घटाने के लिए **(अवधौ)** परिग्रह परिमाणव्रत में की हुई परिग्रह की मर्यादा में **(अपि)** भी **(अर्थवताम्)** प्रयोजनभूत **(अक्षार्थानाम्)** इन्द्रियों के विषयों का **(परिसंख्यानम्)** परिमाण करना **(भोगोपभोग-परिमाणम्)** भोगोपभोग-परिमाण नामक व्रत है।

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य:।
उपभोगोऽशनवसन-प्रभृति: पाञ्चेन्द्रियो विषय: ॥८३॥

अन्वयार्थ—(अशनवसनप्रभृति:) भोजन, वस्त्र आदि **(पाञ्चेन्द्रिय:)** पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी जो **(विषय:)** विषय **(भुक्त्वा)** भोग करके **(परिहातव्य:)** छोड़ दने के योग्य है वह तो **(भोग:)** भोग है **(च)** और **(भुक्त्वा)** भोग करके **(पुन:)** फिर **(भोक्तव्य:)** भोगने योग्य है वह **(उपभोग:)** उपभोग है।

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातै: ॥८४॥

अन्वयार्थ—(जिनचरणौ) जिनेन्द्रदेव के चरणों की **(शरणम्)** शरण को **(उपयातै:)** प्राप्त हुए श्रावकों के द्वारा **(त्रसहति-परिहरणार्थं)** त्रसजीवों की हिंसा को दूर करने के लिए **(क्षौद्रम्)** मधु/शहद **(पिशितम्)** मांस **(च)** और **(प्रमादपरिहृतये)** प्रमाद (यह माता है यह स्त्री है इस प्रकार के विवेक के अभाव) को दूर करने के लिए **(मद्यम्)** मदिरा **(वर्जनीयम्)** त्यागने योग्य है।

अल्पफलबहुविघातान् मूलक-मार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीत-निम्बकुसुमं कैतक-मित्येव-मवहेयम् ॥८५॥

अन्वयार्थ—इस व्रत में **(अल्पफलबहुविघातात्)** थोड़ा फल और अधिक हिंसा होने से **(आर्द्राणि)** गीले/अपक्व/अशुष्क/सचित्त **(शृङ्गवेराणि)** अदरक **(मूलकम्)** मूली, गाजर आदि **(नवनीत निम्बकुसुमं)** मक्खन, नीम के फूल **(कैतकम्)** केवड़ा/केतकी के फूल **(इति)** इत्यादि **(एवम्)** ऐसी और वस्तुएँ **(अवहेयम्)** छोड़ने योग्य है।

यदनिष्टं तद् व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

अन्वयार्थ—इस व्रत में **(यत्)** जो वस्तु **(अनिष्टम्)** अनिष्ट–अहितकर है **(तद्)** उसको **(व्रतयेत्)** छोड़े **(च)** और **(यत्)** जो **(अनुपसेव्यम्)** सेवन करने के अयोग्य है **(एतदपि)** यह भी **(जह्यात्)** छोड़े क्योंकि **(योग्यात्)** योग्य **(विषयात्)** विषय से **(अभिसन्धिकृता)** अभिप्राय-पूर्वक की हुई **(विरतिः)** निवृत्ति **(व्रतम्)** व्रत **(भवति)** होती है।

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

अन्वयार्थ—**(भोगोपभोगसंहारात्)** भोग और उपभोग के परिमाण से **(नियमः)** नियम **(च)** और **(यमः)** यम **(द्वेधा)** दो प्रकार से **(विहितौ)** कहा गया है उनमें **(परिमितकालः)** जो नियत काल की मर्यादापूर्वक किया गया त्याग वह **(नियमः)** नियम है और जो **(यावज्जीवं)** जीवनपर्यन्त के लिए **(ध्रियते)** धारण किया जाता है वह त्याग **(यमः)** यम है।

भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गराग-कुसुमेषु ।
ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीतगीतेषु ॥८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

अन्वयार्थ—**(भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गराग-कुसुमेषु)** भोजन–भोज्य वस्तुओं, वाहन–मोटर गाड़ी, शयन–शय्या पलंग आदि, स्नान पवित्रांगराग–उबटन, साबुन, तेल आदि लगाने, सुगन्धित पुष्पों के विषय में तथा **(ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीत-गीतेषु)** पान, वस्त्र, अलंकार, कामभोग, संगीत और गीत के विषय में **(अद्य)** आज एक घड़ी पहर आदि **(दिवा)** एक दिन **(रजनी)** एक रात्रि **(पक्षः)** एक पक्ष पन्द्रह दिन **(मासः)** एक माह **(तथा)** तथा **(ऋतुः)** दो माह **(वा)** अथवा **(अयनम्)** छह माह **(इति)** इस प्रकार **(कालपरिच्छित्त्या)** काल के नियम से **(प्रत्याख्यानम्)** त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत में **(नियमः)** नियम **(भवेत्)** होता है।

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमा-व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

अन्वयार्थ–(विषयविषतः) विषयरूपी विष से **(अनुपेक्षा)** उपेक्षा नहीं करना अर्थात् आदर होना **(अनुस्मृतिः)** भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना तथा उसके प्रतिकार होने पर भी बार-बार अनुभवन की इच्छा होना **(अतिलौल्यम्)** वर्तमान विषयों में अति लम्पटता रखना **(अतितृषानुभवौ)** आगामी भोगोपभोगरूप विषयों की अधिक तृष्णा रखना तथा वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्तिपूर्वक अनुभव करना ये **(पञ्च)** पाँच **(भोगोपभोग-परिमाव्यतिक्रमाः)** भोगोपभोगपरिमाण व्रत के अतिचार **(कथ्यन्ते)** कहे गये हैं।

शिक्षाव्रत अधिकार

(आर्या छन्द)

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

अन्वयार्थ–(देशावकाशिकम्) देशावकाशिक **(सामयिकम्)** सामायिक **(वा)** और **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास **(वा)** और **(वैयावृत्त्यं)** वैयावृत्य ये **(चत्वारि)** चार **(शिक्षाव्रतानि)** शिक्षाव्रत **(शिष्टानि)** कहे गये हैं।

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

अन्वयार्थ–(अणुव्रतानाम्) अणुव्रत पालक श्रावकों का **(विशालस्य)** दिग्व्रत में की हुई लम्बी-चौड़ी **(देशस्य)** क्षेत्र की मर्यादा का **(कालपरिच्छेदनेन)** काल के विभाग से **(प्रत्यहम्)** प्रतिदिन **(प्रतिसंहारः)** संकुचित/कम करना **(देशावकाशिकम्)** देशावकाशिक व्रत **(स्यात्)** होता है।

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

अन्वयार्थ–(तपोवृद्धाः) तपों की वृद्धि को प्राप्त गणधरदेव आदि **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक शिक्षाव्रत के क्षेत्र की **(गृह-हारि-ग्रामाणाम्)** प्रसिद्ध घर, गली, गाँव **(च)** और **(क्षेत्र-नदी-दाव-योजनानाम्)** खेत, नदी, जंगल और योजनों की **(सीम्नाम्)** मर्यादा **(स्मरन्ति)** स्मरण करते हैं।

संवत्सरमृतुर(म)यनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

अन्वयार्थ—(प्राज्ञाः) प्रकृष्टज्ञानी गणधर आदि देव **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक व्रत की **(कालावधिम्)** काल की मर्यादा को **(संवत्सरम्)** एक वर्ष **(अयनम्)** छह माह **(ऋतुः)** दो माह **(मासचतुर्मासपक्षम्)** एक माह चार माह पन्द्रह दिन **(च)** और **(ऋक्षम्)** एक दिन या एक नक्षत्र तक **(प्राहुः)** कहते हैं।

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसन्त्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥९५॥

अन्वयार्थ—(सीमान्तानाम्) सीमाओं के अन्तभाग के **(परतः)** आगे **(स्थूलेतर-पञ्चपापसन्त्यागात्)** स्थूल और सूक्ष्म पाँचों पापों का सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से **(देशावकाशिकेन च)** देशावकाशिक व्रत के द्वारा भी **(महाव्रतानि)** महाव्रत **(प्रसाध्यन्ते)** सिद्ध किए जाते हैं।

भावार्थ—देशावकाशिक व्रत की मर्यादा के बाहर चूँकि देशावकाशिक व्रतधारी के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही पापों का अभाव हो जाता है अतः उसके अणुव्रत उस अपेक्षा से महाव्रत जैसे हो जाते हैं। यह कथन निश्चय दृष्टि से नहीं उपचार की दृष्टि से है।

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥९६॥

अन्वयार्थ—देशावकाशिकव्रत में की हुई मर्यादा के बाहर **(प्रेषणशब्दानयनम्)** भेजना, शब्द करना, मँगाना **(रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ)** शरीर दिखाना और पत्थर आदि फेंकना ये **(पञ्च)** पाँच **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक शिक्षाव्रत के **(अत्ययाः)** अतिचार **(व्यपदिश्यन्ते)** कहे जाते हैं।

आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघाना-मशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

अन्वयार्थ—(सामयिकाः) सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक **(अशेषभावेन)** पूर्णभाव मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से **(सर्वत्र)** सब जगह **(आसमयमुक्ति)** सामायिक के लिए निश्चित समय तक **(पञ्चाघानाम्)** पाँचों पापों के **(मुक्तम्)** त्याग करने को **(सामयिकं नाम)** सामायिक नामक शिक्षाव्रत **(शंसन्ति)** कहते हैं।

मूर्धरुहमुष्टिवासो बन्धं पर्य्यङ्कबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

अन्वयार्थ–(समयज्ञाः) आगम के ज्ञाता पुरुष **(मूर्धरुहमुष्टि-वासोबन्धं)** केशबंधन, मुष्टिबंधन, वस्त्रबंधन के बंध काल को **(च)** और **(पर्य्यङ्क-बन्धनं)** पद्मासन लगाना **(स्थानं)** कायोत्सर्ग से खड़े रहना **(वा)** अथवा **(उपवेशनम्)** बैठकर कायोत्सर्ग करना **(अपि)** भी **(समयं)** सामायिक के योग्य समय **(जानन्ति)** जानते हैं।

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

अन्वयार्थ–(सामयिकं) सामायिक **(प्रसन्नधिया)** प्रसन्नचित्त से **(निर्व्याक्षेपे)** उपद्रव रहित **(एकान्ते)** स्त्री, पशु तथा नपुंसकों से रहित एकान्त स्थान में **(वनेषु)** वनों में **(वास्तुषु च)** एकान्त घरों या धर्मशालाओं में **(वा)** अथवा **(चैत्यालयेषु)** चैत्यालयों में **(च)** और पर्वत की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि में **(अपि)** भी **(परिचेतव्यम्)** बढ़ाना चाहिए।

व्यापार-वैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्म - विनिवृत्त्या।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

अन्वयार्थ–(व्यापारवैमनस्यात्) काय आदि की चेष्टा और मनोव्यग्रता/ कलुषता से **(विनिवृत्त्याम्)** निवृत्ति होने पर **(अन्तरात्मविनिवृत्त्या)** मन के सूक्ष्म विकल्पों की निवृत्तिपूर्वक **(उपवासे)** उपवास के दिन **(वा)** अथवा **(एकभुक्ते)** एकाशन के दिन **(च)** और अन्य समय भी **(सामयिकम्)** सामायिक को **(बध्नीयात्)** बढ़ाना चाहिए।

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपञ्चक-परिपूरण-कारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

अन्वयार्थ–(अनलसेन) आलस्य से रहित और **(अवधान-युक्तेन)** एकाग्रचित्त सहित श्रावक के द्वारा **(व्रतपञ्चक-परिपूरण-कारणम्)** हिंसात्याग आदि पाँचों व्रतों की पूर्ति का कारण **(सामयिकम्)** सामायिक **(प्रतिदिवसम् अपि)** प्रतिदिन भी **(यथावत्)** शास्त्रोक्त विधि से **(चेतव्यम्)** बढ़ाया जाना चाहिए।

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥

अन्वयार्थ–[यदा] जब **(सामयिके)** सामायिक के समय में **(सारम्भाः)** कृषि आदि आरम्भ सहित **(सर्वे अपि)** सब ही **(परिग्रहाः)** अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह **(नैव सन्ति)** नहीं होते हैं **(तदा)**

उस समय **(गृही)** गृहस्थ **(चेलोपसृष्टमुनिः इव)** उपसर्ग के कारण वस्त्र से ढके हुए मुनि के समान **(यतिभावम्)** मुनिपने को **(आयाति)** प्राप्त होता है।

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

अन्वयार्थ—(सामयिकम्) सामायिक को **(प्रतिपन्नाः)** स्वीकार करने वाला **(अचलयोगाः)** निश्चल योग वाला व्यक्ति **(मौनधराः)** मौनधारी होकर **(शीतोष्णदंशमशक-परीषहम्)** शीत,उष्ण, दंशमशक/डाँस, मच्छर आदि के परीषहों को **(च)** और **(उपसर्गम्)** देव, मनुष्य, तिर्यंच व अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्गों को **(अपि)** भी **(अधिकुर्वीरन्)** सहन करे।

अशरण-मशुभ-मनित्यं दुःख-मनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

अन्वयार्थ—(सामयिके) सामायिक में **[स्थिताः]** स्थित मनुष्य **(इति)** इस प्रकार **(ध्यायन्तु)** ध्यान करे कि मैं **(अशरणम्)** रक्षा रहित **(अशुभम्)** शुभ रहित **(अनित्यं)** नित्यता से रहित **(दुःखम्)** दुःखरूप और **(अनात्मानम्)** अपने आत्मस्वरूप से रहित **(भवम्)** संसार में **(आवसामि)** निवास करता हूँ और **(मोक्षः)** मोक्ष **(तद्विपरीतात्मा)** उस संसार से विपरीत स्वरूप वाला अर्थात् शरण, शुभ, नित्य, सुखरूप व आत्मस्वरूप वाला है।

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५॥

अन्वयार्थ—(वाक्कायमानसानाम्) वचन, काय और मन की **(दुःप्रणिधानानि)** खोटी प्रवृत्तियाँ **(अनादरास्मरणे)** अनादर और अस्मरण ये **(पञ्च)** पाँच **(भावेन)** परमार्थ से **(सामयिकस्य)** सामायिक के **(अतिगमाः)** अतिचार **(व्यज्यन्ते)** प्रकट किए गये हैं।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

अन्वयार्थ—(पर्वणि) चतुर्दशी **(च)** और **(अष्टम्याम्)** अष्टमी के दिन **(सदा)** हमेशा के लिए **(इच्छाभिः)** व्रत विधान की वांछा से **(चतुरभ्यवहार्य्याणां)** खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इन चार प्रकार के आहारों का **(प्रत्याख्यानं)** त्याग करना **(तु)** ही **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत **(ज्ञातव्यः)** जानना चाहिए।

पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्याना-मुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥१०७॥

अन्वयार्थ–(उपवासे) उपवास के दिन **(पञ्चानाम्)** पाँचों **(पापानाम्)** पापों का और **(अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां)** अलंकार धारण करना, खेती आदि आरम्भ करना, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्प मालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना **(स्नानाञ्जननस्यानां)** स्नान, अञ्जन/ काजल, सूरमा आदि लगाना तथा नाक से सूँघने योग्य नस्य आदि इन सब पदार्थों का **(परिहृतिं)** परित्याग **(कुर्य्यात्)** करना चाहिए।

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥

अन्वयार्थ–(उपवसन्) उपवास करने वाला व्यक्ति **(अतन्द्रालुः)** आलस्य रहित और **(सतृष्णः)** उत्कण्ठित होता हुआ **(धर्मामृतम्)** धर्मरूपी अमृत को **(श्रवणाभ्याम्)** अपने कानों से **(पिबतु)** पीवे **(वा)** अथवा **(अन्यान्)** दूसरों को **(पाययेत्)** पिलावे **[च]** और **(ज्ञानध्यानपरः)** ज्ञान–ध्यान में लवलीन **(भवतु)** होवे।

चतुराहारविसर्जन - मुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

अन्वयार्थ–(चतुराहारविसर्जनम्) अन्न–दाल रोटी आदि। पान–पानी, दूध ठण्डाई, आदि। खाद्य–लड्डु, सेव, पपड़ी आदि। लेह्य–रबड़ी आदि इन चार प्रकार के आहारों का सर्वथा त्याग **(उपवासः)** उपवास है **(सकृद्भुक्तिः)** एक बार भोजन करना **(प्रोषधः)** प्रोषध/एकाशन है और **(यत्)** जो प्रोषधपूर्वक **(उपोष्य)** उपवास करके पारणा के दिन **(आरम्भं)** एकाशन को **(आचरति)** करता है **(सः)** वह **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास है।

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥११०॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(अदृष्टमृष्टानि)** बिना देखे और बिना शोधे **(ग्रहण–विसर्गास्तरणानि)** पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्रादि को छोड़ना और बिस्तर आदि को बिछाना तथा **(अनादरास्मरणे)** आवश्यक आदि में अनादर करना और योग्य क्रियाओं को भूल जाना **(तदिदं)** वे ये **(प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकम्)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार हैं।

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अन्वयार्थ–(तपोधनाय) तपरूप धन से युक्त **(गुणनिधये)** सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार और **(अगृहाय)** गृहत्यागी–मुनीश्वर के लिए **(विभवेन)** विधि द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार

(अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्) प्रतिदान—दान देकर उनसे कुछ पाने की इच्छा और प्रत्युपकार—मंत्र-तंत्र आदि की अपेक्षा से रहित **(धर्माय)** स्वपर के धर्म की वृद्धि के लिए **(दानम्)** अपनी वस्तु को देना वह **(वैयावृत्यम्)** वैयावृत्य नाम का शिक्षाव्रत **(उच्यते)** कहा जाता है।

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

अन्वयार्थ—(गुणरागात्) सम्यग्दर्शनादि गुणों में प्रीति से **(संयमिनाम्)** देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमिजनों की **(व्यापत्तिव्यपनोदः)** आपत्तियों को दूर करना **(पदयोः)** पैरों का उपलक्षण से हस्तादिक अंगों का **(संवाहनं)** दबाना **(च)** और इसके सिवाय **(अन्योऽपिः)** अन्य भी **(यावान्)** जितना **(उपग्रहः)** उपकार है वह सब **(वैयावृत्यम्)** वैयावृत्य **(कथ्यते)** कहा जाता है।

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणा-मार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

अन्वयार्थ—(सप्तगुणसमाहितेन) श्रद्धा, संतोष, भक्ति, विज्ञान, निर्लोभता, क्षमा, सत्य(शक्ति) इन सात गुणों से सहित और **(शुद्धेन)** कौलिक—कुल सम्बन्धि, आचरिक— आचरण सम्बन्धि तथा शारीरिक शुद्धि से युक्त दाता के द्वारा **(अपसूनारम्भाणाम्)** कूटना, पीसना, झाड़ना, पानी भरना, चूल्हा जलाना इन पंच सूनों (जीवघात के स्थान को सूना कहते हैं) और असि, मसि, कृषि आदि आरम्भों से रहित **(आर्याणां)** सम्यग्दर्शन आदि गुणों से सहित मुनियों की **(नवपुण्यैः)** नवधाभक्तिपूर्वक **(प्रतिपत्तिः)** आहार आदि के द्वारा गौरव व आदर किया जाता है वह **(दानम्)** दान **(इष्यते)** माना गया है।

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से **(वारि)** जल **(रुधिरमलं)** खून, मल को **(धावते)** धो देता है **[तथा]** वैसे ही **(गृहविमुक्तानां अतिथीनां)** घर रहित अतिथियों की **(प्रतिपूजा)** दान क्रिया **(गृहकर्मणा)** गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से **(निचितम्)** उपार्जित अथवा सुदृढ़ **(कर्म अपि)** पापकर्म को भी **(विमार्ष्टि)** दूर कर देती है।

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

अन्वयार्थ—(तपोनिधिषु) तप के भंडार स्वरूप मुनियों के विषय में **(प्रणतेः)** प्रणाम करने से **(उच्चैर्गोत्रं)** उच्च गोत्र **(दानात्)** आहारादि दान देने से **(भोगः)** भोग **(उपासनात्)**

उपासना/प्रतिग्रहण करने से **(पूजा)** सम्मान **(भक्तेः)** भक्ति करने से **(सुन्दररूपं)** सुन्दररूप और **(स्तवनात्)** स्तुति करने से **(कीर्तिः)** ख्याति/सुयश प्राप्त होता है।

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

अन्वयार्थ—(काले) उचित समय में **(पात्रगतं)** योग्य पात्र के लिए दिया गया **(अल्पमपि)** थोड़ा भी **(दानं)** दान **(क्षितिगतं)** उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए **(वटबीजम् इव)** वटवृक्ष के बीज के समान **(शरीरभृताम्)** प्राणियों के **(छायाविभवं)** माहात्म्य और वैभव से युक्त पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित **(बहु)** बहुत भारी **(इष्टं)** अभिलषित **(फलं)** फल को **(फलति)** फलता/देता है।

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

अन्वयार्थ—(चतुरस्राः) चार ज्ञानधारी गणधरदेव **(आहारौषधयोः)** आहार औषधि **(च)** और **(उपकरणावासयोः अपि)** उपकरण तथा आवास के भी **(दानेन)** दान से **(वैयावृत्यं)** वैयावृत्य को **(चतुरात्मत्वेन)** चार प्रकार का **(ब्रुवते)** कहते हैं।

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

अन्वयार्थ—(श्रीषेणवृषभसेने) श्रीषेण, वृषभसेना **(कौण्डेशः)** कौण्डेश **(च)** और **(सूकरः)** सूकर **(एते)** ये **(चतुर्विकल्पस्य वैयावृत्यस्य)** चार भेद वाले वैयावृत्य के **(दृष्टान्ताः)** दृष्टान्त **(मन्तव्याः)** मानना चाहिए।

देवाधिदेव-चरणे परिचरणं सर्व-दुःख-निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११९॥

अन्वयार्थ—श्रावक को **(नित्यम्)** प्रतिदिन **(कामदुहि)** मनोरथों को पूर्ण करने वाली **(कामदाहिनि)** काम को भस्म करने वाली और **(सर्वदुःख-निर्हरणम्)** समस्त दुःखों को पूर्णरूप से दूर करने वाली **(देवाधिदेव-चरणे)** इन्द्र आदि से वन्दनीय अरिहन्त देव के चरणों में **(परिचरणम्)** पूजा को **(आदृतः)** आदर से **(परिचिनुयात्)** पुष्ट/संचित करना चाहिए।

अर्हच्चरणसपर्या-महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥१२०॥

अन्वयार्थ—(प्रमोदमत्तः) हर्ष विभोर **(भेकः)** मेंढ़क ने **(राजगृहे)** राजगृह नगर में **(एकेन कुसुमेन)** एक फूल के द्वारा **(महात्मनाम्)** भव्यजीवों के समक्ष **(अर्हच्चरण-सपर्यामहानुभावं)**

अरिहन्त भगवान् के चरणों की पूजा के महान प्रभाव को **(अवदत्)** कहा/प्रकट किया।

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥१२१॥

अन्वयार्थ—देने योग्य वस्तु को **(हि)** निश्चय से **(हरितपिधाननिधाने)** हरे पत्तों आदि से ढँकना व हरे पत्तों आदि पर रखना **(अनादरास्मरणमत्सरत्वानि)** अनादर, अस्मरण और मत्सरत्व **(एते)** ये **(पञ्च)** पाँच **(वैयावृत्यस्य)** वैयावृत्य के **(व्यतिक्रमाः)** अतिचार **(कथ्यन्ते)** कहे जाते हैं।

सल्लेखनाधिकार

(आर्या छन्द)

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

अन्वयार्थ—(आर्याः) सभी के आश्रयभूत गणधर स्वामी **(निःप्रतीकारे)** प्रतिकार रहित **(उपसर्गे)** उपसर्ग में **(दुर्भिक्षे)** दुष्काल में **(जरसि)** बुढ़ापा में **(च)** और **(रुजायाम्)** रोग होने पर **(धर्माय)** धर्म के लिए **(तनुविमोचनम्)** शरीर के छोड़ने को **(सल्लेखनाम्)** सल्लेखना **(आहुः)** कहते हैं।

अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

अन्वयार्थ—[यस्मात्] क्योंकि **(सकलदर्शिनः)** सर्वज्ञदेव **(अन्तःक्रियाधि-करणम्)** अन्त समय में समाधिमरण/सल्लेखना के आश्रय को **(तपःफलं)** तप का फल **(स्तुवते)** कहते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(यावद्विभवं)** जब तक शक्ति है तब तक **(समाधिमरणे)** समाधिमरण के विषय में **(प्रयतितव्यं)** प्रयत्न करना चाहिए।

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारित-मनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत- मामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥

अन्वयार्थ—सल्लेखनाधारी **(स्नेहं)** प्रीति को **(वैरं)** बैर को **(सङ्गं)** पुत्र स्त्री आदि के सम्बन्धरूप ममत्वभाव को **(च)** और **(परिग्रहं)** परिग्रह को **(अपहाय)** छोड़कर **(शुद्धमनाः)** स्वच्छ हृदय वाला **(प्रियैः वचनैः)** मधुर वचनों से **(स्वजनं)** अपने परिवार कुटुम्बी जन तथा **(परिजनम् अपि**

च) परिकर के लोगों को भी **(क्षान्त्वा)** क्षमा कराकर **(क्षमयेत्)** स्वयं क्षमा करे **(कृतकारितम्)** कृत कारित **(च)** और **(अनुमतम्)** अनुमोदित **(सर्वम्)** समस्त **(एनः)** पापों को **(निर्व्याजम्)** छल-कपट रहित या आलोचना के दोषों से रहित **(आलोच्य)** आलोचना करके **(आमरण-स्थायि)** मरण-पर्यन्त रहने वाले **(निःशेषम्)** समस्त/पाँचों **(महाव्रतम्)** महाव्रतों को **(आरोपयेत्)** धारण करे।

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥

अन्वयार्थ–(शोकं) शोक को **(भयं)** डर को **(अवसादम्)** विषाद को **(क्लेदं)** स्नेह को **(कालुष्यम्)** राग-द्वेष की परिणति को और **(अरतिम्)** अप्रीति को **(अपि)** भी **(हित्वा)** छोड़कर **(च)** और **(सत्त्वोत्साहम्)** बल और उत्साह को **(उदीर्य)** प्रकट करके **(श्रुतैः अमृतैः)** शास्त्ररूप अमृत के द्वारा **(मनः)** मन/चित्त को **(प्रसाद्यम्)** प्रसन्न करना चाहिए।

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥

अन्वयार्थ–तथा **(क्रमशः)** क्रम से **(आहारम्)** कवलाहाररूप अन्न आदि भोजन को **(परिहाप्य)** छोड़कर **(स्निग्धं पानम्)** दूध आदि चिकने पेय को **(विवर्द्धयेत्)** बढ़ाना चाहिए **(च)** पश्चात् **(क्रमशः)** क्रम से **(स्निग्धं)** दूध आदि चिकने पेय को **(हापयित्वा)** छोड़कर **(खरपानम्)** खरपान/ गर्म पानी/छाँछ/काँजी आदि को **(पूरयेत्)** बढ़ाना चाहिए।

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

अन्वयार्थ–पश्चात् **(खरपानहापनाम् अपि)** गर्म पानी आदि को भी त्याग **(कृत्वा)** करके **(शक्त्या)** शक्ति के अनुसार **(उपवासम् अपि)** उपवास को भी **(कृत्वा)** करके **(सर्वयत्नेन)** पूर्ण तत्परता से **(पञ्चनमस्कारमनाः)** पञ्च नमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ **(तनुं)** शरीर को **(त्यजेत्)** छोड़े।

जीवितमरणाशंसे भय-मित्रस्मृति-निदान-नामानः।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

अन्वयार्थ–(जीवितमरणाशंसे) जीविताशंसा/जीने की इच्छा, मरणाशंसा/मरने की इच्छा **(भयमित्रस्मृति-निदाननामानः)** भय, मित्रस्मृति/मित्रों का स्मरण और निदान/आगामी भोगों की इच्छा नाम वाले **(पञ्च)** पाँच **(सल्लेखनातिचाराः)** सल्लेखना के अतिचार **(जिनेन्द्रैः)** जिनेन्द्र

भगवान् के द्वारा **(समादिष्टाः)** कहे गये हैं।

निःश्रेयस-मभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥१३०॥

अन्वयार्थ–(पीतधर्मा) धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला क्षपक **(दुस्तरम्)** बहुत समय तक रहने वाले **(अभ्युदयम्)** अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा तथा **(सर्वैः दुःखैः)** समस्त दुःखों से **(अनालीढः)** रहित होता हुआ **(निस्तीरम्)** सीमा से रहित/अनन्त **(सुखाम्बुनिधिम्)** सुख के समुद्ररूप **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष को **(निःपिबति)** अनुभव करता है।

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयस-मिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

अन्वयार्थ–(जन्मजरामयमरणैः) जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण से, **(शोकैः)** शोकों से, **(दुःखैः)** दुःखों **(च)** और **(भयैः)** भयों से **(परिमुक्तम्)** रहित **(शुद्ध-सुखम्)** शुद्ध सुख वाले **(नित्यम्)** नित्य-अविनाशी **(निर्वाणं)** निर्वाण को **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष **(इष्यते)** माना जाता है।

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

अन्वयार्थ–(विद्या-दर्शनशक्तिस्वास्थ्य-प्रह्लाद-तृप्तिशुद्धियुजः) केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, परम उदासीनतारूप स्व में स्थिरता, अनन्तसुख, इन्द्रिय विषयों की इच्छा से रहित संतुष्टि और द्रव्य-भावरूप कर्ममल से रहितपने को प्राप्त शुद्धि/पवित्रता वाले **(निरतिशयाः)** हीनाधिकता से रहित और **(निरवधयः)** अवधि से रहित **(सुखं)** सुख स्वरूप **(निःश्रेयसं)** निःश्रेयस/मोक्ष में जीव **(आवसन्ति)** निवास करते हैं।

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

अन्वयार्थ–(कल्पशते काले) सैकड़ों कल्प कालों के **(गते)** बीतने पर **(अपि च)** भी **(यदि)** अगर **(त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः)** तीनों लोकों में खलबली पैदा करने में समर्थ **(उत्पातः)** उपद्रव **(अपि)** भी **(स्यात्)** हो तो भी **(शिवानाम्)** सिद्धों में **(विक्रिया)** विकार **(न लक्ष्या)** दृष्टिगोचर नहीं होता।

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्य- शिखा - मणिश्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकर-भासुरात्मानः ॥१३४॥

अन्वयार्थ–(निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकरभासुरात्मानः) कीट और कालिमा से रहित

कान्ति वाले सुवर्ण के समान प्रकाशमानस्वरूप वाले **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष को **(अधिपन्नाः)** प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी **(त्रैलोक्य-शिखामणिश्रियम्)** तीन लोक के अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को **(दधते)** धारण करते हैं।

पूजार्थाज्ञैश्वर्यै - र्बल - परिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवन-मद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

अन्वयार्थ–(सद्धर्मः) सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म **(पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः बल-परिजनकामभोगभूयिष्ठैः)** पूजा/प्रतिष्ठा, धन, आज्ञारूप ऐश्वर्य तथा बल/शारीरिक-शक्ति, परिवार, काम और भोगों की अधिकता/परिपूर्णता से **(अतिशयित-भुवनं)** गुण, पद, परिमाण आदि में श्रेष्ठता को प्राप्त लोक को और **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारी **(अभ्युदयं)** स्वर्गादिरूप अभ्युदय/सांसारिक सुख को **(फलति)** फलता/देता है।

प्रतिमााधिकार

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

अन्वयार्थ–(देवैः) तीर्थंकर देवों के द्वारा **(एकादश)** ग्यारह **(श्रावक-पदानि)** श्रावक के पद/प्रतिमाएँ **(देशितानि)** कही गई हैं **(येषु)** जिनमें **(खलु)** निश्चय से **(स्वगुणाः)** अपनी प्रतिमासम्बन्धी गुण **(पूर्वगुणैः सह)** पूर्व प्रतिमासम्बन्धी गुण के साथ **(क्रमविवृद्धाः)** क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए **(संतिष्ठन्ते)** स्थित होते हैं।

सम्यग्दर्शन-शुद्धः संसार-शरीर-भोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

अन्वयार्थ–(सम्यग्दर्शनशुद्धः) दोषरहित सम्यग्दर्शन का धारक **(संसारशरीरभोग-निर्विण्णः)** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त **(पञ्चगुरु-चरण-शरणः)** पञ्चपरमेष्ठियों के चरणों की शरण को प्राप्त **(तत्त्वपथगृह्यः)** यथार्थ जैनमार्ग को ग्रहण करने वाला, अष्टमूलगुणों का धारक **(दर्शनिकः)** दार्शनिक श्रावक है।

निरतिक्रमण-मणुव्रत-पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(निःशल्यः)** शल्य रहित होता हुआ **(निरतिक्रमणं)** अतिचार रहित **(अणुव्रतपञ्चकम् अपि)** पाँचों अणुव्रतों को **(च अपि)** और **(शीलसप्तकम्)** तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतरूप सात शीलव्रतों को **(धारयते)** धारण करता है **(असौ)** वह **(व्रतिनां)** गणधरदेवादिक

महाव्रतियों के मत में **(व्रतिकः)** व्रती श्रावक **(मतः)** माना जाता है।

चतुरावर्त्तत्रितयश्-चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्य-मभिवन्दी ॥१३९॥

अन्वयार्थ—जो **(चतुरावर्त्तत्रितयः)** चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त करता है **(चतुःप्रणामः)** चार प्रणाम करता है **(स्थितः)** कायोत्सर्ग से खड़ा होता है **(यथाजातः)** बाहरी, भीतरी चिन्ताओं से दूर, यथायोग्य वस्त्रादि का त्यागी होता है **(द्विनिषद्यः)** सामायिक के आदि और अन्त में दो बार बैठकर नमस्कार करता है **(त्रियोगशुद्धः)** मन, वचन और काय इन तीनों योगों से शुद्ध और **(त्रिसन्ध्यं)** तीनों संध्याओं में **(अभिवन्दी)** वन्दना करता है **[सः]** वह **(सामयिकः)** सामायिक प्रतिमाधारी है।

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

अन्वयार्थ—[यः] जो **(मासे मासे)** प्रत्येक महीने में **(चतुर्षु)** चारों **(अपि)** ही **(पर्वदिनेषु)** पर्व के दिनों में **(स्वशक्तिं)** अपनी शक्ति को **(अनिगुह्य)** नहीं छिपाकर **(प्रोषधनियमविधायी)** प्रोषध सम्बन्धी नियम को धारण करने वाला **(प्रणि(ण)धिपरः)** एकाग्रता में तत्पर **(प्रोषधानशनः)** प्रोषधपूर्वक अनशन/उपवास करने वाला प्रोषध प्रतिमाधारी है।

मूल-फल-शाक - शाखा - करीर-कन्दप्रसून-बीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(दयामूर्तिः)** दयालु **(आमानि)** अपक्व/कच्चे/हरे **(मूल-फल-शाक -शाखा-करीर-कन्दप्रसून-बीजानि)** मूल/जड़, फल, शाक, शाखा/कोंपल, करीर/वाँस की गांठ का कौर/अंकुर, हल्दी सौंठ आदि जमीकंद, फूल और बीजों को **(न अत्ति)** नहीं खाता है **(सः)** वह **(अयं)** यह **(सचित्तविरतः)** सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सत्त्वेषु)** प्राणियों पर **(अनुकम्पमानमनाः)** दया से सहित चित्त वाला **(विभावर्याम्)** रात्रि में **(अन्नं)** अन्न को **(पानं)** पीने योग्य वस्तु को **(खाद्यं)** खाने योग्य वस्तु लड्डु आदि को और **(लेह्यं)** चाटने योग्य रबड़ी आदि को **(न अश्नाति)** नहीं खाता है **(सःच)** वह **(रात्रिभुक्ति-विरतः)** रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक है।

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(मलबीजम्)** शुक्रशोणितरूप मल से उत्पन्न **(मलयोनिम्)** मल की उत्पत्ति का स्थान **(गलन्मलम्)** झरते हुए मल वाले अर्थात् जिससे मूत्रादि मल झर रहा है **(पूतिगन्धि)** दुर्गन्धयुक्त और **(बीभत्सम्)** घिनौने ग्लानियुक्त **(अङ्गं)** शरीर को **(पश्यन्)** देखता हुआ **(अनङ्गात्)** कामवासना से **(विरमति)** विरत होता है **(सः)** वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी **(ब्रह्मचारी)** ब्रह्मचारी है।

सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतो-र्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥१४४॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(प्राणातिपातहेतोः)** प्राणघात के कारणभूत **(सेवाकृषि-वाणिज्य-प्रमुखात् आरम्भतः)** नौकरी, खेती, व्यापार आदि मुख्य आरम्भ से **(व्युपारमति)** विरक्त होता है **(असौ)** वह **(आरम्भ-विनिवृत्तः)** आरम्भ से रहित आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है।

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(बाह्येषु दशसु वस्तुषु)** बाहरी दश वस्तुओं/परिग्रहों में **(ममत्वम्)** ममता को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(निर्ममत्वरतः)** ममता रहित भाव में लीन/निर्मोही होता हुआ **(स्वस्थः)** आत्मस्वरूप में स्थित और **(संतोषपरः)** संतोष में तत्पर **(परिचित्तपरिग्रहात्)** सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से **(विरतः)** विरक्त **(सः)** वह परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी है।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐ(वै)हिकेषु कर्मसु वा।
नास्ति खलु यस्य समधी-रनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

अन्वयार्थ–(खलु) निश्चय से **(आरम्भे)** कृषि आदि आरम्भ में **(वा)** अथवा **(परिग्रहे**(षु)**)** परिग्रहों में **(वा)** अथवा **(ऐहिकेषु कर्मसु)** इसलोक सम्बन्धी कार्यों में **(यस्य)** जिसकी **(अनुमतिः)** अनुमोदना **(न)** नहीं **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(समधीः)** समान बुद्धि का धारक श्रावक **(अनुमतिविरतः)** अनुमतित्याग प्रतिमाधारी **(मन्तव्यः)** मानना चाहिए।

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

अन्वयार्थ–(गृहतो) घर से **(मुनिवनं)** मुनियों के आश्रम को **(इत्वा)** जाकर **(गुरूपकण्ठे)** गुरु के पास **(व्रतानि)** व्रतों को **(परिगृह्य)** ग्रहण करके **(भैक्ष्याशनः)** बिना याचना किए भिक्षा से

भोजन करने वाला **(तपस्यन्)** तपश्चरण करता हुआ **(चेलखण्डधरः)** वस्त्र के एक खण्ड यानि लंगोट या दो खण्डों यानि लंगोट व दुपट्टा को धारण करने वाला **(उत्कृष्टः)** उत्कृष्ट श्रावक/उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी है।

पाप-मरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

अन्वयार्थ—(पापम्) पाप **(जीवस्य)** जीव का **(अरातिः)** शत्रु है **(च)** और **(धर्मः)** धर्म/पुण्य **(बंधु)** हितकारी मित्र है **(इति)** इस प्रकार **(निश्चिन्वन्)** निश्चय करता हुआ **(यदि)** अगर **(समयम्)** आगम को **(जानीते)** जानता है **[तर्हि]** तो वह **(ध्रुवं)** निश्चय से **(श्रेयो-ज्ञाता)** श्रेष्ठ ज्ञाता/कल्याण का ज्ञाता **(भवति)** होता है।

(उपजाति छन्द)

येन स्वयं वीतकलङ्क-विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥१४९॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस भव्य ने **(स्वयं)** अपनी आत्मा को **(वीतकलङ्क-विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्डभावं)** निर्दोष सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रमय रत्नों की पेटीरूप **(नीतः)** प्राप्त कराया है **(तं)** उसे **(त्रिषु विष्टपेषु)** तीनों लोकों में **(पतीच्छयेव)** पति की इच्छा से ही मानो **(सर्वार्थसिद्धिः)** धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि **(आयाति)** प्राप्त होती है।

(मालिनी छन्द)

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्म-प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

अन्वयार्थ—(जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी) जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों का दर्शन करने वाली **(सुखभूमिः)** सुख की भूमिस्वरूप **(दृष्टिलक्ष्मीः)** सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी/सम्पदा **(माम्)** मुझे उस तरह **(सुखयतु)** सुखी करे **(इव)** जिस तरह कि **(सुखभूमिः कामिनी कामिनम्)** सुख की भूमिस्वरूप सुन्दर स्त्री कामीपुरुष को सुखी करती है **(शुद्धशीला)** निर्दोष शील—तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत से युक्त होती हुई **(माम्)** मुझे उस तरह **(भुनक्तु)** रक्षित करे **(इव)** जिस तरह कि **(शुद्धशीला जननी सुतम्)** निर्दोष शील—पातिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली माता पुत्र को रक्षित

करती है और **(गुणभूषा)** मूलगुणरूपी अलंकार से युक्त होती हुई **(माम्)** मुझे उस तरह **(सम्पुनीतात्)** पवित्र करे **(इव)** जिस तरह कि **(गुणभूषा-कन्यका कुलम्)** गुणों से सुशोभित कन्या कुल को पवित्र करती है।